हिमालयकी यात्रा

काकासाहब कालेलकर

अनुवादक

दादा धर्माधिकारी

। चरति चरतो भगः ।

नवजीवन प्रकाशन मन्दिर

अहमदाबाद

मुद्रक और प्रकाशक
जीवणजी डाह्याभाओी देसाओी
नवजीवन मुद्रणालय, अहमदाबाद – १४

पहली आवृत्ति ५०००, सन् १९४८
पुनर्मुद्रण ५०००, सन् १९५८

दो रुपये

अगस्त, १९५८

प्रिय सुहृद्
ब्रह्मचारी अनन्तबुवा मरढेकरकी
पवित्र स्मृतिमें

जीवनकी ताजगी

१

मनुष्य स्वभावसे स्थावर है या जंगम?

थोड़ा विचार करनेसे ज्ञात होता है कि अुसमें ये दोनों वृत्तियां वर्तमान हैं। यदि मनुष्यको जंगली दशासे अुन्नति करते करते आजकी स्थिति प्राप्त हुअी है, तो असलमें मनुष्य जंगम ही होना चाहिये। जहां अन्न और पानी मिले, वहां जानेकी प्राणिमात्रकी स्वाभाविक वृत्ति है। जब तक मनुष्य शिकारीका जीवन बिताता था, तब तक अुसे भटकना ही पड़ता था। महाभारतमें भी यह वर्णन मिलता है कि अेक जंगलमें शिकार खतम होते ही पाण्डवों-जैसे आरण्यकोंको दूसरा जंगल खोजना पड़ा था। शिकारी जीवन त्यागकर जब मनुष्यने गड़रिये और चरवाहे (गो-पाल) का जीवन पसन्द किया, तब भी अेक जंगल या बीड़की घास खतम होते ही अुसे दूसरी जगह जाना पड़ता था। श्रीकृष्णके ग्वाल पूर्वज अैसा ही करते थे। आगे चलकर मनुष्यके मनमें विचार आया कि जहां अन्न हो वहां जाकर रहनेके बनिस्बत जहां रहते हैं वहीं अन्न अुत्पन्न किया जा सके तो क्या ही अच्छा हो। मनुष्यने जंगलों और बीड़ोंमें मारे-मारे फिरना छोड़कर खेती करना शुरू किया और वह आर्य* बना। खेती शुरू हुअी और मनुष्यके जीवनमें बहुत ही बड़ा परिवर्तन हो गया। संस्कृति बढ़ी और स्थावरता आयी। स्थावरताके साथ मनुष्यकी कार्यशक्ति तो बढ़ी, लेकिन अुसकी वीर्यशक्ति (Vitality) कुछ कम हो गयी होगी। अेक दिशामें कुछ-न-कुछ त्याग किये बिना मनुष्य दूसरी दिशामें तरक्की कर ही नहीं सकता।

परन्तु मनुष्य तो लोभी ठहरा। अुसे दोनों स्थितियोंका लाभ चाहिये था। अुसने देखा कि अगर प्रकृतिने वनस्पति-सृष्टिको स्थावर बनाया है, तो अुनकी शादियां लगानेके लिअे तितलियों जैसे पुरोहित भी पैदा किये हैं। अमुक बड़ा वर्ग स्थावर रहकर वैभवकी वृद्धि करे और अुसे जंगमताका

* अर् = खेती करना।

लाभ पहुंचानेवाला दूसरा अेक वर्ग भटकता रहे, यह व्यवस्था मनुष्यके लिअे अनुकूल सिद्ध हुअी। मनुष्यने गृहस्थाश्रमके साथ साथ घुमक्कड़ोंके अेक-दो आश्रम कायम किये। ब्रह्मचारीने जहां अध्ययन पूरा किया कि वह घूमने निकलता ही था। तीर्थयात्रा पूरी होने पर ही अुसे ब्याह करनेकी अिजाजत मिलती थी। दूसरी तरफसे जहां गृहस्थाश्रमकी प्रवृत्ति कुछ ढीली पड़ी, स्थावरताका जंग चढ़ा कि धर्मशास्त्र कहता है — "अब बहुत भोग लिया, चलो, फिर वनकी तरफ।" जहांसे आये वहां लौटनेमें अेक तरहका आनन्द, अेक तरहका विश्राम होता है। सबेरे अुठकर घूमने गये हुअे लड़के शाम होते ही मांकी सुखदायी गोद खोजेंगे ही। मनुष्य जिस जंगलको छोड़कर बस्तीमें आया, और गृहस्थ अेवं नागरिक बना, अुनके अुसी जंगलमें लौटकर परिव्राजक बननेकी तैयारी करनेमें यही आनन्द भरा हुआ है। और अुसमें प्रगति भी है। प्रगति हमेशा पेंचदार कीलके पेंचों जैसी होती है। अेक चक्कर पूरा करके मूल स्थान पर आनेके साथ ही हम अेक सीढ़ी अूपर चढ़ते हैं।

पुरानी व्यवस्था यह थी कि गृहस्थाश्रमी लोगोंको भी कभी-कभी यात्रा पर जाना ही चाहिये, ताकि मनुष्य देश-देशांतरकी स्थिति देख सके, समझ सके, नये नये सम्बन्ध कायम कर सके और स्थावरताकी वजहसे जीवन पर चढ़े हुअे जंगको निकाल सके।

यदि समाजशास्त्रका विकास करनेवाले धर्मकारोंने अैसी व्यवस्था न की होती, तो भी मनुष्य-स्वभाव किसी-न-किसी रीतिसे अिसे खोज ही लेता। मनुष्यमात्रमें जो प्राकृतिक या अीश्वरीय प्रेरणा विद्यमान है, धर्मकार अुसीको शास्त्रीय रूप देनेका काम करते हैं। निरी प्राकृतिक वृत्ति नीचे भी गिरा सकती है या अूपर भी अुठा सकती है। जो प्राकृतिक वृत्ति मनुष्यको अूपर अुठाती है, अुसीको अीश्वरीय प्रेरणा कहते हैं। जो अीश्वरकी ओर ले जाय, वही अीश्वरीय। यही कारण है कि स्वतंत्र रूपसे विकसित धर्मोंमें भी सर्वत्र लगभग अेक-सी ही व्यवस्था पाअी जाती है। तीर्थयात्रा करनेकी योजना जापानके शितो या युरोपके धर्ममें भी पाअी जाती है, और हिन्दुओंकी आश्रम-व्यवस्थामें भी। हजका सवाब कमानेवाले अिस्लाममें भी अिसे स्थान है, और गनके कपड़े पहनकर मस्तानेमें भी

पवित्र भूमि तक यात्रा करनेवाले ओीसाओी भक्तजनोंको भी यह चीज प्रिय है।

यात्राको ही प्रधान धर्म माननेवाले परिव्राजक तो हमारे यहां थे ही, परन्तु अिसके सिवा हरअेक वर्णके लिअे भी यात्राका थोड़ा-बहुत धर्म बतलाया गया था। ब्राह्मण पहले ब्रह्मचारीके नाते विद्यायात्रा करता था, बादमें यज्ञसत्रोंमें जाता था; चौमासा छोड़कर बीच बीचमें तीर्थयात्रायें तो होती ही थी। और अंत बुढ़ापेमें भी मरनेके लिअे अेक जगह बैठे रहनेके बदले, जहा तक पैर ले जायें वहां तक ओीशान्य दिशामें चलते जानेका विधान है!

यदि क्षत्रिय आखेटके लिअे हर साल न निकलें तो खेतीकी रक्षा कैसे हो? और खेतिहर राज्यको पैदावारका छठा हिस्सा कैसे दें? यदि राजामें शक्ति हो तो वह घोड़ा छोड़कर अश्वमेधके लिअे भी प्रस्तुत होता ही था। जो राजा दिग्विजय न करे, वह कमजोर समझा जाता था।

वैश्य यानी सौदागर। जब वे अपने काफिले लेकर जंगल पार करते, अेक राज्यमें से दूसरे राज्यमें प्रवेश करते, यहांका माल वहां पहुंचाते और वहाका यहां ले आते, तभी सार्थवाहका अुनका जीवन सार्थक माना जाता था। अपनी नयी दुलहिनको भी घर पर छोड़कर सुदूर समुद्रकी यात्रा करनेवाले वाणिज्य-वीरोंकी ढेरों कथायें हमारे साहित्यमें विद्यमान हैं।

बौद्ध साधु अर्थात् प्रबल प्रचारक। अुन्होंने समुद्र-यात्राके निषेधकी परवाह न करके सुदूर देशों तक संस्कृतिका विस्तार किया, और देश-देशान्तरके लोगोंको भी वे अिस देशमें ले आये। जिस तरह जंगलमें गैंडा निडर होकर अकेला घूमता है, अुसी तरह श्रमणको सर्वत्र विहार करना चाहिये। बुद्ध भगवानकी यह सिखावन थी। और स्वयं अुन्होंने तो अिस तरह विहार कर-करके अेक समूचे प्रान्तको ही अपनी अिस प्रवृत्तिका नाम दे दिया। बौद्ध धर्मको स्वीकार करनेके बाद सम्राट् अशोकने दिग्विजय छोड़ धर्म-विजयको अपनाया और प्रतिवर्ष नयी नयी दिशामें धर्मयात्रायें शुरू कीं।

वृद्धश्रवा अिन्द्रने वैदिक संस्कृतिके प्रारम्भमें ही आदेश दिया था कि जो बैठा रहता है, अुसका नसीब भी बैठा रहता है। जो चलता है, अुसीका भाग्य चलता है। 'चराति चरतो भगः' यह प्रेरणा लेकर

गडरिये चले, गुलामी चले, भक्त चले, सैनिक चले और परिव्राजक भी चले। अिस संसारमें जो कुछ जीवित है वह सभी चलता है, और जब मनुष्य चलते-चलते अूब जाता है, तब स्थावर बनकर रहनेके बदले अिस संसारको ही छोड़कर चल देता है।

यदि मनुष्यको यात्राकी दीक्षा किसीसे मिली है, तो वह आकाशके तारोंसे नहीं बल्कि जीवनके अखंड प्रवाहका वहन करनेवाली नदियोंसे। अुसमें भी दो प्रकारकी वृत्तियां पाअी जाती हैं। जिस प्रकार प्राचीन कालमें कुछ लोग सूरजके अुदय-स्थानका पता लगानेके लिअे अुत्तरोत्तर पूर्वकी तरफ चलते जाते थे और दूसरे कुछ लोग अुसके विश्राम-स्थानकी खोजमें पश्चिमकी तरफ जाते थे, अुसी तरह कुछ लोग स्वयं यह देखनेके लिअे कि अिन नदियोंका यह अितना अुमड़ता हुआ पानी कहांसे आता है, अुनके अुद्गमकी तरफ बढ़ते जाते थे, तो दूसरे कुछ अिस सारे पानीका विसर्जन कहां होता है, किसमें होता है, हमें वहां क्या दीखेगा, अिसका अनुभव करनेके लिअे नाविक बनकर समुद्रकी तरफ जाते थे। गंगोत्रीकी तरफ जानेवाले गडरिये और गंगासागरकी तरफ दौड़नेवाले मल्लाह दोनों भाअी भाअी ही हैं। नदीमुखसे ही समुद्रमें प्रवेश करनेकी सिफारिश करनेवाले कविके वंशजोंने कितनी समुद्र-यात्रा की है, अिसकी जांच करने पर केवल निराशा ही पल्ले पड़ेगी। आज यह बतलाना कठिन है कि वेदवालके तुग्र और भुज्यु जो जलयात्रा करते थे, वह नदीकी थी या समुद्रकी। जातक-कथाओंमें जिन वणिकोंका वर्णन आता है, वे अेक तरफ जावा, बाली और स्याम-चीन तक जाते होंगे, और दूसरी तरफ अफ्रीकाका सारा पूर्व किनारा छानते होंगे। लेकिन अुनमें से अेकने भी ग्रीकोंकी तरह पूर्व या पश्चिम सागरका 'पेरीप्लस' नहीं लिखा है। जावा पहुंचनेके बाद जिन्होंने लौटनेकी आशा ही छोड़ दी, अुनके वंशज समुद्र-यात्राका निषेध करें तो अिसमें आश्चर्य ही क्या? और यह निषेध किसलिअे? तो कहते हैं कि वहां खाने-पीनेमें पवित्रता-अपवित्रताका ध्यान नहीं रहता। आचार-धर्मका ठीक-ठीक पालन नहीं हो सकता। अिस संकटसे बचनेका यह अेक अनूठा अुपाय खोजा गया। अेक आदमीको धूपमें जानेसे सिरदर्द होता था। अुसने वैद्यसे अिलाज पूछा। सयाने वैद्यने सनातनी बुद्धिमानीसे कहा

—"भले मानस, धूपमें जाना ही गलत है। छायामें ही बैठे रहो न, फिर देखें पित्तप्रकोप कैसे होता है?" अिस डरसे कि कहीं किसीकी बुरी निगाह मेरी स्त्री पर न पड़ जाय, बुरे आदमीको सुधारनेके बदले अपनी स्त्रीको ही सिरसे पैर तक परदेमें 'पैक' कर देनेकी बात जिन लोगोंको सूझी और जिन्होंने स्त्रियोंको अन्तःपुरमें ही पूर देना पसन्द किया, यदि अुन लोगोंने समुद्र-यात्राका निषेध करके अपनेको अपने ही देशमें पूर रखनेका फैसला किया तो वह यथायोग्य ही हुआ। अरे, अिन डरपोक व्यवस्थाकारोंने वैराग्यधन संन्यासियोंको भी यह आदेश दिया कि जहां खानेको अच्छा न मिलता हो, लोग श्रद्धा-भक्तिसे खिलाते न हों, तूफान या मारपीट हर घड़ी चलती रहती हो, अुस देशमें जाना ही न चाहिये। अुन्होंने यह भी लिख रखा है कि जिस मनुष्यको यात्राका शौक हो, अुसके साथ अपनी बेटीका ब्याह नहीं करना चाहिये! अुनके निकट सुरक्षितता ही प्रथम धर्म है!

अितना करने पर भी, और जीवनका अच्छे-से-अच्छा मत्त्व सुखा डालने पर भी जिसकी रक्षा हम करना चाहते थे, क्या अुसकी रक्षा कर सके? जिनके संसर्गसे बचनेके लिअे हमने समुद्र-यात्रा छोड़ी, वे सब मधुमक्खियोंके छत्तेकी तरह हम पर टूट पड़े और अुन्होंने हमारे राज्य, हमारे व्यापार, हमारी शिक्षा और हमारे भाग्य—सभी पर कब्जा कर लिया और यहां अपना डेरा जमा लिया। 'जो बैठा रहता है, अुसका भाग्य भी बैठा ही रहेगा।'

२

सच तो यह है कि जीवनका अुत्थान ढीला पड़ जाता है, तो मनुष्यके हृदयमें अज्ञातका डर घुस जाता है। यदि जीवनमें यौवनपूर्ण प्राण हो, तो अुसी अज्ञातका आमंत्रण टाले नहीं टलता। अज्ञातका पीछा करना, अुसका अनुभव करना, अुस पर विजय पाकर अुसे ज्ञात बनाना ही जीवनका बड़े-से-बड़ा आनन्द और अच्छे-से-अच्छा पौष्टिक अन्न है। वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा अज्ञात पर अेक प्रकारकी विजय की जा सकती है, और यात्रा द्वारा दूसरे प्रकारकी।

जब मनुष्य घोड़े पर चढ़ता है तो अुसका हृदय अिस तरह फूलता है, मानो घोड़ेकी शक्तिका भी अुसमें संचार हो गया हो। और शक्तिके अिस साक्षात्कारके कारण मनुष्यका व्यक्तित्व भी अुस हद तक परिपुष्ट होता है। अस्सी मीलकी रफ्तारसे दौड़नेवाली मोटरका अंकुश-चक्र हाथमें आने पर मनुष्यको लगता है कि यह सारा वेग मेरा ही है। किसी संस्था या राज्यके संचालनका फल — अुसका व्यक्तिगत आनन्द — अिसीमें है कि अुसके कारण अमुक लोगोंके साथ मेरा तादात्म्य हो जाता है, अमुक शक्तिका मैं अमुक मात्रामें अुपयोग कर सकता हूं, और अमुक व्यक्तियोंको अिकट्ठा करके अेक विराट शक्ति पैदा कर सकता हूं। व्यक्तित्वका विकास, शक्तिका संचय और भावीका नियंत्रण ही मनुष्यके लिअे बड़े-से-बड़े आनन्दका विषय है। यात्रामें मनुष्य जितने भूमिभागको आंखों द्वारा अपना कर लेता है, जितना अन्तर पादाक्रान्त करता है, जितना अनुभव जुटा सकता है, *अुतने दरजे तक अुसका जीवन समृद्ध होता है।* कोठार-भण्डारमें भरा हुआ धन बाहरी होनेसे भाररूप होता है। अनुभवके द्वारा संचित ज्ञान, अर्जित संस्कार और विकसित शक्ति भीतरी होनेसे अुनका भार नहीं लगता, अुलटे अुनके आ मिलनेसे जीवनमें दूसरा बहुत-सा बोझ अुठानेकी शक्ति प्राप्त हो जाती है। जो मनुष्य यात्राके लिअे निकलता है, अुसे बहुत-सी वस्तुओंके परिग्रहका त्याग करना ही होता है। जो हलका नहीं हो सकता, वह यात्रा कर ही नहीं सकता, चाहे वह बादल हो या आदमी। और यात्रा द्वारा प्राप्त ज्ञान, संस्कार या कौशल अितना आत्मसात् हो जाता है कि अुसका परिग्रह या भार मालूम ही नहीं होता।

यात्रा द्वारा प्राप्त किये ज्ञानमें और आजकी शिक्षा-संस्थाओंमें प्रचलित प्रणाली द्वारा प्राप्त किये ज्ञानमें बड़े-से-बड़ा फर्क यही है। आजकलकी शिक्षा-प्रणाली द्वारा प्राप्त किया ज्ञान भाररूप होता है, क्योंकि वह व्यवहारमें लाया हुआ या हजम किया हुआ नहीं होता। अिसलिअे छोटे बालकोंको पाठशालाकी शिक्षा देनेके बदले यदि यात्राकी शिक्षा दी जाय, तो आखिरकार वह कम खर्चीली और अधिक फलदायी होगी।

यात्री ज्यों-ज्यों यात्रा करता जाता है, त्यों-त्यों वह अपने चातुर्यका विकास करता है, धीरज और अुदारताका विकास करता है और अपनेमें

अच्छे-से-अच्छा समाजशास्त्री बनता है। यात्रा अर्थात् कष्ट सहनेका बादशाही तरीका। यात्राकी असुविधाओंसे मनुष्यको यह नहीं लगता कि वे असके दारिद्रयकी प्रतीक हैं, बल्कि वह सोचता है कि अपनी सूझ-बूझको बढानेका अेक अच्छा मौका असे मिला है। अेक दृष्टिसे यात्रा व्यक्तित्वके विकासका साधन है, जब कि दूसरी दृष्टिसे देखा जाय तो वह अनुभवसे ओतप्रोत देशभक्तिका ही अेक प्रकार है। हम अपने देशको जितना देख चुकते हैं, असके जितने भागका निरीक्षण कर चुकते हैं और जितनेको अपना लेते हैं, अतने देशके प्रति हमारी अेक विशेष धारणा बनती है, असमे आत्मीयताका सम्बन्ध जुड जाता है, असके लिअे मनमें अभिमान अथवा भक्ति पैदा होती है, और हम असके भक्त बन जाते हैं। किसी भी प्रान्तकी यात्रा कर चुकनेके बाद अखबारोंमें अस प्रान्तके समाचार पढ़ते समय हमारे दिलमें अनके लिअे कितनी दिलचस्पी होती है?

लेकिन अैसी यात्राके मूलमें दुनियाको लूटनेकी वृत्ति नहीं होनी चाहिये। जहां दुनियाका सत्त्व चूस लेनेकी, असमे अधिक-से-अधिक फायदा अुठानेकी वृत्ति रहती है, वहां अूपर कहे गये अुच्च लाभोंमें से बहुत ही थोड़े लाभ हाथ आते हैं। स्वार्थी प्रवृत्तिसे प्राप्त होनेवाले लाभोंकी बहुत बड़ी मर्यादा होती है। जब कोअी भक्त या सेवक यात्राके लिअे निकलता है, तो अन्तर्बाह्य सारी शक्तियां अपना संघ लेकर असके साथ हो लेती हैं। दुनियाको घूमनेवाला मनुष्य आखिर अिन्द्रिय-परायण ही होगा। और चूंकि अिन्द्रियानुभव अेक हद तक ही आवश्यक होते हैं, अिसलिअे जैसे-जैसे अनकी मात्रा बढती है, वैसे-वैसे वे अधिकाधिक स्वाद-हीन होते जाते हैं और अन्तमें अनका छिछलापन प्रकट हो जाता है। अिन्द्रियानुभवसे मिलनेवाला आनन्द परिमित होता है। मानव-जाति असका अन्त देख चुकी है।

किन्तु मनुष्यने आज भी हृदयानुभवसे होनेवाले विकासका अन्त नहीं देखा है। असकी विविधता अभी नष्ट नहीं हुअी है। मनुष्य जितना अधिक निःस्पृह, निराग्रही और निस्स्वार्थ होता है, यात्रा द्वारा वह अुतनी ही अधिक संस्कारिता प्राप्त कर सकता है। जब भक्त या सेवक यात्राको निकलता है, तो असमें आत्मानुभव, आत्मविकास और आत्मैक्य

अैन वक्त पर क्यों तोड़ दिया? या जावा, बाली, स्याम और सुमात्रा में कब जाअूगा? मॉरिशियससे आये हुअे निमंत्रण मैं कब स्वीकार करूंगा? यदि कोअी अैसे सवाल मुझसे पूछे तो यह स्वाभाविक है। न जानेका कुछ कारण हो सकता है, पर जानेके लिअे कारणकी क्या जरूरत? कभी नदीसे किसीने पूछा है कि तू क्यों बहती है? जब अुसका बहना रुक जाता है, तभी सबको अचरज होता है।

हिमालयकी यात्राके लिअे मैं किस प्रकार गया और उससे क्या-क्या पाया, अिसका कुछ कुछ वर्णन तो अिस यात्रा-वृत्तान्तमें शुरूसे आखिर तक जगह जगह आया ही है। हिमालय जानेकी वृत्ति हिन्दूमात्रमें स्वाभाविक रूपसे होती है। सिन्धु, गंगा, ब्रह्मपुत्रा और अुनकी सखियां सभी हिमालयकी पुत्रियां हैं। अिसलिअे हरअेक नदीभक्तको कभी-न-कभी अपने ननिहालमें मौज करने जाना ही है। हिमालयका वैभव संसारके सभी सम्राटोंके समस्त वैभवसे भी बढ़कर है। हिमालय ही हमारा महादेव है। अखिल विश्वकी समृद्धिको समृद्ध करता हुआ भी वह अलिप्त, विरक्त, शान्त और ध्यानस्थ है। हिमालयमें जाकर अुसीको हृदयमें धारण कर लेनेकी शक्ति जिसमें है, अुसीने जीवन पर विजय पाअी है। अैसे विजयीको अनन्त प्रणाम।

पूना, २७–५–'३८   दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर

अितिहास

असलमें यह लेखमाला छपानेके अिरादेसे लिखी ही न गयी थी। आश्रमके साथियों और विद्यार्थियोंके सन्तोषके लिअे आश्रमके अेक हस्त-लिखित मासिकपत्रमें अिसे शुरू किया था। अिसमें जिस यात्राका वर्णन है, अुसमें हम तीन जन थे : स्वामी आनन्द, मैं और हम दोनोंके आत्मीय मित्र अनन्तबुवा मरढेकर। हमारी अिस त्रिपुटीने हिमालयकी यात्रामें जो आनन्द और अनुभव प्राप्त किया, अुसके वर्णनका पार नहीं आ सकता।

*　　　　*　　　　*

दिल्ली दरबारके बाद जो दमन-चक्र शुरू हुआ, अुसके कारण राष्ट्रीय शिक्षाकी प्रिय प्रवृत्ति असम्भव हो गयी। अिसलिअे मुझे यात्रा करनेकी सूझी। १९१२ के शुरूमें मैंने घर छोड़ा। मुझे अैसा स्मरण है कि जिस दिन मैंने वड़ौदा छोड़कर प्रयाग यानी अिलाहाबादका रास्ता लिया, वह दिन अखातीजका दिन था। प्रयाग, काशी और गया, अिन तीन तीर्थोंकी यात्राको त्रिस्थलीकी यात्रा कहते हैं। वह पूरी करके मुझे पितृऋणसे मुक्त होना था। अुसके बाद मुझे बेलुड मठ देखने और 'श्री रामकृष्ण कथामृत' लिखनेवाले श्री महेन्द्रनाथ गुप्तके दर्शन करनेका अपना संकल्प पूरा करना था। सौभाग्यसे हम बेलुड़ मठमें वैशाख पूर्णिमाको पहुंचे। अिसलिअे मठाधिपति स्वामी प्रेमानन्द और दूसरे मठवासियोंके साथ वहां बुद्ध भगवानकी पूजा कर सके। अुसी दिन खरडह नामके गांवमें हम चैतन्य-संकीर्तन सुनने गये थे। भगिनी निवेदिताने अपने अेक लेखमें अिस स्थानका माहात्म्य बतलाया है। मेरे मित्र बावा मरढेकर वंश-परम्परासे रामदासी सम्प्रदायके थे। अुनका अयोध्याजीके दर्शन करनेका संकल्प था। अुसे पूरा करके हम स्वामी आनन्दसे मिलने अलमोड़ा गये। वैशाखका महीना हमने वहीं बिताया। वहांसे स्वामी आनन्दको लेकर हम लौटे, और हरिद्वारसे बाकायदा यात्रा शुरू कर दी। वे गंगा-दशहरेके दिन थे। ज्यों-ज्यों हम अपनी यात्रामें आगे बढ़ते गये, त्यों-त्यों यात्राका संकल्प भी बढ़ने लगा। और अन्तमें हम अुत्तराखण्डके

चारों धामोंकी — जमनोत्री, गंगोत्री, केदारनाथ और बदरीनाथकी यात्रा पूरी करके वापस अलमोड़ा पहुंचे। अिसी यात्राका वर्णन यहां दिया गया है।

संसारमें प्रायः अैसा माना जाता है कि पैदल यात्रा करना मुश्किल है। मैं समझता हूं कि यात्रा करनेकी अपेक्षा अुसका वर्णन लिखनेके लिअे समय निकालना ज्यादा मुश्किल है। यहां हिमालयकी जिस यात्राका वृत्तान्त दिया गया है, वह चालीस दिनमें समाप्त हुअी थी। सन् १९१९ में अर्थात् यात्राके सात वर्ष बाद अुसका वर्णन लिखना शुरू किया। पुराने संस्मरण सभी समान रूपसे ताजे नहीं रह सकते, और जो संस्मरण ताजे न हों अुनका वर्णन करनेमें कभी मजा नहीं आता।

कअी तरहकी परिस्थितियोंके कारण थोड़ी-थोड़ी करके मेरी यह लेखमाला पन्द्रह साल तक लिखी जाती रही। फिर अिसमें अेकरूपता कहांसे आ पाती? अगर पाठक अुसे ध्यानसे देखेंगे, तो अुन्हें अिसमें जीवन-रसकी बदलती हुअी वृत्तियां दिखाअी देंगी। अन्तिम पांच-सात अध्याय जल्दी जल्दीमें लिखे गये थे, अिसलिअे अुनमें वर्णनोंका विस्तार कम दिखाअी देगा। अेक तो मैं संस्मरण बहुत कुछ भूल गये थे, और दूसरे यात्राका अन्तिम भाग भी कुछ थकावटमें ही पूरा हुआ था। अतः अुस थकावटका असर भी अिन अन्तिम अध्यायों पर पड़ा है। पाठकोंने जो अपेक्षा रखी थी और जिस अपेक्षाके लिअे मैं जवाबदेह हूं, वह अगर यहां पूरी न हुअी हो तो, आशा है वे अुदार हृदयसे मुझे क्षमा करेंगे।

अिन पन्द्रह वर्षोंमें गुजरातके नवयुवकोंने कअी यात्रायें की हैं। मैं आशा करता हूं कि गुजरात और सारे भारतके युवक यात्राका महत्त्व अुत्तरोत्तर अधिक समझेंगे; चारों दिशाओंमें घूमकर देश तथा देशबन्धुओंका अवलोकन करेंगे; और भारत-भक्तिसे लबालब अनेक यात्रा-वर्णन लिखकर स्वभाषाको सुशोभित करेंगे। मातृभूमिका और अुसके असंख्य बालकोंका अनेक प्रकारसे दर्शन करके अुनका वर्णन करना भी अेक प्रकारकी पूजा ही है। अिस पूजाके प्रथम पुष्पके नाते अिस लेखमालाका स्मरण थोड़े दिन तक भी रहा, तो यह सार्थक मानी जायगी।

दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर

विनय

हिमालयका यह प्रवास सन् १९१२ के अरसेमें किया था। पांच-छह बरसके बाद अिस प्रवासका वर्णन साबरमतीके सत्याग्रह आश्रममें बैठकर लिखना शुरू किया; और खण्डशः अुसे सन् १९३० के करीब पूरा किया। जब कभी समय मिला और किसी स्नेहीने प्रेरणा दी, अेक-दो प्रकरण लिख दिये। अिस ढंगसे यह किताब लिखी गयी है। गुजरातके जनसमुदायमें मैं अितना घुलमिल गया था और गांधीजीके 'नवजीवन' के द्वारा लोगोंके अितने संपर्कमें आया था कि लोगोंने अिस प्रवास-वर्णनको बड़े चावसे पढ़ा। गुजरातीमें अिस किताबकी छह आवृत्तियां हो चुकी हैं। बादमें अिसका मराठी अनुवाद हुआ। महाराष्ट्री होनेके कारण वहांके लोगोंने भी अेक परिचित व्यक्तिके प्रवास-वर्णनके तौर पर अिसका स्वागत किया।

अब यही प्रवास-वर्णन हिन्दीमें प्रकाशित होने जा रहा है। मुझे पता नहीं हिन्दीभाषी जनता अिसका कैसा स्वागत करेगी। हिन्दी-जनता मुझे राष्ट्रभाषा-प्रचारककी हैसियतसे ही पहचानती है। जबसे महात्माजीने नागरी और अुर्दू दोनों लिपिके स्वीकार पर जोर दिया और मैंने अुसका प्रचार शुरू किया, तबसे हिन्दीभाषी जनता कुछ अप्रसन्न-सी हुअी है। मेरे सनातनी संस्कारोंसे वह परिचित नहीं है। परिचित होती तो शायद चन्द लोग मेरे अुर्दू लिपिके स्वीकार पर अधिक नाराज हो जाते!

जब मेरे मित्र दादा धर्माधिकारीजीने बड़े प्रेमसे हिमालयके प्रवासका हिन्दी अनुवाद करना स्वीकार किया, तब हिन्दुस्तानी प्रचारका प्रारम्भ हुआ था। मैंने अुनसे कहा कि अिस पुस्तकका सारा वायुमण्डल केवल हिन्दू समाजके सामाजिक-धार्मिक जीवनसे सम्बन्ध रखता है। अिसके पाठकगण भी अुसी ढंगके होंगे। अिसलिअे अिसे हिन्दुस्तानी शैलीमें अुतारनेका प्रयत्न न करें। जैसी मेरी शैली गुजरातीमें है वैसी ही हिन्दीमें प्रतिबिम्बित हो जाय, यही अिस किताबके लिअे अिष्ट है।

१

संकल्प

गच्छति पुरः शरीरं
धावति पश्चादसंस्तुतं चेतः।

हिमालय जानेकी मेरी बड़ी अिच्छा थी; मैं हमेशा हिमालय जानेकी बात तो सोचा करता था; लेकिन कैसे जा सकूंगा, अिसकी कोअी कल्पना भी मेरे दिमागमें नही थी। आखिर अेक दिन अनसोचे ढंगसे मेरे लिअे हिमालय जानेका रास्ता खुल गया।

परिवारके लोगोंको घर पहुंचानेके लिअे मैं बेलगाम गया। वहांसे कहां जानेवाला हूं, अिसकी कोअी खबर किसीको दिये बिना ही मैं काशीयात्राके बहाने रवाना हुआ। अनन्तबुवा मेरे साथ थे।

हम चले, रेलगाड़ीके वेगसे चले। लेकिन हमारी कल्पनाअें तो पवनवेगसे — पवनवेग ही क्यों, मनोवेगसे — दौड़ती थीं। मेरे दिलमें विचार आया, मैं महाराष्ट्र छोड़कर जा रहा हूं। शायद लौट भी न सकू। अब मराठीकी मीठी बातें फिर कहा सुननेको मिलेंगी? अेक तरफ हिमालय खीच रहा था। दूसरी तरफ महाराष्ट्रका मोह छूटता नही था। हृदय आगे दौडता था, लेकिन पैर अुठते ही न थे। आखिर विचार किया कि गोआकी रमणीय निसर्गश्रीका निरीक्षण करनेमें आठ-दस दिन बिताये बगैर तो हरगिज न जाअूगा। चैत्र प्रतिपदासे रामनवमी तक गोआमें रहा, और अुदास अन्तःकरणके साथ गोआसे रवाना हुआ।

समुद्रके रास्ते हम बम्बअी आये। बम्बअीमें मुझे कोअी खास काम तो नही था, लेकिन मुझसे किसी तरह बम्बअी छोड़ी नहीं जाती थी। बम्बअी महाराष्ट्रका अन्तिम दर्शन था। मुझे महाराष्ट्रसे अितना अनुराग होगा, मराठी भाषा मुझे अितनी प्यारी होगी, अिसकी कल्पना भी अितने दिनों तक मुझे नहीं थी। मैं महाराष्ट्रीय हूं, यह भावना भी जब मैंने बम्बअी छोड़ी, तभी यथार्थमें जाग्रत हुअी। बम्बअीसे मैं बड़ौदा आया।

भूत बनने पर जीवात्मा जिस प्रकार अपनी मृत देहको अनेक मिश्रित भावोंसे देखता है, अुसी प्रकार, वैसे ही मिश्रित भावोंसे, गंगनाथ विद्यालयका मकान आदि सब कुछ मैंने अन्तिम बार देख लिया। गुरुजनोंसे आशीर्वाद लिया और शिव-जयन्तीके दिन (?) सीमोल्लंघन किया।

२

प्रयागराज

वैशाखका महीना था। गरमी सख्त पड़ रही थी। हमारी गाड़ी मध्य हिन्दुस्तानके विस्तीर्ण प्रदेशमें से दौड़ने लगी। डिब्बे अितने गरम हो गये थे, मानो डबल रोटीकी भट्टियां हों। हरअेक स्टेशन पर पानी पीने पर भी गला सूखा जाता था। जी बेचैन रहता था। फिर भी, अेक चीजके कारण कलेजेको ठंडक पहुंचती रहती थी। हरअेक स्टेशन पर मराठी भाषा सुनाअी देती थी, और पुण्डलीकके धामके रास्ते आते हुअे जिस तरह दोनों तरफ बबूलके पेड़ नजर आते हैं, अुसी तरह यहां भी नजर आ रहे थे। मराठी भाषा और बबूलके पेड़ जहां तक थे वहां तक मैं महाराष्ट्रमें ही हूं, अिस विचारसे चित्तको शान्ति मिलती थी। लगभग जबलपुर तक यही सिलसिला रहा।

जबलपुरमें मेरे अेक मित्र रहते थे। अुन्हें खोजकर मैं अुनसे मिला, और अुनके यहां भोजन किया। मेरे दिलमें विचार आया कि यही मेरा आखिरी महाराष्ट्रीय भोजन है। विचित्रता यह रही कि मुझे यह भोजन भी गुप्तवेशमें ही करना पड़ा। कभी वर्ष पहले मेरे ये मित्र अेल-अेल० बी० की तैयारी कर रहे थे; अुस वक्त मैंने अुन्हें यह समझानेकी कोशिश की थी कि वकालतका धन्धा गन्दा है, अुसकी अपेक्षा राष्ट्रीय शिक्षक होना कहीं अच्छा है। मैं अपने अिस षड्यंत्रमें सफल हुआ, अिसलिअे मेरे मित्रके सभी आत्मीय और सगे-सम्बन्धी मारे कोपके मुझसे जलते थे। अुन्होंने मुझे देखा तो न था, लेकिन मेरा नाम सुना था। मुझे देखकर मेरे मित्रने मुझसे अंग्रेजीमें कहा — "भाअी, अगर मेरी मांको यह पता चल

जाय कि तुम कौन हो, तो तुम पर तुरन्त फूल बरसने लगेंगे। तुम्हें आध घण्टेमें लौटना है। अितनी-सी देरके लिअे व्यर्थका बखेड़ा क्यों मोल लिया जाय?" मैंने भी अुनकी बात मान ली, और चोरकी तरह चुपचाप नहा-धोकर भोजन कर लिया। नाम और रूपका संयोग नहीं हुआ था, अिसलिअे बेचारी मांने बड़े प्रेमसे रसोअी पकाकर मुझे गरमागरम महाराष्ट्रीय भोजन खिलाया। बिदा होते समय मैंने अुसके सामने अपना माथा नमाया, और प्रेमल माताके सारे शुभ आशीर्वाद पाकर मैं रवाना हुआ।

हमारी यात्राका पहला धाम था प्रयागराज। अितिहास-पुराणोंमें प्रसिद्ध गंगा-यमुनाका रमणीय संगम यहीं है। अक तरफसे दोनों किनारोंकी सफेद बालू अुछालती हुअी स्वर्धुनी दौड़ती आती है। दूसरी तरफसे यमराजकी बहन अपना महत्त्व और प्रतिष्ठा संभालती हुअी धीरे-धीरे आगे बढती है। संगमसे दूर तक अिन दो नदियोंके धवल और श्याम प्रवाह अिस प्रकार बहते हैं, मानो वे अलग-अलग ही हों। प्राचीन कालसे हमारे कवियोंने अिस संगमके काव्यमय स्थान पर अपनी सरस्वती बहायी है। हमारी धर्मनिष्ठ जनताने अति प्राचीन कालसे असाधारण अुत्साहके साथ अिस त्रिवेणी-संगमकी पूजा की है। गंगाका नाम लेते ही हरद्वार और ब्रह्मावर्त्त याद आते हैं। और यमुनाका नाम सुनते ही कभी तो कुंजविहारीका मथुरा-वृन्दावन याद आता है, और कभी शाहजहांकी दिल्ली और आगरेका स्मरण होता है। हिन्दू और मुसलमान संस्कृतिकी अेकताकी थोड़ी झांकीभर करनेवाले सम्राट् अकबरने अिसी संगम पर अवस्थित सनातन अक्षयवटके आसपास अेक मजबूत किला बनवाया है।

हम किला देखने गये। किलेमें गोरोंकी फौज रहती है। किलेके संगमकी तरफवाले दरवाजे पर जब यात्रियोंकी बहुत भीड़ हो जाती है, तो अन्दरसे अेक सिपाही आकर सबको भीतर ले जाता है, और अक्षयवटका दर्शन कराकर दूसरे दरवाजेसे बाहर निकाल देता है। अक्षयवट तो अेक तहखाने-जैसी गुफामें है। वट तो क्या, अेक जबरदस्त तना-भर है। श्रद्धालु लोग कहते हैं कि वृक्षका तना यहां है, और अुसकी डालियां बुद्धगयामें हैं। अिसका अर्थ क्या है, सो समझना मुश्किल है। क्या अिसका यह मतलब किया जाय कि किसी समय बौद्ध धर्म बुद्धगयासे

अिलाहाबाद तक फैला हुआ था? अैसा कहा जाता है कि हिमालयमें भी महादेवके महालिंगका अेक छोर केदारनाथमें है, और दूसरा नेपालमें पशुपतिनाथके रूपमें है। लेकिन अुसका अर्थ क्या? अरे, हिन्दू तो यह भी कहते नहीं हिचकते कि गदाधर श्रीविष्णुका अेक पैर गयामें है, और दूसरा मक्केमें! कल्पनाके साम्राज्यमें संयमसे क्या मतलब? अक्षयवटकी गुफा काफी लम्बी-चौड़ी है और अुसमें अनेक मूर्तियां हैं। किसी समय गंगा-यमुनाका प्रवाह अक्षयवटसे करीब-करीब लगा हुआ ही था। अुस जमानेमें कओी हिन्दू अिस अक्षयवटसे प्रवाहमें कूदकर देहत्याग करते थे। अैसा माना जाता था कि अिस प्रकार अक्षयवटसे कूदकर आत्महत्या करना पाप नहीं है, बल्कि अुसमें मुक्ति है। मानो लोगोंको अिस अघोर साधनासे तंग आकर ही संगमने अपना स्थान बदल लिया, और अकबरने बरगदके आसपास किला बनवाकर अिस आत्महत्याकी सम्भावनाको सदाके लिअे मिटा दिया। सैनिक दृष्टिसे तो किलेका महत्त्व है ही।

अिस किलेमें बौद्धधर्मीय सम्राट् अशोकका अेक शिलास्तम्भ है। अुस पर अशोककी धर्मलिपि खुदी हुआी है। समुद्रगुप्तके राजकवि हरिषेणके लिखे हुअे कुछ श्लोक भी अिसी स्तम्भ पर खुदे हुअे हैं। अितिहासवेत्ता अिन दोनों आलेखोंको बहुत महत्त्वका मानते हैं।

गायके सिपाहीकी थोड़ी खुशामद करके मैंने अशोकके अिस शिलास्तम्भके पास जानेकी अिजाजत पाओी। सिपाही बेचारा पंजाबी था। कहने लगा — 'यहां दर्शनके लायक कोओी चीज नहीं है। दर्शन तो अुस गुफामें है।' बेचारा भोला पंजाबी! यह क्या जाने कि मेरे लिअे दर्शन क्या है? अिस पत्थरके गोल खम्भे पर दिग्विजय और धर्मविजयके दो स्वतंत्र और अमर लेख हैं, अिसका बोध अुसे कब होगा? क्या जब हिन्दुस्तानमें शिक्षा अनिवार्य और सार्वत्रिक होगी तब? राष्ट्रीयताकी भूमिका घर-घर पहुंचेगी तब? या कोओी लोककवि जनताकी विविध बोलियोंमें अुसकी महिमा गायेगा तब?

किलेके सामने ही संगमके पास अेक विस्तीर्ण रेतीला मैदान है। अुसमें प्रयागके पण्डे अपने-अपने डेरे लगाकर बैठे होते हैं। तम्बुओंके अिस

घनी बस्तीमें यात्री अपने पण्डेका तम्बू पहचान सकें, अिसके लिअे हरअेक तम्बू पर विशिष्ट चिह्नांकित ध्वजा होती है। कोअी कपिध्वज, कोअी मकरध्वज, तो कोअी नौकाध्वज। नये जमानेकी सूचक 'हवाअी-गाड़ियां' (मोटरें) और रेलगाड़िया भी ध्वजा पर दिखाअी देती हैं।

हर बारहवें साल यहां प्रख्यात कुंभमेला लगता है। हर साल माघ-मेला तो लगता ही है। अिन मेलोंमें प्रान्त-प्रान्तके साधु, संन्यासी, तपस्वी और मन्त-महन्त आते हैं। धर्मचर्चा होती है, तत्त्वज्ञानके दंगल होते हैं, नअी-नअी दलीलोंका लेन-देन होता है। आतुर शिष्योंको गुरु मिलते हैं, और शिष्योंके दीवाने गुरुओंको चेलोंकी प्राप्ति होती है। हरअेक वाद-विवादमें कितने प्रमाण मानने चाहिये, अिसकी चर्चा तो घण्टों चलती रहती होगी। कोअी प्रत्यक्ष तथा अनुमानको ही मानते हैं। बहुतेरे अुपमान और शब्द-प्रमाणको मानते हैं। नंगे साधुओंमें जब शास्त्रार्थ होते है, तो न्यायशास्त्रमें बताये हुअे प्रमाणोंके अलावा लाठी और गालीके दो अतिरिक्त प्रमाणोंका अधिक प्रयोग होता है। ये लोग मौतसे नहीं डरते, लेकिन पुलिससे बहुत डरते हैं। क्योंकि अगर पुलिस अिन्हें पकड़कर हिरासतमें ले ले, तो वहा ये अपने धर्मका पालन नहीं कर सकेंगे! अगर डण्डेबाजीमें पांच-दस साधु खप जायं, तो पुलिसके आनेसे पहले अुनके मुर्दोंको रेतमें पूरकर और रेतकी सतह बराबर करके वे अुस पर बैठ जायगे। चाहे वहा हजारो बाबा क्यों न खड़े हों, पुलिसको अेक भी गवाह न मिलेगा। अपराधियोंको सजा देनेसे समाजमें अपराध कम नहीं हुअे हैं, और अैसे साधुओंको सजा न होनेसे अुनमें अपराध बढ़े नहीं हैं, यह बात विचार करने योग्य है।

मुझे प्रयागराजमें पिताजीके फूलों(अस्थियों) का त्रिवेणी-संगममें विसर्जन करना था। वह काम पूरा करके मैंने श्राद्ध किया। नदी-किनारे मूछें मुड़वाये हुअे लोग बहुत देखनेमें आते थे, अिस कारण अैसा लगता था मानो मद्रासी लोगोंने अुत्तर हिन्दुस्तानमें अपनी अेक बस्ती ही बसा ली है। आम तौर पर हम जब सिन्धियोंको देखते हैं, तो वे नीम-अंग्रेज और नीम-पारसी जैसे लगते हैं; लेकिन तीर्थक्षेत्रमें अत्यन्त श्रद्धाशीलता दिखानेवाले और भक्तिसे गद्गद होनेवाले यात्रियोंमें सिन्धका नम्बर पहला

आयेगा। महाराष्ट्रीय थोड़े खर्च और थोड़े समयमें अधिक-से-अधिक कैसे देखा जाय, और पुण्यका संचय कैसे हो, अिसी पर ज्यादा ध्यान देते हैं। गुजराती हमेशा खाने-पीनेकी सुविधाकी फिक्रमें घूमते हुअे नजर आते हैं। और बंगाली अिस बातकी अधिक चिन्ता रखते हुअे दिखाओी देते हैं कि अुनकी भक्तिके भावावेशको सारी दुनिया अच्छी तरह देख सके। मद्रासी चेहरे परसे तो होशियार मालूम होते हैं, लेकिन हिन्दी न जाननेके कारण और अपने विचित्र रिवाज और पोशाकके कारण रोझों (जंगली घोड़ों) के समान यहां-वहां भटकते दिखाओी देते हैं। मजदूरों और गाड़ी-वालोंसे तो अुनकी कभी बनती ही नहीं।

युक्तप्रान्तके लोगोंके लिअे प्रयाग कोओी परदेश नहीं है। वे तो बाकायदा रुओीकी मिरजओी पहने, सिर पर कुछ तिरछी टोपी लगाये, मुंहमें पान दबाये, सजे हुअे सांड़के समान घूमते-फिरते हैं। अुन्हें देखकर हर कोओी कह सकता है — 'आत्मन्येव च संतुष्टः अस्य मार्गं न विद्यते।' अंग्रेजी पढ़ा-लिखा आदमी चाहे किसी प्रान्तका क्यों न हो, अुसकी अेक अलग जात बन ही जाती है। अैसे तीर्थस्थानमें आनेसे मेरी शिक्षा पर कोओी धब्बा तो नहीं लग गया है, अैसी मुखमुद्रा बनाकर वह सबसे दूर, अलग-थलग घूमता है। और अिन सबके चित्र-विचित्र स्वभावों, पोशाकों, और रिवाजोंकी तरफसे बिलकुल अुदासीन रहकर गंगा और यमुनाका सनातन प्रवाह अमरपुरी वाराणसीकी ओर अखण्ड, अविरत बहता ही रहता है।

३

अमरपुरी वाराणसी

मैं पहले भी अेक बार काशीजी गया था। तो भी परिचयसे अुत्पन्न होनेवाली अवज्ञा मुझमें पैदा नहीं हुअी थी। जब रेलमें बैठकर मैं गंगाजीके पुल परसे जा रहा था, तब काशीका यह अद्भुत दृश्य देखकर मैं गद्गद हो अुठा था। काशीमें दूरसे ही हमेशा अेक अैसी आवाज सुनाअी देती है, मानो शहदके छत्ते पर बैठी हुअी मधुमक्खियां गुनगुना रही हों। 'वारणा' नदीसे 'असी' नदी तकके दृश्यमें सबसे अधिक ध्यान तो औरंगजेबकी मसजिदकी गगनस्पर्शी दो मीनारें ही आकृष्ट करती हैं। अुन मीनारोंको देखकर अेक विचार-परम्परा मनमें जाग्रत हुअी। मैंने मन ही मन कहा — "अिन दो मीनारोंके पीछे हिन्दुस्तानके अितिहासका परम रहस्य — चरम रहस्य — छिपा हुआ है। औरंगजेबने धर्मान्धताके जोशमें आकर काशीके केन्द्र, हिन्दू धर्मके तिलक, विश्वेश्वर-नाथके मन्दिरको तुड़वा डाला और अुसकी जगह अेक मसजिद बनवायी। आज भी अिस मसजिदके पिछले हिस्सेमें मूल मन्दिरका अवशेष दीख पड़ता है। औरंगजेबकी मृत्यु हुअी। मुगल साम्राज्यका पतन हुआ। हिन्दू-पदपादशाहीकी स्थापनाकी अिच्छा करनेवाले मराठोंकी धाक दिल्ली पर जम गअी। मराठा सरदार हरिद्वारके पण्डोंको भूमिदान देने लगे। फिर भी, अिन हिन्दुओंको काशी-जैसे पवित्र धर्मक्षेत्रमें अिस्लामकी पताकाके समान विराजती हुअी औरंगजेबकी मसजिद तोड़ डालनेके विचारने स्पर्श तक नहीं किया। आज यह मसजिद अिस्लामके विजयकी पताका नहीं रही है। लेकिन जब हिन्दुओंका साम्राज्य लगभग सारे देशमें फैल गया था, अुस समय प्रकट की हुअी अुनकी सहिष्णुताकी ध्वजा है। हिन्दू जातिके अिस प्रेममंत्रको अंग्रेज समझ ही नहीं सकते, फिर वे अिसे ग्रहण तो कैसे करते? अिसीलिअे कानपुरके कुअें पर लिखे हुअे अपने द्वेष-लेखकी हिफाजतके लिअे सरकारने वहां गोरोंका पहरा बैठा दिया है, और

हम श्मशान-घाटकी तरफ चले। वहां कटी हुआी लकड़ियोंका ढेर रचकर रखा था। मैंने सोचा, कहीं मेरे लिअे ही तो यह ढेर नहीं रचाया गया है? जो मनुष्य काशीमें मरता है, अुसके कानमें स्वयं महादेव तार स्वरसे मन्त्र पढ़ जाते हैं, और काशी-विश्वेश्वर हमेशा अपने शरीरमें अुसकी चिताभस्मका लेप करते हैं।

आगे चलकर हमने बिन्दुमाधवका दर्शन किया। सिन्धिया-होलकरके अन्नसत्र देखे। पुण्यश्लोका अहल्याबाअीका स्मरण हुआ। अुनकी व्यवस्थाके अनुसार रोज काशीसे रामेश्वर जानेवाली बहंगीका चित्र दृष्टिके सामने आया। हमने विश्वनाथजीके दर्शन किये। यहांकी वह भीड़, वह कीचड़, और सड़े हुअे बिल्वपत्रोंकी वह गन्ध, ये सब कैसे ही क्यों न हों, तो भी काव्यमय प्रतीत होते थे और भक्तिभावमें वृद्धि ही करते थे। विश्वेश्वरके दरबारमें कोअी भेदभाव नहीं है। सब समान हैं। दर्शनोंके लिअे चाहे जो जाय, चाहे जब जाय। 'मत जाओ' का नाम न मिलेगा। मन्दिरके गर्भगृहकी दीवारमें अेक तिरछा छेद बनाया गया है। अिस छेदको बनानेका कारण मेरी समझमें नहीं आया। लेकिन मन्दिरकी परिक्रमा करते वक्त मैंने देखा कि दुनियाकी यात्रा करनेवाले गोरे 'ग्लोब ट्रॉटरों' (भूगल-यात्रियों) के लिअे विश्वेश्वरके दर्शनोंका प्रबन्ध करनेके विचारसे ही यह छिद्र बनाया गया है। जिस वक्त हम गये, अुस वक्त वहां टॉमस कुकका अेक अेजेण्ट दो तीन मेमोंको मन्दिरके विषयमें जानकारी दे रहा था। किसीने मुझसे कहा कि मन्दिरके गुम्बद पर मढ़ी हुआी सोनेकी चद्दर पंजाब-केसरी रणजीतसिंहकी श्रद्धाका अेक चिह्न है। पास ही औरंगजेबकी मसजिद है और बीचमें ज्ञानवापी है। कहते हैं कि जब यवन पुराने मन्दिरको भ्रष्ट करने आये, तब कलियुगकी महिमा जानकर विश्वेश्वरकी मूर्ति अिस कुअेंमें कूद पड़ी थी। यह कुआं ठेठ पाताल तक गया है!

वहांसे हम वह मठ देखने गये, जिसमें बैठकर अेकनाथ महाराजने अपना 'नाथ-भागवत' नामक ग्रंथ पूरा किया था। अिसी स्थान पर यह सिद्ध हुआ था कि संस्कृत भाषाका सामर्थ्य और लालित्य मेरी मराठीमें भी है। अिस विचारके आते ही हृदयमें भक्ति अुमड़ आअी।

मैंने अुस स्थानको दण्डवत् प्रणाम किया, अेकनाथ स्वामीका स्मरण किया, और हम त्रिलिंग स्वामीकी मूर्तिके दर्शन करने गये। त्रिलिंग स्वामी अेक सुविख्यात दक्षिणी संन्यासी थे। अुन्होंने काशीजीमें अनेक मन्दिरों और मकानोंका जीर्णोद्धार कराया था। लेकिन वे अेक भी नया मन्दिर या नया मकान बनवानेको तैयार न होते थे। अिसका कारण स्पष्ट है। काशीजीके छोटे-मोटे मन्दिरों और मूर्तियोंकी गिनती की जाय, तो अुनकी संख्या अितनी निकले कि वह काशीजीकी जनसंख्यासे बहुत कम तो न हो। वहां और नये मन्दिर बनवानेकी जरूरत ही क्या है?

हिन्दुस्तानमें अनेक साम्राज्य हो गये। अनेक राजधानियां हो गअीं। आज वे राजधानियां या तो नामशेष हो गअी हैं, या छोटे-छोटे गांवोंमें रूपान्तरित हो गअी हैं। लेकिन यह देवनगरी अनेक साम्राज्योंके अभ्युत्थान और पतनकी साक्षी होकर भी आज तक ज्यों-की-त्यों बनी है। यदि भूतकालको सजीव देखना हो, तो काशीजीमें देख सकते हैं। गंगाजी अपने घाटरूपी बन्धनोंको बार-बार तोड़ती ही रहती है, और जिस तरह अपनी मांकी लात खाकर भी बछड़ा दूध पीने दौड़ता ही है, अुसी तरह लोग भी फिर-फिर नये-नये घाट बनवाते जाते हैं।

वाराणसीमें आज भी पूर्व मीमांसावादी कर्मकाण्डियोंके यज्ञ-याग चलते रहते हैं; वेदान्ती द्वैत-अद्वैतका झगड़ा करके श्रोताओंको खण्डन-खण्ड-खाद्य देते हैं; वैयाकरणी अेक-अेक शब्दकी खाल निकालते हैं; बंगाली और दक्षिणी नैयायिक 'गादाधरी' का अर्थ करनेकी कोशिश करते हैं; अीसाअी और आर्यसमाजी वाग्युद्धकी धूम मचाते हैं; वेदाभ्यासी दश-ग्रंथोंका घोष करते हैं; कारीगर टांकी चला-चलाकर पत्थरको देवता बनाते हैं; और कअी भूदेव अन्नक्षेत्रमें खाकर निठल्ले बैठे-बैठे जीवित पत्थर बन जाते हैं।

अिसी नगरीमें अग्रजों और अन्त्यजोंने विश्वामित्रके ॠणसे मुक्त होनेमें सत्यसन्ध हरिश्चन्द्रकी मदद की थी। अिसी नगरीमें तुलसीदासने रामकथाका गान किया था। और यहीं कबीरजीने हिन्दू और मुस्लिम संस्कृतियोंको अेक सूत्रमें पिरोया था।

हम श्मशान-घाटकी तरफ चले। वहां कटी हुआी लकड़ियोंका ढेर रचकर रखा था। मैंने सोचा, कहीं मेरे लिअे ही तो यह ढेर नहीं रचाया गया है? जो मनुष्य काशीमें मरता है, अुसके कानमें स्वयं महादेव तार स्वरसे मन्त्र पढ़ जाते हैं, और काशी-विश्वेश्वर हमेशा अपने शरीरमें अुसकी चिताभस्मका लेप करते हैं।

आगे चलकर हमने बिन्दुमाधवका दर्शन किया। सिन्धिया-होलकरके अन्नसत्र देखे। पुण्यश्लोका अहल्याबाओीका स्मरण हुआ। अुनकी व्यवस्थाके अनुसार रोज काशीसे रामेश्वर जानेवाली बहंगीका चित्र दृष्टिके सामने आया। हमने विश्वनाथजीके दर्शन किये। यहांकी वह भीड़, वह कीचड़, और सड़े हुअे बिल्वपत्रोंकी वह गन्ध, ये सब कैसे ही क्यों न हों, तो भी काव्यमय प्रतीत होते थे और भक्तिभावमें वृद्धि ही करते थे। विश्वेश्वरके दरबारमें कोअी भेदभाव नहीं है। सब समान हैं। दर्शनोंके लिअे चाहे जो जाय, चाहे जब जाय। 'मत आओ' का नाम न मिलेगा। मन्दिरके गर्भगृहकी दीवारमें अेक तिरछा छेद बनाया गया है। अिस छेदको बनानेका कारण मेरी समझमें नहीं आया। लेकिन मन्दिरकी परिक्रमा करते वक्त मैंने देखा कि दुनियाकी यात्रा करनेवाले गोरे 'ग्लोब ट्रॉटरों' (सुरग-यात्रियों) के लिअे विश्वेश्वरके दर्शनोंका प्रबन्ध करनेके विचारसे ही यह छिद्र बनाया गया है। जिस वक्त हम गये, अुस वक्त वहां टॉमस कुकका अेक अेजेण्ट दो तीन मेमोंको मन्दिरके विषयमें जानकारी दे रहा था। किसीने मुझसे कहा कि मन्दिरके गुम्बद पर मढ़ी हुआी सोनेकी चद्दर पंजाब-केसरी रणजीतसिंहकी श्रद्धाका अेक चिह्न है। पास ही औरंगजेबकी मसजिद है और बीचमें ज्ञानवापी है। कहते हैं कि जब यवन पुराने मन्दिरको भ्रष्ट करने आये, तब कलियुगकी महिमा जानकर विश्वेश्वरकी मूर्ति अिस कुअेंमें कूद पड़ी थी। यह कुआं ठेठ पाताल तक गया है!

वहांसे हम वह मठ देखने गये, जिसमें बैठकर अेकनाथ महाराजने अपना 'नाथ-भागवत' नामक ग्रंथ पूरा किया था। अिसी स्थान पर यह सिद्ध हुआ था कि संस्कृत भाषाका सामर्थ्य और पावित्र्य मेरी मराठीमें भी है। अिस विचारके आते ही हृदयमें भक्ति अुमड़ आओी।

मैंने अुस स्थानको दण्डवत् प्रणाम किया, अेकनाथ स्वामीका स्मरण किया, और हम त्रिलिंग स्वामीकी मूर्तिके दर्शन करने गये। त्रिलिंग स्वामी अेक सुविख्यात दक्षिणी संन्यासी थे। अुन्होंने काशीजीमें अनेक मन्दिरों और मकानोंका जीर्णोद्धार कराया था। लेकिन वे अेक भी नया मन्दिर या नया मकान बनवानेको तैयार न होते थे। अिसका कारण स्पष्ट है। काशीजीके छोटे-मोटे मन्दिरों और मूर्तियोंकी गिनती की जाय, तो अुनकी संख्या अितनी निकले कि वह काशीजीकी जनसंख्यासे बहुत कम तो न हो। वहा और नये मन्दिर बनवानेकी जरूरत ही क्या है?

हिन्दुस्तानमें अनेक साम्राज्य हो गये। अनेक राजधानियां हो गअीं। आज वे राजधानियां या तो नामशेष हो गअी हैं, या छोटे-छोटे गांवोंमें रूपान्तरित हो गअी है। लेकिन यह देवनगरी अनेक साम्राज्योंके अभ्युत्थान और पतनकी साक्षी होकर भी आज तक ज्यों-की-त्यों बनी है। यदि भूतकालको सजीव देखना हो, तो काशीजीमें देख सकते है। गंगाजी अपने घाटरूपी बन्धनोंको बार-बार तोड़ती ही रहती है, और जिस तरह अपनी माकी लात खाकर भी बछडा दूध पीने दौड़ता ही है, अुसी तरह लोग भी फिर-फिर नये-नये घाट बनवाते जाते हैं।

वाराणसीमें आज भी पूर्व मीमांसावादी कर्मकाण्डियोंके यज्ञ-याग चलते रहते हैं; वेदान्ती द्वैत-अद्वैतका झगड़ा करके श्रोताओंको खण्डन-खण्ड-खाद्य देते है; वैयाकरणी अेक-अेक शब्दकी खाल निकालते हैं; बंगाली और दक्षिणी नैयायिक 'गादाधरी' का अर्थ करनेकी कोशिश करते है; अीसाअी और आर्यसमाजी वाग्युद्धकी धूम मचाते हैं; वेदाभ्यासी दश-ग्रंथोंका घोष करते है; कारीगर टांकी चला-चलाकर पत्थरको देवता बनाते हैं; और कअी भूदेव अन्नक्षेत्रमें खाकर निठल्ले बैठे-बैठे जीवित पत्थर बन जाते हैं।

अिसी नगरीमें अग्रजों और अन्त्यजोंने विश्वामित्रके ऋणसे मुक्त होनेमें सत्यसन्ध हरिश्चन्द्रकी मदद की थी। अिसी नगरीमें तुलसीदासने रामकथाका गान किया था। और यहीं कबीरजीने हिन्दू और मुस्लिम संस्कृतियोंको अेक सूत्रमें पिरोया था।

कुछ लोग बनारसको 'The city of the dead and the dying'—मृतकों और मरणोन्मुखोंकी नगरी कहते हैं। परन्तु जैसा कि अूपर कहा जा चुका है, हिन्दुस्तानकी अनेक नगरियां नामशेष हो गअीं; पर वाराणसी आज भी अमरपुरी ही है, क्योंकि काशीजीमें सनातन धर्मका निवास है।

अेक दिन हम दशाश्वमेध घाटसे पुल तक नावमें घूमने गये। गंगाजीके स्पर्शके कारण शीतल और पावन पवन मन्द-मन्द बह रहा था। नाना प्रकारके मन्दिर 'मुझे देखो, मुझे देखो' कहते हुअे आंखके सामने खड़े होते जाते थे। मैं सबको श्रद्धापूर्वक प्रणाम करता था। जिस प्रकार चकमक पत्थरके टेढ़े-मेढ़े पहलू सुहावने लगते हैं, अुसी प्रकार काशीके मकानोंकी विशृंखल शोभा दृष्टिको आकर्षित करती है। सांझ-सवेरे असंख्य स्त्री, पुरुष, बालक और वृद्ध गंगामैयाकी गोदमें खेलते हुअे नजर आते हैं।

दशाश्वमेध घाट पर अेक परमहंस रहते थे। वे नग्न रहा करते थे। जब मैं पहली बार बनारस गया था, तो मैंने अुनका फोटो लेनेका प्रयास किया था। परन्तु वह निष्फल हुआ। मैं जिधर मुड़ता था, अुधर ही वे अपनी पीठ फेरते जाते थे। अुस दिन मैं बहुत खिन्न रहा, लेकिन बादमें मुझे यह विचार आया कि अैसे परमहंसका फोटो लेना असंस्कारिता है। अबकी बार मैं फिर अुनके दर्शन करने गया, तो देखा कि वे वहां नहीं थे। किसीने कहा, कुछ दिन पहले गंगाजीमें बाढ़ आअी थी, अुसीमें वे बह गये। कुछ लोगोंने अुन्हें बचानेका प्रयत्न भी किया, लेकिन अुन्होंने लौटनेसे साफ अिनकार कर दिया, और गंगाजीमें जल-समाधि ले ली।

काशीमें जिस प्रकार अनेक धर्म और अनेक सम्प्रदाय हैं, अुसी प्रकार वहां स्थापत्य और शिल्पकलाके भी अनेक प्रकार हैं। दूसरे दिन हम अुन्हें देखने निकले। सब देख-दाखकर शामके वक्त थियोसॉफिस्ट लोगोंके सेण्ट्रल हिन्दू कॉलेजमें पहुंचे। वहां सरस्वतीका अेक छोटा-सा मन्दिर देखा। अेक-दो बंगाली विद्यार्थी चद्दर ओढ़कर नंगे सिर घूम रहे थे। पास ही थियोसॉफिकल सोसायटीमें श्रीमती बेसन्टका व्याख्यान था। 'भविष्यका मनुष्य-प्राणी कैसा होगा?' अिस विषय पर विवेचन हो रहा था। व्याख्यानके बाद हम लोग रामकृष्ण-सेवाश्रम पहुंचे। वहां

ब्रह्मचारी चन्द्रशेखर नामक अेक साधु थे। अुन्होंने हमारा स्वागत किया। कअी ब्रह्मचारी सस्कृत पढते थे। पासवाले रुग्णालयमें चारुबाबू रोगियोंकी सेवा-शुश्रूषा करते थे। सेवाश्रमका प्रबन्ध देखकर मैं खुश हुआ। अितनेमें दो-तीन बंगाली शहरसे तम्बूरा और तबला लेकर आये। अुन्होंने तम्बूरे और तबलेके साथ गाना शुरू कर दिया। सन्त कवि रामप्रसादका गीत था। गायक अद्‌भुत थे। शामको जब घर लौटे, तो अुसी गायनका स्वर कानोंमें गूंज रहा था।

आखिरी दिन हम कालभैरवके मन्दिरमें गये। वहां हमने अपने हाथमें और गलेमें रेशमका काला धागा बांधा। मन्दिरमें जाकर

तीक्ष्णदंष्ट्र महाकाय कल्पान्तदहनोपम ।
भैरवाय नमस्तुभ्यं, अनुज्ञां दातुमर्हसि ।।

कहकर काशीजीके अिस कोतवालसे आज्ञा ली, और त्रिस्थलीकी यात्रा पूरी करनेके अुद्देश्यसे गयाजीके लिअे रवाना हुअे। मैं जानता था कि गयाके पण्डे यात्रियोंको बहुत तंग करते हैं, अिसलिअे गयाकी सारी विधियोंकी दक्षिणा और खर्चका पैसा अनन्त भट्टजीको देकर हमने अुनसे रसीद ले ली थी। अिसमें अुतनी ही सुविधा थी, जितनी टॉमस कुक कम्पनीको प्रवासका सारा खर्च देकर कूपन-बुक लेनेमें होती है।

हरअेक हिन्दुस्तानीको जीवनमें अेक बार वाराणसीके दर्शन अवश्य करने चाहिये।

४

गयाका श्राद्ध

दुनियाकी हरअेक वस्तु मरती है, मरता नहीं अकेला अेक भूतकाल। भूतकाल चिरंजीव है। महासागरमें भाटा आता है, चन्द्रका क्षय होता है, कुबेर निर्धन होता है, पर्वत घुल जाते हैं, साम्राज्य स्मृति-पटलसे मिट जाते हैं, लेकिन लोकक्षयकृत् भूतकालका क्षय नहीं होता। भूतकाल दिन-दिन समृद्ध ही होता जाता है। लेकिन आप अुसका संग्रह नहीं कर सकते, क्योंकि आप तो वर्तमानमें ही रहते हैं। यदि भूतकालका वृक्ष आपको अपने आंगनमें रखना हो, तो आपके पास अुसे सींचनेके लिअे अमित स्मृतिजल होना चाहिये।

हरअेक मनुष्यकी यह अिच्छा होती है कि अुसकी जड़ें भी भूतकालमें हों। अपनी सन्ततिके द्वारा वह भविष्यमें तो पैर पसार सकता है, लेकिन भूतकालमें प्रवेश करनेके लिअे पैर, भूतोंके समान, अुलटे होने चाहिये। लेकिन मनुष्यने अेक हिकमत खोज ली है। वह सालमें अेक बार भूतकालमें बसनेवाले अपने पिता, पितामह और प्रपितामहका स्मरण करके अुन्हें श्रद्धांजलि अर्पण करता है, और भूतकाल पर अपनी विरासतका अधिकार साबित करता है।

यों तो भूतकाल सर्वत्र रहता है; परन्तु जिस प्रकार विष्णु वैकुण्ठमें रहते हैं, अथवा महादेव कैलासमें रहते हैं, अुसी प्रकार भूतकाल गयाक्षेत्रमें रहता है। आज अितने वर्षों बाद भूतकालमें आसानीसे प्रवेश करनेके विचारसे ही मैं फिर गयामें प्रवेश कर रहा हूं। हरअेक हिन्दू गयामें जाकर अपने पूर्वजोंका श्राद्ध करता है। पर आज मेरा जी गयाका ही श्राद्ध करना चाहता है।

हम रातको गया पहुंचे। मैं पहले अेक बार यहां हो आया था, अिसलिअे यहां पहुंचने पर किसी तरहकी असुविधाका कोअी डर न था। गया तीर्थस्थान है, अिसलिअे यहां हजारों या लाखों मनुष्य भी अेक साथ

आ जावें, तो भी असुविधाकी कोअी आशंका नहीं रहती। हरअेक घरमें कितने मनुष्य रह सकते है, अिसका हिसाब म्युनिसिपैलिटीकी ओरसे कर लिया गया है। हमारे लोगोंको ज्यादा सुविधाओंकी जरूरत नहीं होती। अिसलिअे अगर दक्षिणाके विषयमें किसी प्रकारकी चख-चख न हो, तो यात्रा सुखसे हो सकती है। स्टेशन पर पहुचते ही गयावाल पण्डोंके आढ़तिये आपके सामने हाजिर हो जाते है, और आप कहांके है? कहासे आये है? वगैरा सवाल हिन्दुस्तानकी हरअेक भाषामें पूछ लेते हैं। आप जिस भाषामें जवाब देते हैं, अुसी भाषामें वे सम्भाषण शुरू कर देते हैं। ये आढ़तिये हिन्दुस्तानके किसी भी विश्वविद्यालयके स्नातक नही होते, फिर भी वे हिन्दुस्तानकी सभी भाषायें जानते है, और यदि आपको अुनके व्याकरण-ज्ञान पर आपत्ति न हो, तो वे सभी भाषाओंमें अस्खलित बोल भी लेते है।

मुझे याद नही पड़ता कि मेरे हिस्से कौनसा पण्डा आया था। मैं समझता हूं कि मैंने अुसका दर्शन भी नही किया। अुसके मुनीमके मुनीमका मुनीम मुझे स्टेशन पर मिला, और वहांसे अेक अुतारे पर ले गया। अिस डरसे कि कहीं मैं अुसकी वाचालताका शिकार न हो जाअूं, मैंने पहले ही अुनसे कह दिया — "देखो भाअी, मैं पहले अेक बार यहां आ चुका हू। यात्राके लिअे आवश्यक सारा पैसा मैंने अनन्त भट्टको बनारसमें ही दे दिया है। अुनसे तुम्हें मिल जायगा। अब यहा मुझे अिन-अिन सुविधाओंकी जरूरत है। अुनके लिअे ये पैसे लो। मुझे कल श्राद्ध करना है; लेकिन वह मैं कर्नाटकके नृसिंहाचार्यसे ही करवाअूगा। अुन्हें कल सवेरे आठ बजेसे पहले यहा भेज देना। दोपहरमें श्राद्ध खतम होनेके बाद तुम अपनी बही ले आना। मैं अुसमें दस्तखत कर दूगा। अब अधिक कुछ कहनेकी जरूरत नहीं है। जाओ, जो काम मैंने बतलाये है, सो करो और मुझे आराम करने दो।" मेरा यह मिजाज देखकर वह बेचारा घबरा गया, और बिना अेक शब्द बोले मेरे कहे अनुसार अिन्तजाम करने चला गया। अगर मैं अुसे अपना यह अुग्र रूप न दिखाता, तो वह भलामानस अपनी आसामरी चिकनी-चुपड़ी बातोंमें मेरा कम-से-कम आधा घंटा तो जरूर ही बरबाद करता!

दूसरे दिन मैं फल्गु नदीके किनारे श्राद्ध करने गया। फल्गु नदी जमीनके नीचे बहती है। अुसे सीताजीका शाप है। रेत खोदने पर पानी मिलता है। नदीमें हमेशा यात्रियोंकी भीड़ रहती है, और अुस भीड़में हृष्ट-पुष्ट और रूपवान पण्डे गाहोंकी तरह दक्षिणाकी आशामें घूमते-फिरते दिखाओ देते हैं। मैंने नदीमें स्नान किया। अुपले लाया। अुन पर चरु तैयार किया। नृसिंहाचार्य आये। वे सब मंत्र जानते थे, अुनके अुच्चारण भी अच्छे थे, अिसीलिअे मैंने अुन्हें पसन्द किया था।

नदीके घाटमें बैठकर करने योग्य सारी क्रियायें समाप्त करके मैं पिण्डके साथ गदाधरके मन्दिरमें गया। वहाँ सैकड़ों यात्री जगह-जगह कअी कतारोंमें बैठे हुअे थे, और श्राद्धको यथाविध कर रहे थे। श्राद्ध-जैसी अत्यंत पवित्र भावनावाली धार्मिक क्रियाका अैसा वाणिक स्वरूप यहाँ देखनेको मिला, वह मुझे बहुत बुरा लगा। पग-पग पर दक्षिणाके लिअे झगड़नेवाले और अगर कोअी गरीब, अभागी यात्री मुंहमांगी दक्षिणा न दे पाये, तो अुसके मरे हुअे पुरखोंको गालियां देनेवाले गयावालोंको देखकर यदि किसीको हिन्दू धर्मकी तरफसे निराशा हो जाय, तो अुसे ज्यादा दोष नहीं दिया जा सकता। हम पिण्डदानके लिअे धर्मशिलाके पास जा बैठे। धर्मशिला पर श्रीविष्णुका पदचिह्न है। अिस विष्णुपद पर लोग पिण्ड चढ़ाते जाते हैं, और गायें आकर अुन्हें खाती जाती हैं। यह सिलसिला बराबर जारी रहता है। पिण्ड-प्रदानकी क्रिया समाप्त होने पर गयागुरुओंसे यात्राका सुफल प्राप्त करना बाकी रह जाता है। अिस मौके पर गयागुरु मनमानी दक्षिणा अैंठ सकते हैं। हम अुनके सामने हाथ जोड़कर खड़े रहते हैं, और वे फूलोंकी मालासे हमारे हाथ बांध देते हैं, फिर जब तक अुन्हें मनचाही दक्षिणा न मिले, तब तक हाथोंका बन्धन छोड़नेसे अिनकार करते हैं। जेब खाली हो जाने पर माला तोड़ डालते हैं, तथा हमारी पीठ थपथपाकर यात्राकी सफलता घोषित करते हैं, और हमें विश्वास दिलाते हैं कि हमारे सभी पूर्वज सीधे स्वर्गको पहुंच गये!

मैं बनारससे ही सारी दक्षिणा दे चुका था, अिसलिअे यहाँ साफ बच गया। हमारे मुनीम अेक गयागुरुको ले आये, और अुसे मेरे सामने लाकर खड़ा कर दिया। गयागुरु कोअी बीस सालका रहा होगा।

वह पीताम्बर पहने था। बदन पर रेशमी कमीज और जाकट थी। बाल अिंग्लिश तर्जके थे, और पोमेड लगाकर चमकदार बनाये गये थे। मैंने बहुत यत्नपूर्वक अपनी सारी श्रद्धा अेकत्र की, अुसके सामने दोनों हाथ जोड़े और अुन्हें मालासे बंधने दिया। गयापुत्र रूठनेकी तैयारीमें ही था कि अितनेमें मुनीमने कहा — "दक्षिणाके पैसे जमा करा दिये गये हैं।" गयापुत्रने माला तोड़ दी और वह चलता बना। वह गयापुत्र तो शायद मुझे भूल गया होगा, लेकिन मैं अुसे अभी तक भूला नहीं हूं।

हमारे अुपाध्यायने कहा — "गयामें आकर श्राद्ध करना मनुष्यके गृहस्थ जीवनका अन्तिम कर्तव्य है। वह कर्तव्य सम्पन्न हुआ है। अब तुम्हें काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, अिन षड्रिपुओंका त्याग करना चाहिये। लेकिन अिस कलियुगमें यह बात किसीसे होनी नहीं। अिसलिअे अुसके बदले किसी अेक वस्तुका त्याग करना चाहिये।" मैंने पूछा — "शक्कर छोड़ दू तो?" आसपास खड़े हुअे दस-पन्द्रह आदमी यह सुनकर चकित रह गये। अुन्होंने कहा — "शक्कर क्यों छोड़ी जाय?" मैंने कहा — "आज पांच सालसे मैं शक्कर खाता ही नहीं हूं।" अुपाध्याय महाराजने सुझाया — "करेला या कद्दू-जैसी कोअी चीज छोड़ दो।" मैंने कहा — "धर्मके साथ अैसा कपट मैं नहीं करूंगा। मैं तो क्रोधका ही त्याग करनेका प्रयत्न करूंगा।" और, मन ही मन अिसमें अेक बात और जोड़ते हुअे कहा — "और अन्धश्रद्धाका भी।"

गदाधरका मन्दिर सुन्दर है। नदीके पाटसे बहुत अूंचाअी पर होनेके कारण अुसकी शोभा और भी बढ़ गयी है। दोपहरमें हमने नृसिंहाचार्यके घर भोजन किया। गया-माहात्म्यका श्रवण किया, और तुरन्त ही बोधिगया जानेका निश्चय किया। गया-माहात्म्य हिन्दू धर्म-शास्त्रोंमें अेक अद्भुत प्रकरण है। निष्काम भावसे परोपकार करनेवाले गयासुरके तेजसे डरकर देवोंने षड्यंत्र रचा और अुसमें साक्षात् श्रीविष्णुने भाग लेकर अत्यन्त निर्दयतासे — और दगाबाजीसे भी कह सकते हैं — अुसका खून किया। अिस आनयकी अेक कथा अिस माहात्म्यमें है। तो अब वह कथा सुनिये।

४—अ

गयाकी ख्याति

लोक-पितामह ब्रह्मदेवने असुर-वृत्तिसे असुर अुत्पन्न किये, और सद्‌भावसे देव अुत्पन्न किये। जिन असुरोंमें गयासुर महा बलवान और पराक्रमी था। अुसका शरीर बहुत ही स्थूल था। असुरका नाम लेते ही महापापी, क्रूर, सबको सतानेवाले, अिन्द्र पर धाक जमानेवाले, अप्सराओंको अुठा ले जानेवाले किसी मायावी और कपटी राक्षसका ही ख्याल दिलमें आता है। लेकिन सभी असुर अैसे नहीं होते। दानशूर बलिराजा भी असुर था। गयासुर भी अिसी कोटिका असुर था। हमें यही देखना है कि अुसके सामने देव कैसे दिखाओ देते थे।

गयासुरको पवित्रताकी लगन लगी, और अुसने कोलाहल पर्वत पर दारुण तप शुरू किया। हजारों वर्षों तक सांस थामकर तप करता रहा। जिससे देव हमेशाकी तरह बहुत ही घबराये। अपनी परिपाटीके अनुसार सारे देव ब्रह्मदेवके पास गये। ब्रह्मदेव शंकरके पास, और शंकर विष्णुके पास। देवोंने अपने सनातन रिवाजके अनुसार विष्णुकी स्तुति की। विष्णुने अुनकी घबराहटका कारण पूछा।

अुन्होंने दुहाओ देते हुअे कहा—"गयासुरके संकटसे हमारी रक्षा करो।"

"तुम चलो, मैं अभी आकर गयासुरको वरदान देता हूं, और अुसके तपका अन्त करता हूं।" विष्णुने वचन दिया।

सबने मिलकर गयासुरसे वरदान मांगनेको कहा। गयासुरने मांगा—"मैं देव, ब्राह्मण, यज्ञ, तीर्थ, ऋषि, मुनि, ज्ञानी, ध्यानी, सबसे बढ़कर पवित्र होअूं।"

देवोंने खुशीसे 'तथास्तु' कहकर वरदान दिया, और सब अपने-अपने घर गये।

लेकिन यहां तो 'जिस्स मुआफक जिलिया शाह'-वाली कहावत चरितार्थ हुओ। गयासुरका पवित्र दर्शन करके, अुसका स्पर्श करके, सभी

वैकुण्ठधामको जाने लगे। तीनों लोक खाली हो गये। यमपुरी अुजड़ गअी। अिसलिअे यम, अिन्द्र आदि अधिकारी ब्रह्मदेवके पास आकर शिकायत करने लगे — "यह लीजिये, हमारा त्यागपत्र! आप अपना दिया हुआ अधिकार लौटा लीजिये। अब हमारा कोअी काम नही रहा।"

देवोंका समुदाय फिर विष्णुकी सेवामें पहुंचा। विष्णु गयासुरको सनद दे चुके थे, अिसलिअे अुन्होंने देवोंको अेक युक्ति सुझाअी — "गयासुरके पास जाकर अुसकी पवित्र देह यज्ञके लिअे माग लो, और अुस देह पर ही यज्ञ करो।" (!)

ब्रह्मदेवको अपना अगुआ बनाकर सब देव गयासुरके पास गये। गयासुरने अुनकी आवभगत करके अुनके कुछ कहनेसे पहले ही अुनका काम करनेका वचन दे दिया। ब्रह्मदेवने कहा — "यात्राके निमित्त मैं काफी घूमा हूं, लेकिन तुम्हारे शरीरसे अधिक पवित्र स्थान मैंने कहीं नही देखा। मुझे यज्ञ करना है। तुम अपना शरीर दो।"

गयासुर कृतकृत्य हो अुठा। अुसने ब्रह्मदेवसे कहा — "मेरे माता-पिताके दोनों वंश आज धन्य हो गये। तुम्हींने यह देह अुत्पन्न की है, और तुम्हींने अिसे पवित्र बनाया है। अिसमे सन्देह नहीं कि तुम्हारा यज्ञ सबके अुपकारके लिअे होगा। 'सर्वेषामुपकाराय यागोऽवश्यं भविष्यति'।"

अैसे निर्मल भावसे प्रेरित होने पर गयासुर देह देनेमें क्यों देर करने लगा? वह आडा लेट गया। सृष्टिके रचयिता ब्रह्मदेवने यज्ञकी सामग्री और यज्ञके ॠषि वहींके वहीं अुत्पन्न किये। अितने अधिक ॠषि अुत्पन्न किये कि अुनकी नामावलियोंका पार न रहा! गयासुरके शरीर पर बड़ा भारी यज्ञ हुआ। ब्राह्मणोंको दक्षिणा दी गअी। यह समझकर कि गयासुर मर चुका, सबने अुठाकर अुसे अेक बड़े सरोवरमें डाल दिया। वहां तो यह हिलने लगा। हे भगवान! अब क्या करें? विस्मित ब्रह्मदेवने चिल्लाकर धर्मराज यमसे कहा — "तुम्हारे घरमें वह बड़ी भारी धर्मशिला पड़ी है। अुसे लाकर फौरन् अिसके सिर पर पटक दो। मेरी आज्ञा है। अब पाप-पुण्यका विचार न करो।" (!)

यों माथे पर पत्थर रखे जाने पर भी असुर हिलने लगा। तब सब देवोंने अुसे अपने पैरोंसे अच्छी तरह रौंदा। तो भी असुर ठण्डा न हुआ।

अब ब्रह्मा व्याकुल हो अुठे। विष्णु क्षीरसागरमें सो रहे थे। वे वहीं जा पहुंचे। द्वारपालने विष्णुको खबर दी। श्रीविष्णुने ब्रह्माको अन्दर बुलाकर आनेका कारण पूछा। ब्रह्माने कहा—"हमने यज्ञ किया, देवरूपिणी धर्मशिला अुसके अूपर पटक दी, रुद्र वगैरा सब देव अुस पर बैठे, तो भी वह निश्चल नहीं होता। अब आप ही हम पर दया कर सकते हैं।"

विष्णुने अपने शरीरसे मूर्ति निकालकर ब्रह्मदेवको दी। अुसका बोझ काफी न हुआ। आखिर क्षीरसागरसे विष्णु खुद आये और शिला पर खड़े हो गये। अुनके हाथमें पुराण-प्रसिद्ध गदा थी। विष्णुके साथ गायत्री, सावित्री, सरस्वती, लक्ष्मी, सीता, यक्ष, गन्धर्व, अिन्द्र, बृहस्पति आदि सब देवी-देवता आकर गयासुरके शरीर पर खड़े हो गये। तब कहीं वह असुर स्थिर हुआ!

जिसने 'सर्वेषामुपकाराय' अपनी देह-सहित सर्वस्व दे दिया था, अुसके हृदयको अिस कपटसे आघात पहुंचा। आन्तरिक वेदनाके साथ अुसने देवोंसे पूछा—"तुमने मुझे अैसा धोखा किसलिअे दिया? मैंने अपना निर्मल शरीर ब्रह्मदेवको यज्ञके लिअे अर्पण किया था। क्या विष्णुके वचनमात्रसे ही मैं निश्चल न हो जाता, जो तुमने और विष्णुने अपनी गदासे मुझे अितनी पीड़ा पहुंचायी! खैर, मुझे पीड़ा पहुंचानेका ही तुमने निश्चय कर लिया हो तो वही सही। मेरी यही अिच्छा है कि अुससे तुम सबको सदा सन्तोष हो।"

सारे तीर्थ, गंगादि समस्त नदियां, सब मेरे मस्तक पर रखी हुअी अिस शिला पर रहें, और मेरे लिअे लोगोंका कल्याण करें। यहां जो लोग स्नान, तर्पण और श्राद्ध करें, अुनकी हजार पीढ़ियोंका अुद्धार हो। अुनके सब पाप धुल जायं। सभी तीर्थ लोगोंके लिअे कल्याणकारी हों। अिससे अधिक मैं और क्या मागूं? तुममें से अेक भी देव यहांसे कहीं न जाय। यह वचन अवश्य निवाहना। 'समयः प्रतिपाल्यताम्।"

देवोंने 'तथास्तु' कहा। दैत्य हर्षित हुआ, और सदाके लिअे निश्चल हो गया।

* * *

अिस महत्कृत्यके बाद ब्रह्मदेवने देवोंकी अुपस्थितिमें वह सारी भूमि और पांच-पांच गाव ब्राह्मणोंको दे दिये। अुनके लिअे सब प्रकारके साज-सामानसे सजे हुअे घर बनवा दिये। कामधेनु दी, कल्पवृक्ष, पारिजातक आदि वृक्ष दिये, दूधकी नदियां दीं, घीके तालाब दिये। शहदके कुअें दिये, दहीके सरोवर दिये, अन्नके पर्वत दिये, भक्ष्य-भोज्य फलोंकी सुविधा कर दी, और ब्राह्मणोंसे कहा — "अब तुम किसीसे कुछ न मागना।" गदाधरको प्रणाम कर ब्रह्मदेव ब्रह्मलोकको सिधारे।

लेकिन ब्राह्मणोंसे रहा न गया। अुन्होंने धन लेकर यज्ञ करना शुरू किया। यज्ञका धुआं स्वर्ग तक पहुंचा, तब ब्रह्माने आकर अुनसे सब कुछ छीन लिया।

'तुम लोग हमेशा लोभी ही रहोगे,' यह कहकर ब्रह्माने अुन्हें शाप दिया। ब्राह्मण रोने लगे — "हमारी गुजर-बसरका कुछ प्रबन्ध कीजिये।" ब्रह्माने दयाभावसे कहा — "अब तो तुम भीख मांगोगे, तभी मिलेगा। हमेशाके लिअे तुम्हारे भाग्यमें तीर्थका पौरोहित्य ही रहेगा। तुम्हारी पूजाके द्वारा ही लोग मेरी पूजा करेंगे।" अैसे अुन ब्राह्मणोंके वंशज हैं हमारे ये गयावाल पण्डे!

* * *

और संकटके अवसर पर ब्रह्मदेवको जिस धर्मशिलाका स्मरण हुआ, अुसका माहात्म्य क्या है, सो भी सुन लीजिये।

अेक पवित्र साधुके धर्मव्रता नामकी अेक कन्या थी। वह स
लक्षण-सम्पन्ना थी। गुणोंमें लक्ष्मीसे भी बढ़ी-चढ़ी थी। ब्रह्मदेवके पर
तपस्वी पुत्र मरीचिसे वह ब्याही गअी थी। बुढ़ापेमें अेक दिन मरीचि
जंगलमें फल-फूल लाने गया। वहांसे वह थककर आया। धर्मव्रताने अप
थके हुअे पतिके पैरोंमें घीकी मालिश शुरू की। थकावट जैसे-जैसे अुतर
गयी, वैसे-वैसे ऋषिको नींद आने लगी। अितनेमें वहां ब्रह्मदेव आ गये
अपने ससुरको देख सती अुठ खड़ी हुअी; क्योंकि वे गुरुके गुरु थे। अु
पांव धोनेके लिअे पानी देकर बहूने ससुरकी पूजा की, और अेक सुन्द
बिस्तर अुनके लिअे लगा दिया। अितनेमें मरीचि जागे। स्त्रीको पास
न देख वे गुस्सेमें अपनी पत्नीको शाप दे बैठे — "मुझसे बिना पूछे तू मेरे
पैर दबाना छोड़कर चली गअी, अिसलिअे जा, तू पत्थर बन जा!"
सतीको सहज ही बात बुरी लगी। वह बोली — "घरमें पिताके आने पर
अुनकी सेवा-पूजा करना आपका कर्तव्य था। आपकी धर्मपत्नीके नाते
मैंने वह किया। अिसमें मेरा क्या दोष?" मरीचि मुनिके ध्यानमें अपनी
भूल आ गयी। दोनों मिलकर हरिकी शरणमें गये, और अुनसे प्रार्थना की
कि हमारी रक्षा करो। अितनेमें ब्रह्मदेव भी निद्रासे जागे। सबने सतीके
तपकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा की; लेकिन साथ ही यह भी कहा — "तेरे
पतिके शापका निवारण करनेकी शक्ति हममें से किसीमें नहीं है। अब
तू अैसा कोअी दूसरा वरदान मांग ले, जिससे धर्मकी रक्षा हो।" सतीने
वरदान मांगते हुअे कहा — "यदि मेरे पतिके शापका निराकरण करनेकी
शक्ति आपमें नहीं है, तो मुझे यह वरदान दीजिये कि नदी, नद, सरोवर,
तीर्थ, देव, ऋषि, मुनि, मुख्य-मुख्य देवता और सभी यज्ञक्षेत्र मुझमें आकर
बसें। सारे ब्रह्माण्डकी पावनी शिला मैं बन जाअूं। मुझे देखते ही सब
लोग पातकों और अुप-पातकोंसे मुक्त हो जायं। शिला पर जो लोग श्राद्ध
करें, अुन्हें और अुनके कुलको विष्णुलोक मिले। और जब तक यह ब्रह्माण्ड
रहे, तब तक यह शिला भी रहे।" देवोंने यह वर दे दिया। परन्तु वे
फिर पछताये। क्योंकि सभी लोग अुस शिलाको छू-छूकर वैकुण्ठ जाने
लगे। यमराज घबराये। अुन्होंने अपना अधिकार और अपना यमदण्ड
ब्रह्मदेवको सौंपते हुअे कहा — "अब मेरा कोअी काम रहा ही नहीं।"

ब्रह्मानें यमराजसे कहा —"अुस शिलाको अुठाकर अपने घरमें रख लो, और निश्चिंत हो जाओ।" तब यमराज फिरसे लोगोंका शासन करने लगे, और धर्मशिलाकी केवल कीर्ति ही रह गअी।

गयासुरके शरीर पर यज्ञ करनेके पश्चात् भी जब गयासुर हिलता रहा, तो ब्रह्मदेवने यमराजसे यही शिला मागी थी। अुस शिलामें सारे तीर्थोंकी अवस्थिति होनेके कारण वह अत्यन्त भारी और अत्यन्त पवित्र हो गअी थी।

* * *

विष्णु जिस गदाको हाथमें लेकर गयासुरकी देह पर खड़े हुअे थे, अुस गदाकी भी अेक कथा है। वज्रसे भी दृढ और मजबूत गद नामक असुरसे ब्रह्मदेवने अुसकी हड्डिया माग ली थीं, और विश्वकर्मासे अुन हड्डियोंकी अेक वज्रगदा बनवाअी थी। यह गदा हेति नामक अेक महा बलवान राक्षसको मारनेके लिअे श्रीहरिको दी गयी थी। क्योंकि देवोंके शस्त्रास्त्रोंसे अुसका वध नहीं हो सकेगा, अैसा वरदान अुसे स्वयं ब्रह्मदेवने ही दिया था।

* * *

अैसे-अैसे पुण्य प्रसंगोंसे प्रसिद्ध हुअी भूमि पर —

लोकाना रक्षणार्थाय जगतां मुक्ति-हेतवे।

श्री आदिगदाधर लक्ष्मीके साथ खड़े हैं। वहा जो कोअी यात्राके लिअे जाते हैं, अुनकी मनोकामनायें पूर्ण होती हैं। लेकिन शास्त्रोंमें लिखा है कि वहा जानेवालेको ब्रह्मचारी और संयमी रहना चाहिये; शुद्ध और संतुष्ट रहना चाहिये; दान न लेना चाहिये; अहंकारसे निवृत्त रहना चाहिये; जितेंद्रिय और दानशील होना चाहिये; तभी अुसे तीर्थफल मिलेगा।

काम क्रोधं तथा लोभं त्यक्त्वा यः सत्यवाक् शुचिः।
सर्वभूतहिते रक्तः स तीर्थफलमश्नुते॥
तीर्थान्यनुसरन्धीरः पाखण्डं पूर्वतस्त्यजेत्।
पाखण्डं तच्च विज्ञेयं यद्भवेत्कामकारतः॥

धर्मव्रताको शाप देनेवाले मरीचिको महादेवने यह शाप दिया कि — 'जा, तू दुःखी हो।' लेकिन अुसका पश्चात्ताप देखकर अुसे यह अुःशाप दिया कि 'गयामें तेरी मुक्ति होगी।' मरीचिने शिलाके पास बैठकर दुष्कर तप आरम्भ किया। अैसा तप बहुतेरे पश्चात्ताप-दग्ध पतियोंको नसीब होता होगा! महादेवके शापसे जो मरीचि काला पड़ गया था, तप द्वारा वह शुक्ल हो गया, और हरिके वरदानकी बदौलत स्वर्गलोकको गया।

'अिति श्रीवायुपुराणे श्वेतवाराहकल्पे गयामाहात्म्यं सम्पूर्णम्।'

जो कोअी यह पुण्य गयाख्यान विचार और मननपूर्वक पढ़ेगा या सुनेगा, अुसे अच्छी गति मिलेगी।

५

बोधिगया

बोधिगया कोअी अैसा-वैसा तीर्थ नहीं है। बोधिगयाका नाम सुनते ही माथा भक्तिसे झुक जाता है। पुराने जमानेमें अिस स्थानको 'अुरुवेला' कहते थे। आजसे ढाअी हजार वर्ष पहले नेरंजरा नदीके तीर पर अिस वनमें अेक पीपलके पेड़के नीचे अेक युवक बैठा था। अुसका शरीर सूखकर काटा हो गया था। दोनों आँखें दो आलोंके समान गहरी हो गअी थीं। परन्तु अुनमें दया, तप और तेजका अमृत टपकता था। छातीकी अेक-अेक पसली गिनी जा सकती थी। दाढ़ी, मूछ और बाल बढ़े हुअे थे। लम्बे-लम्बे सख्त दीर्घ अुपवासके कारण सफेद पड़ गये थे। बाहरसे वह युवक बिल्कुल शान्त दिखाअी देता था। परन्तु अुसके अभ्यन्तरमें महायुद्ध चल रहा था। भारतीय युद्ध तो दिन डूबते ही बन्द हो जाता था, पर अिसका युद्ध अहोरात्र चलता था। भारतीय युद्ध अठारह दिनमें समाप्त हो गया। अिसका युद्ध तो अठारह दिन बाद रंग लाया। यह युद्ध किसी व्यक्तिके विरुद्ध नहीं, मनुष्यके सनातन शत्रु मार (काम) के विरुद्ध था। अिस युद्धमें मनुष्य-जातिके हितके लिअे लड़नेवाला वह अेकाकी

वीर दृढ़ निश्चय करके बैठा था : "मनुष्य-जातिका दुःख अब मुझसे देखा नहीं जाता। क्या मनुष्य अनन्त काल तक अिस तरह दुःख सहनेके लिअे ही पैदा किया गया है? अिस दुःखकी दवा कहीं न कहीं तो होनी ही चाहिये। अगर हो तो अिस जीवनकी अिससे अधिक सार्थकता और क्या हो सकती है कि यह अुस औषधिकी शोधमें बिताया जाये? और, अगर अुस औषधिका मिलना ही असम्भव हो, तो फिर अिस जीनेमें ही क्या धरा है?"

वहां वह नौजवान ही नहीं बैठा था, बल्कि भारतकी सनातन श्रद्धा सजीव होकर बैठी थी। नवयुवकोंके कुलगुरु, आस्तिकताके सागर, निर्भयताकी मूर्ति, भगवान नचिकेताका वह अवतार था। अक्षय्य धाम मांगनेवाले राजपुत्र ध्रुवकी परम्पराका वह अनुयायी था; कारण अुसकी निष्ठा भी अुतनी ही ध्रुव थी। युवकने यह प्रण कर लिया था कि चाहे अिसी आसन पर शरीर सूखकर काठ हो जाय, हाड़, मांस और चमड़ी हवामें मिल जायं, परन्तु जब तक अिस भवरोगकी पीडाका नाशक बहुकल्प-दुर्लभ बोधि (ज्ञान) नहीं मिलेगा, तब तक यह शरीर यहांसे टस-से-मस न होगा।

आज तक अैसा अेक भी अुदाहरण देखनेमें नहीं आया, जिसमें सत्य संकल्प विफल हुआ हो। युवकको संतोष हुआ। सिद्धार्थका नाम सार्थक हुआ। राजपुत्र गौतम, गौतमके बदले अब बुद्ध हो गया। अुसी क्षण अेक श्रद्धावान साध्वी थालीमें पायस (खीर) लेकर वहां आअी, और अुसने यह वरान्न अुस वनदेवको अर्पण किया।

यही स्थान बोधिगया है। जिस पुरातन अश्वत्थ वृक्षके नीचे भगवान बुद्धने यह अन्तिम साधना की, अुसके सामने आज अेक भव्य मन्दिर खड़ा है। बगलमें चंक्रमण* का स्थान है। आसपास प्राचीन ऋषियोंके समान बड़े-बड़े वृक्ष हैं। अिन वृक्षोंने कितनी ऋतुअें सही होंगी, कितने प्राणियोंकी सहायता की होगी, और कितने साधकोंकी श्रद्धा-भक्तिके ये साक्षी रहे होंगे!

---

* चंक्रमण = धर्मचिन्तन करते हुअे चक्कर लगाना।

हम पहले अेक पेड़के नीचे बैठे। कुअेंसे पानी निकालकर हाथ-पैर धोये। पानी पिया। फिर प्रसन्न अन्तःकरणसे मन्दिरमें दर्शन करने गये। मन्दिरके भीतर बुद्ध भगवानकी भव्य मूर्ति थी। अुन्हें साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करके हम मन्दिर पर चढ़े और गुम्बदके आसपास घूमे। कारीगरीमें भव्यता है, लेकिन मार्दव या नवीनता नहीं। नीचे अुतरकर मन्दिरकी परिक्रमा की। ज्यों ज्यों मैं परिक्रमा करता था, त्यों त्यों मेरा भाव बदलता था। सारा जीवन दृष्टिके सामने खड़ा हो गया। और तुरन्त दृष्टि शून्य हो गअी। पानीमें तैरनेवाला तैराक डुबकी लगाकर जब गहरा और गहरा पैठता जाता है, तब जिस प्रकार निर्भय होते हुअे भी वह भयभीत-सा हो जाता है, कुछ वैसी ही अिस क्षण मेरी स्थिति हुअी। जीवनके पृष्ठभाग (सतह) पर तो मैंने खूब विचरण किया था। खूब तैरा था। परन्तु अिस बार मैं गहराअीमें अुतरा। अैसी स्थिति पहले अेक ही बार ध्यानमें हुअी थी। परन्तु अिसकी तुलनामें वह स्पर्शमात्र थी। मेरी परिक्रमाअें पूरी होने पर मैं पिछवाड़ेके अश्वत्थको वन्दन करने गया। घरका त्याग कर मैं हिमालयकी ओर जा रहा था। भविष्य मेरे सामने अज्ञात था। मैंने अपनी नावकी सारी रस्सियां काट डाली थीं। सारी पतवारें चढ़ा दी थीं। मेरी नौका फिरसे अपने पुराने बन्दरगाहमें लौटेगी, यह धारणा अुस समय नहीं थी। अुस समयकी मनोवृत्तिका वर्णन कैसे हो सकता है? मैं बाहरसे शान्त था। लेकिन भीतर मनोज्वालामुखी धधक रहा था। मुझे यह भान था कि मैं कोअी त्याग कर रहा हूं। मैं जानता था कि यह भान आध्यात्मिक अुन्नतिमें बाधक होता है। परन्तु फिर भी वह मिटता नहीं था। अितनेमें अन्दरसे अेक आवाज आअी — "त्याग करना सहज है। लेकिन किये हुअे त्यागके योग्य बननेमें ही पुरुषार्थ है।" अहंकारके लिअे अितनी फटकार बस थी। मैं अुठा और पासवाले तालाबके किनारे जा बैठा।

तालाबमें असंख्य कमल खिले थे। लेकिन अुनकी सरस मेरा चित्त — हमेशाका कला-रसिक चित्त — आकर्षित नहीं हुआ। वहांसे अुठकर पासकी अेक मढ़ीको देखने चला गया। अुसमें कअी साधु रहते थे। वह किसी महन्तके अखाड़े-जैसी दीख पड़ी। लेकिन अुसके विषयमें

पूछ-ताछ करनेका मन न हुआ। मैं खूब घूमा, हिमालयमें रहकर साधना की, और समाधान प्राप्त किया; परन्तु बोधिगयाका अुस दिनका अनुभव कुछ और ही था।

६

बेलुड़ मठ

बोधिगयासे हम बंगालको चले। बंगालमें हम पहले-पहल जा रहे थे। रेलमें रात बिताकर सवेरे जागने ही 'सुजला सुफला मलयज-शीतला' बंगभूमिका दर्शन हुआ। बंगाल यानी छोटे-बड़े तालाबोंकी भूमि। वहांके लोग अुन्हें पुकुर कहते हैं। पुकुर यानी पुष्कर। बंगालका मेरा प्रथम परिचय बहुत आनन्ददायक सिद्ध न हुआ। रातको सोते समय दिलमें यही विचार आते थे कि रामकृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानन्दकी बंगभूमि देखनेका मौका मिलेगा। विपिन पाल और अरविन्द घोषकी पुण्यभूमिके दर्शन होंगे। खुदीराम बोस और कन्हैयालाल दत्तका 'बंगाल' मैं सवेरे अुठकर देखूंगा। 'आनन्द मठ' और 'देवी चौधरानी' में वर्णित भूमिका साक्षात्कार होगा।

अिस तरहके मधुर विचारोंमें डूबा हुआ मैं सो गया। बैसाखका महीना था, अिसलिअे बाबाजीने अपने कपड़े अुतारकर डिब्बेके अूपर टांग दिये और वे भी सो गये। सवेरे अुठकर देखते हैं, तो कपड़े गायब! बंगालके दारिद्र्य पर दया आयी। दिलमें यह विचार आया कि कपड़े ले जानेवाले व्यक्तिको मैं अुसी वक्त देख पाता, तो अपने कपड़े भी अुतारकर अुसे दे देता। मैंने कलकत्ते जाकर कपड़े अुतारे और हरिद्वार पहुंचकर वहांके रामकृष्ण सेवाश्रमको अपने सारे कपड़े दे डाले। लेकिन अुसका कारण दूसरा था।

ट्रेन लिलुआ स्टेशन पर ठहरी। हम अुतरे। वहां जाकर हमने विवेकानन्दके बेलुड़ मठकी पूछ-ताछ की। लेकिन किसीको बेलुड़ मठका पता न था। चारों खण्डोंमें विख्यात विवेकानन्दके मठका पता लिलुआ

स्टेशन पर कोओी भी न जानता था! कितने अफसोसकी बात है? भटकते-भटकते हम बेलुड़ गांवमें जा पहुंचे। वहां अेक वृद्ध 'भद्र पुरुष' मिले। अुन्होंने सज्जनतापूर्वक कहा — "चलिये, मैं आपको बेलुड़ मठ तक पहुंचा दूं।" सवेरेसे अब तक मिले जवाबोंके बाद मैंने किसीसे अितनी सज्जनताकी आशा नहीं की थी। हम अुनके पीछे-पीछे चले। लेकिन वाहरे दुर्दैव! वृद्ध महाशयका वेग चींटीके वेगसे अधिक बढ़ता ही न था। समय नष्ट होनेके दुःखकी अपेक्षा हमारे लिअे अिस वृद्ध मनुष्यको अितनी तकलीफ अुठानी पड़ रही है, अिसीका मुझे ज्यादा दुःख हुआ। मैंने कहा — "महाशय, मैं अपना रास्ता खोज लूंगा। आपको तकलीफ नहीं देना चाहता।" अुन्होंने कहा — "नहीं, नहीं; मुझे भी मठमें ही जाना है।" फिर क्या था? अब तो हमें भी चींटीकी चालसे रेंगनेके सिवा चारा ही न रहा।

बेलुड़ मठमें रामकृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानन्दकी समाधियां हैं। मठ ठीक गंगानदीके तट पर है। अेक छोर पर दीपस्तम्भकी तरह लाल दीया भी है। हमने जाकर मठपति स्वामी प्रेमानन्दजीको प्रणाम किया। 'आओ बैठो', कहकर वे अपने काममें मशगूल हो गये। अितनेमें अेक दो ब्रह्मचारी हमारे पास आये। अुनमें से अेकने मुझे पूछा — "आप वापस कब जायेंगे? यहां कितने दिन रहना चाहते हैं?" मैं कबूल करता हूं कि अिस प्रकारके स्वागतके लिअे मैं तैयार न था। मुझे अैसा मालूम हुआ मानो मैं अेक अनचाहा पाहुना हूं! मैंने कहा — "भाओी, मैं तो कल ही जानेवाला हूं।" अितना अभयदान देनेके बाद मैं समझा कि अब बात करनेमें हर्ज नहीं है। अेक सज्जनसे मैंने पूछा — "स्वामी विवेकानन्दकी समाधि कहां है?" अुन्होंने कहा — "समाधि अभी बन रही है। स्वामीजी महाराजकी संगमरमरकी मूर्ति तैयार है, जो अभी समाधिके कमरेमें रखी है। यह मैं आपको दिखा सकता हूं।"

मैं काशी और गयाकी त्रिस्थलीकी यात्रा करके आया था। किन्तु जिनके धर्मग्रंथोंके कारण मुझमें फिरसे धर्मश्रद्धा स्थापित हुओी, अुन स्वामी विवेकानन्दकी समाधिका दर्शन मेरी दृष्टिमें अेक महायात्रा थी। पग-पग पर मेरे हृदयमें श्रद्धा और भक्तिकी अुमंगें अुठने लगीं। बस, पारसि-

पचास कदम चलनेके बाद ही मेरे वर्षोंके चिरसंचित मनोरथ पूर्ण होंगे, यात्राका सुफल मिलेगा, संशयवादकी सुषुप्तिमें गाफिल पड़े हुअे भारतवर्षको अमेरिकाकी सर्वधर्म-परिषद्के व्यासपीठ परसे जगानेवाले स्वामी विवेकानन्दके, प्रस्तर-मूर्तिके रूपमें ही क्यों न हों, दर्शन होंगे, यह मेरे अधीर और व्याकुल हृदयके लिअे कम महत्त्वकी बात न थी। हम समाधिवाले कमरेमें पहुंचे। मैंने अत्यन्त भक्तिभावसे साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया, और अेक क्षणके लिअे बेसुध-सा हो गया।

मैं वापस लौटा। नदीके घाट पर नहाया। घाटके पास पानीकी बड़ी-बड़ी कोठिया अेक कतारमें रखी हुअी थीं। अुस तरफ ध्यान जाने पर मैंने वहाके अेक ब्रह्मचारीसे अुनका प्रयोजन पूछा। अुन्होंने कहा — "गंगा यहा समुद्रसे बहुत दूर नहीं है; अिसलिअे जब समुद्रमें ज्वार आता है, तब नदीका पानी खारा हो जाता है। और जब भाटा आता है, तो पानी मीठा रहता है। अिस कारण भाटेके वक्त हम पीनेका पानी अिन कोठियोंमें भरकर रखते हैं।"

नहा-धोकर मन्दिरमें प्रवेश किया। वहा अूपरकी मंजिलमें रामकृष्ण परमहंसकी अस्थिया तांबेके अेक डिब्बेमें रखी हुअी हैं, और अुस डिब्बे पर रामकृष्ण परमहंसका अेक छोटा-सा फोटो रख दिया गया है। अुसकी पूजा होती है। पीछेकी तरफ ध्यानके लिअे छोटी-सी कोठरी है। यह व्यवस्था मुझे खूब पसन्द आअी। ध्यानकी कोठरीमें हमेशा शान्ति रहती है। चाहे जितने लोग ध्यान करें, तो भी अेकके कारण दूसरेके ध्यानमें बाधा नहीं पड़ती। लोग बिना आवाज किये अन्दर आकर बैठते हैं; और अुसी तरह चुपचाप बाहर चले जाते हैं।

आम तौर पर बंगाली अिस बातका खास ध्यान रखते हैं कि सभामें अुनके आने-जानेसे दूसरोंको तकलीफ न हो। अगर बहुतसे लोग बैठे हों, और अुनके बीचसे जाना पड़े, तो नीचे झुककर जिस दिशामें जाना है अुसकी सूचनाके लिअे हाथ बढ़ाये, हरअेकसे माफी चाहनेका-सा भाव धारण किये, मनुष्य अुस भीड़में से निकल जाता है।

ध्यान-मन्दिरमें बैठकर हमने ध्यान किया। परमहंसकी समाधिके सामने बैठकर गीता और अुपनिषदोंका पाठ किया। मैंने देखा कि मेरे

रहस्य मुझे समझाअिये।' अुन्होंने कहा — 'चलो, स्वामी प्रज्ञानन्दके पास चलें; वे समझायेंगे।' मेरी बाजी बिगड़ गयी। देर तक परिहास करनेकी मेरी वृत्ति नहीं थी। परन्तु स्वामी प्रज्ञानन्दके पास जाने पर मुझे गंभीर मुह बनाकर जिज्ञासु बनना ही पड़ा। अुन्होंने मुझसे कहा — 'तुम अुस कविताका क्या रहस्य समझे हो?' मैंने संक्षेपमें कह दिया। अुन्होंने कहा — 'ठीक है।' अिस तरह मैंने छुटकारा पाया।

ये स्वामी प्रज्ञानन्द जानने योग्य व्यक्ति थे। अुनका असली नाम था देवव्रत बोस। वे अेक प्रसिद्ध ब्राह्मो थे। अुनके मित्रोंने अुनकी बहुत स्याति की। ये अलीपुर-बमकेसमें पकड़े गये थे, परन्तु अन्तमें छोड़ दिये गये। अुनका मुकदमा कअी दिनों तक चलता रहा। अुतने समयके लिअे अुन्हें जेलमें रहना पड़ा था। कअी लोगोंको जेलमें ही पहली बार अेकान्त मिलता है, और वहां आत्म-परीक्षण करके वे अपने जीवनका सारा प्रवाह ही बदल डालते हैं। देवव्रत बोसके साथ अैसा ही हुआ। वे ब्राह्मोसे वेदान्ती हो गये, और संन्यासकी दीक्षा लेकर प्रज्ञानन्द बन गये। बेलुड़ मठमें आनेके बाद अुन्होंने 'अुद्बोधन' नामक बंगला मासिक पत्रिकामें 'भारतेर साधना' शीर्षक अेक सुन्दर लेखमाला लिखी थी, जिसमें अिस बातकी बहुत सुन्दर चर्चा की गअी थी कि हिन्दुस्तानके लिअे अीश्वरने कौनसा काम नियोजित किया है। कुछ दिनों बाद ये स्वामी हिमालयमें मायावती मठके मठपति बने, और 'प्रबुद्ध भारत' मासिक पत्रका संचालन करते रहे। कुछ वर्षों तक यह काम करनेके बाद ये समाधिस्थ हुअे।

मुझे 'गॉस्पेल ऑफ श्रीरामकृष्ण' (श्रीरामकृष्ण-कथामृत) के लेखक श्री 'अेम' से मिलना था। और हो सके तो रामकृष्ण परमहंसकी धर्मपत्नी और शिष्या श्री शारदामाताका भी दर्शन करना था। 'अेम' को यहां सब लोग मास्टर महाशय कहते थे। मैंने मठपति स्वामी प्रेमानन्दकी अिजाजत ली। अुन्होंने मेरे साथ अेक ब्रह्मचारी दिया। हम अेक छोटेसे डोंगेमें बैठकर अुस पार गये, और वहांसे अेक छोटी अगनबोटमें बैठकर कलकत्ते पहुंचे। रास्तेमें ब्रह्मचारीसे खूब बातचीत हुअी। वे बहुत मिलनसार थे। बंगालके अनेक युवकोंकी तरह ये भी पहले मांसाहारी

पक्षमें थे। बादमें धार्मिक वृत्ति बढ़ने पर राजनीतिमें रुचि कम होती गअी, और वे रामकृष्ण मिशनमें शामिल हो गये। मैंने अुनसे पूछा — 'आपका आदर्श क्या है?' अुन्होंने जवाब दिया — 'हमें जो दीक्षा मिली है, वह यह है कि 'आत्मनो हिताय' और 'जगतः सुखाय' जीवन बिताना चाहिये। स्वामी महाराजने मठके ब्रह्मचारियोंको यह अुपदेश दिया है कि तुम्हारी जिन्दगी सिपाहीके समान कठिन होनी चाहिये। तुम्हारी बुद्धि अितनी तीव्र और तेजस्वी होनी चाहिये कि तुम तत्त्वज्ञानके कूट-से-कूट प्रश्नोंकी चर्चा कर सको। तुममें अितनी सादगी होनी चाहिये कि दिनभर खेतमें काम करके शामको शाकभाजी लेकर तुम बाजारमें बेच सको। तुममें परिश्रमशीलता और व्यवहार-कुशलता होनी चाहिये।' अिस ब्रह्मचारीने दो ही दिनमें खूब ममता दिखाअी। बंगाली भावना-प्रधान होते हैं, अिस कथनकी जो कल्पना अिस ब्रह्मचारीने मुझे दी, अुसे मैं भूल नहीं सकता।

हम मास्टर महाशय — महेन्द्रनाथ गुप्त — के मकान पर पहुंचे। वे पूजामें बैठे थे, अिसलिअे जरा अिन्तजार करना पड़ा। म राह जोहता बैठा था, अितनेमें अुनकी भव्य मूर्ति बाहर आअी। वे श्वेत वस्त्र धारण किये हुअे थे। लम्बी दाढ़ी छातीको सुशोभित कर रही थी। गम्भीरता और नम्रता अुनकी मुखाकृतिकी विशेषता थी। वे जमीन पर ही बैठे। मेरे मित्र गुणाजीने 'गॉस्पेल ऑफ श्रीरामकृष्ण' का भाषान्तर मराठीमें किया था। अुसमें मेरा हाथ था। अिसलिअे अुसीके विषयमें बातें शुरू हुअीं। मेरा परिचय पानेके बाद सन्तोष दर्शाते हुअे अुन्होंने कहा — 'तो गॉस्पेलका भाषान्तर करनेवाले शुष्क पंडित ही नहीं, साधु भी हैं।'

मास्टर महाशयके साथ अधिक बातचीत नहीं हुअी। हम 'अुद्-बोधन' कार्यालयमें श्री श्रीमाका दर्शन करने गये। श्री श्रीमासे मतलब है, श्री शारदामातासे। कार्यालयमें दरवाजेके सामने ही अेक कमरा था। अुसमें स्वामी शारदानन्द बैठे थे। स्वामी शारदानन्द सारे रामकृष्ण मिशनके संचालक हैं। सारी दुनियामें जहां-जहां रामकृष्ण मिशनकी संस्थायें चलती हैं, अुन सब पर अुनकी देखभाल है। अिसलिअे अुनके अूपर कामका भारी बोझ है। वे अपने आसन पर पाव पसारे बैठे रहते हैं, और सारे दिन काम करते हैं। अुनके शरीर पर कोअी वस्त्र न था, और

स्थिति अच्छी न लगी। भक्तिने नेड़ानेड़ी लोगोंसे कहा — 'परमात्माके यहां नसीबका राज नहीं है। अीश्वरका नाम लो। तुम पवित्र हो।' नेड़ानेड़ी पावन हुअे और वैष्णव बन गये।

यह शुद्धि बिना विरोधके तो होने नहीं पाअी होगी। सनातन धर्मका अभिमान धारण करनेवाले धर्म-संरक्षकोंने अिस अधर्मको रोकनेकी चेष्टा करनेमें कुछ भी अुठा न रखा होगा। लेकिन अुनके नाम भी अब हम नहीं जानते। सनातन हिन्दू धर्ममें अपने अन्यभक्तोंके शिकंजोंसे बचनेकी शक्ति है, अिसीलिअे वह आज तक जीवित रह सका है।

नावमें बैठकर नदीके प्रवाहमें यात्रा करनेके समान काव्यका अनुभव और शायद ही कहीं होता हो। हम दोपहरको भोजनके बाद रवाना हुअे, और कोअी तीन बजे सरडह पहुंचे। वैशाख पूर्णिमाका दिन था, अिसलिअे कड़ी धूप पड़ रही थी। परन्तु गंगामैयाके शीतल स्रोत परसे बहनेवाली हवा धूपकी सख्तीको भी कुछ नरम किये डालती थी। अींट और चूनेके बने हुअे अिस तरफके घाट दर्शनीय होते हैं। देहातकी स्त्रियां जब पानी भरने आती हैं, तो अुन्हें देखकर दया अुमड़े बिना नहीं रहती। अुनकी साड़ी बहुत ओछी और अिसीलिअे तंग होती है। मालूम होता है, अुन्हें साड़ी पहनकर अिधर-अुधर घूमने-फिरनेमें बड़ी असुविधा होती होगी। लेकिन अुनके मुह पर दुःखका जरा-सा भी चिह्न दिखाअी नहीं देता। सरडहमें मुख्य मन्दिरके प्रांगणमें कअी लोग भजन कर रहे थे। झांझ, मजीरे, करताल, मृदंग आदि वाद्य बज रहे थे। और हरअेक भक्त भक्तिरसमें अितना मतवाला हो गया था, मानों हरअेकको कोअी जबर-दस्त भूत लग गया हो!

महाराष्ट्रमें पंढरपुरमें मैंने लोगोंको भजनमत्त होते देखा है। लेकिन अुसमें कुछ सौम्यता होती है। यहां तो अैसा दौर पड़ता था, मानों लोग भक्तिकी मस्तीमें अेक-दूसरेसे प्रतिस्पर्द्धा कर रहे हों। अनेक वाद्योंके स्वर-सम्मिश्रणसे और बेढंगीसी-से हावभाव व्यक्त करनेसे अेक तरहका भक्तिरस तो अवश्य पैदा होता है, परन्तु मुझे नहीं लगता कि अुससे स्वाभाविक भक्तिको पुष्टि मिलती होगी। अुसे तो अेक तरहका नशा ही समझना चाहिये।

अिसके बाद हम बेलुड़ मठके संन्यासियों और ब्रह्मचारियोंको निमंत्रित करनेवाले अपने मेजवानके पास गये। अुन्होंने फलाहारका आग्रह किया। मैं शकर नहीं खाता था और दिनमें अेक बार ही अन्न ग्रहण करनेका मेरा नियम था, अिसलिअे मैंने लाल तरबूज खाना ही पसन्द किया। खानेके आग्रहकी तो कोअी कमी नहीं थी। जब हमारे साथके संन्यासी अधिक लेनेसे अिनकार करते, तो हमारे मेजवान कहते — 'अगर आपको न भाये, तो थालीमें रहने दीजिये। हमें अुतना ज्यादा प्रसाद मिलेगा।' मैंने शिष्टाचारका विचार छोड़कर कहा — 'मेरे विचारमें दूसरेका अुच्छिष्ट खानेमें धर्मकी हानि है। मैं स्वीकार करता हूं कि अुच्छिष्ट खानेमें प्रेमकी अेकता है, परन्तु न खानेमें धार्मिक संयम है।' जिस समय मैं यह आलोचना कर रहा था, अुसी समय बायें हाथमें प्याला लेकर पानी भी पी रहा था। यह देख अेक बंगाली युवकने कहा — 'यह क्या? आप बायें हाथसे पानी पीते हैं?' मैंने जवाब दिया — 'दाहिना हाथ जूठा है। जूठे हाथसे बरतन क्यों बिगाड़ा जाय?' वह हंसा। अुसके हंसनेमें तिरस्कार था। वह सोच रहा था कि अिस जंगली मनुष्यको शिष्टाचारका बोध कैसे हो? दाहिने-बायें हाथका भेद यह क्योंकर समझे? बायां हाथ तो सबेरे शरीर-शुद्धिके लिअे काममें लाया जाता है; अुस हाथसे पानी कैसे पिया जाय? मैं सोचता था कि जब दोनों हाथोंसे आटा गूंधना पड़ता है, तब अिन लोगोंकी बायें हाथकी घृणा कहां हवा हो जाती है?

हिन्दुस्तानमें स्वच्छता, पवित्रता, लज्जा, सिद्ध और निषिद्ध, स्वच्छ और अुच्छिष्ट आदिके विषयमें हरअेक जगहकी कल्पना निश्चित हो गयी है। परन्तु दो प्रान्त अथवा दो जातियोंकी कल्पनामें कोअी मेल नहीं है। काश्मीरमें हाथको जूठा होनेसे बचानेके लिअे कुरतेकी लम्बी आस्तीनमें रोटी पकड़कर खानेवाले लोग मुझे बूट पहनते समय हाथका अुपयोग करते देख हंसते थे, और खुद कसाअियोंकी दुकानसे फल खरीदकर बिना धोये खा लेते थे! अगर हमारे देशके धर्मध्वजी लोग दूसरे प्रान्तोंमें जाकर दो-दो महीने वहांवालोंका आतिथ्य स्वीकारनेका व्रत लें, तो मैं समझता हूं कि हमारी धर्म-विषयक कल्पनायें बहुत-कुछ सुधर जायं।

फलाहारके बाद संगीत शुरू हुआ। मैंने रविबाबूका 'अयि भुवनमनमोहिनी' सुनानेका अनुरोध किया। वहां बहुतसे नवयुवक अेकत्र हुअे थे, लेकिन अुनमें कोअी 'मनमोहिनी' गानेको तैयार न दीख पड़ा। अेकने कहा — 'हम यहां सिर्फ धार्मिक गीत गाते हैं।' आखिर दूसरे अेक नवयुवकने आतिथ्य-धर्म निबाहनेके लिअे 'मनमोहिनी' गाकर सुनाया, और सबने अुसे सहन किया। मुझे शंका है कि युवकोंके अुस समुदायमें कअी क्रान्तिवादी भी अवश्य रहे होंगे। अेकने मुझसे पूछा — 'बंगालियोंके स्वास्थ्यके विषयमें आपकी क्या राय है?' मैंने कहा — 'आम तौर पर वे निर्बल दीख पड़ते हैं।' वह मेरे शरीर पर दृष्टि डालकर तिरस्कारसे हंसा। मैं समझ गया और मैंने जवाब दिया — 'आप मुझे महाराष्ट्रका प्रतिनिधि तो नहीं समझते हैं न?' हम दोनों हंस पड़े। अुसने कहा — 'हमें अपनी खुराकमें फेरफार करना चाहिये। गेहूंके बिना शक्ति न बढ़ेगी।'

बंगालका ग्रामीण जीवन सादा और सुन्दर है। बंगाली झोंपड़ियोंके छप्पर सुडोल और सुन्दर होते हैं। अुनकी दीवारें अुम्दा मिट्टीसे पुती होती हैं। जहां जाअिये, गायन-वादन सुनाअी देता है। लेकिन मेरा यह खयाल है कि जातिभेदकी सख्तीके कारण गांवमें अेकताका विकास सुचारु रूपसे नहीं हो सकता। खरडह जैसे छोटेसे देहातमें भी बड़े-बड़े पंडित रहते हैं, और बिना प्रतिष्ठाकी अिच्छा किये विद्याकी अुपासना करते हैं।

लौटते समय सूर्यास्त होनेको था। अब नदीके प्रवाहके साथ जाना था। हम नदीके प्रवाहमें बहने लगे। हमारे साथके ब्रह्मचारी रामप्रसादके भजन गा रहे थे।

८

रामकी राजधानी

मेरे साथ मरढेकर बाबा थे। वे रामदासी सम्प्रदायके थे। जबसे शंकराचार्यने संन्यासियोंके दस नाम यानी प्रकार निश्चित किये, चार मठ स्थापित किये और ब्रह्मचारियोंके भी चार प्रकार निश्चित किये, तबसे हिन्दुस्तानके साधुओंके जीवनमें अेक तरहकी सुव्यवस्था आ गयी। धर्म-क्षेत्रमें शंकराचार्य समुद्रगुप्त या नेपोलियनकी टक्करके विजेता थे; राजा टोडरमल या शिवाजीकी जोड़के व्यवस्थापक थे; तुलसीदास-सदृश कवि थे; बुद्ध भगवान-जैसे आत्म-विश्वासी थे और ज्ञानेश्वरके मुकाबलेके साहित्याचार्य थे। अुन्होंने सनातनी हिन्दुओंकी जो व्यवस्था कर दी, अुसके अवशेष आज तक कायम हैं। सचमुच शंकराचार्य हिन्दूधर्म-सम्राट माने जा सकते हैं।

अुनके निश्चित किये हुअे संन्यासियोंके दस नाम गिरी, पुरी, भारती, तीर्थ, सरस्वती आदि हैं। ब्रह्मचारियोंके चार विभागोंमें से स्वरूप सम्प्रदाय भी अेक है। अुसका अेक मठ अयोध्यामें है। अैसा माना जाता है कि महाराष्ट्रमें धार्मिक पुनर्जीवनको सुव्यवस्थित स्वरूप देनेवाले श्री समर्थ रामदास अिसी अयोध्या मठके और स्वरूप सम्प्रदायके थे।

अयोध्या जाते हुअे मरढेकर बाबाके दिलमें आनन्द और भक्तिका अितना अुद्रेक हो रहा था कि अुन्हें देखकर कोअी भी यह समझ सकता था कि अुनकी दृष्टि स्वाभाविक स्थितिमें नहीं थी।

आमुचे कुळी हनुमन्त
हनुमन्त आमुचें कुळदैवत
स्वरूप सम्प्रदाय अयोध्या मठ.

(हनुमान हमारे कुलमें हैं। हनुमान हमारे कुलदेवता हैं। हमारा सम्प्रदाय स्वरूप और मठ अयोध्या है।)

अैसा अेक संकल्प रामदासी पंथके लोग रोज सुबह-शाम पढ़ते हैं। अैसे अयोध्या मठका दर्शन बाबाके लिअे अेक अपूर्व लाभ था।

मेरी यात्रामें तीन तीर्थस्थानोंकी तरफ मेरा ध्यान विशेष आकर्षित हुआ है। अयोध्या, हरद्वार और अमृतसर। तीनों जगह, जाने क्यों, मेरा चित्त विशेष प्रसन्न रहा है। तीनों जगह कोअी मेरी जान-पहचानका या मुलाकाती न था। तो भी अिन तीनों स्थानोंके दर्शन और वहांके वातावरणके अनुभवने मुझे विशेष प्रसन्नता हुआी, आह्लाद हुआ। तीनों भिन्न-भिन्न समयके हैं, परन्तु हैं अेक ही जातिके।

काशी जानेके पहले मनुष्य अपने मनमें अुसका जो कल्पना-चित्र खींच लेता है, अुसकी तुलनामें काशीका प्रत्यक्ष दर्शन कभी निराशाजनक सिद्ध नहीं होता। गंगाके प्रवाह पर, नावमें बैठे-बैठे, घाटके बाद घाट देखनेके पश्चात् मनुष्यके मुंहसे हठात् आश्चर्यके ये अुद्‌गार निकलते हैं — 'मुझे कल्पना भी न थी कि काशीका दृश्य अितना मनोहर और अितना भव्य होगा!'

अयोध्याकी स्थिति अिससे अुलटी है। अयोध्या तो रामराज्यकी राजधानी है। अयोध्याका नाम सुनते ही कल्पनाके सामने अेक अतिविशाल मनोहर नगरीका दृश्य खड़ा होता है। जब मनुष्य अिस भव्य कल्पनाके साथ अयोध्या जाता है, तो पहले वहांका स्टेशन देखकर ही निराश हो जाता है। जहां हमेशा लाखों यात्रियोंका आवागमन होता है, वहां अुनकी सुविधाका कोअी ख्याल नहीं रखा जाता। यह देखकर अैसा विचार हुअे बिना नहीं रहता कि वर्तमान राज्य देशी जनताके लिअे है ही नहीं, और खासकर गरीबोंके लिअे तो बिलकुल ही नहीं है।

अयोध्यामें नदीका प्रवाह घाटसे बहुत दूर चला गया है। नदीका पाट खूब चौड़ा और रेतीला है। गाड़ियोंको रेतमें चलते समय बड़ी दिक्कत होती है। अिसलिअे वहांके लोगोंने पहियोंके नीचे लकड़ीके दो-दो पटिये बिछानेकी तरकीब अीजाद की है। गाड़ीका रास्ता नदीके पाटमें से निकला जाता है, अिसलिअे वह खूब लम्बा है। अिस सारे रास्तेकी सीध पर लम्बे-लम्बे पटिये रेलकी पटरियोंकी तरह बिछा दिये गये हैं। गाड़ियां अिन पटियों पर चलती हैं, लेकिन गाड़ियोंकी विडम्बनाओंका अन्त

यही नहीं होता। आंधी आते ही ये पटियें रेतमें दब जाते हैं। फिर रास्तेकी और पटियोंकी शोधके लिओ अेक पुरातत्व-विभाग खोलनेकी नौबत आ पड़ती है। परन्तु लोगोंने अिसका भी अेक अुपाय खोज लिया है। वे रास्तेके दोनो तरफ कांटे, कंटीले पौधे और घासकी अेक हाथ अूंची बागुड़ लगा देते हैं, जिससे आधीके साथ आनेवाली रेत वहीं रुक जाती है। रेतके बोझसे बागुड़ भीतरकी तरफ झुक न जाय, अिसके लिओ अन्दरकी तरफ रेतका ढेर लगाकर अुसे सहारा दिया जाता है। नदीमें बाढ़के आने और अुतर जाने पर फिर यह रास्ता बनाना पड़ता है। यदि सहाराके मरुस्थलमें प्रकृतिने अूटकी सुविधा न की होती, तो वहां भी लोगोंको अिसी ढंगकी जबरदस्त व्यवस्था करनी पड़ती।

नदीमें नहाकर पीछे मुड़ते ही सहसा अयोध्या नगरी और अुसके घाटोंके दर्शन होते हैं। अयोध्यामें सर्वत्र चूनेका ही काम है, अिसलिओ सब मन्दिर सुधाधवल (सुधा=चूना; धवल=सफेद) दिखाओ देते है। जिस समय हम नहाकर नगरमें प्रवेश करते हैं, अुस समय सामनेवाले मन्दिरोंमें घंटारव होता है; यात्री भांति-भांतिके चमकीले लोटे और घड़े हाथमें लिये आते-जाते हैं; बहुतोंके हाथमें चन्दन, कुंकुम और पुष्पकी थालियां होती हैं, और हरअेक रामराजा, सीतारानी और बजरंगबली हनुमानकी जयके नारे लगाता जाता है। अैसा प्रसंग मनुष्यके चित्त पर सदाके लिओ अंकित हुओ बिना कैसे रह सकता है? यदि मनुष्यकी स्मृति पत्थरकी तरह जड़ हो, तो भी अिस प्रकारकी स्मृति अुस पर अशोकके शिला-लेखोंकी तरह हमेशाके लिओ अंकित हो जायगी।

नहा-धोकर हम दर्शन करने निकले। यह कैसे हो सकता है कि अयोध्यामें बन्दर न हों? सुनते हैं कि वानरोंकी मददसे रामचन्द्रजीने सीताजीका पता लगाया और लंका जीती। अिसके बदले अुन्होंने अपने बाद अयोध्याका राज्य वानरोंको सौंप दिया। आज भी वहां वानरोंका निष्कंटक राज्य जारी है। अितिहासकार कहते हैं कि अति प्राचीन कालमें दक्षिण हिन्दुस्तानसे जो माल विदेशोंको जाता था, अुसमें मोर और बन्दरोंका भी निर्यात होता था। यदि रामचन्द्र भी दक्षिण हिन्दुस्तानसे बन्दरोंका अेकाध दल यहां बसानेके लिओ ले आये हों, तो अुसमें आश्चर्य क्या? मानवंश-

शास्त्रियोंका कथन है कि नयी बस्ती बसानेवालोंकी संख्या बड़े वेगसे बढ़ती है। अिसी सिद्धान्तके अनुसार मथुरा-वृन्दावनके बानरोंकी बस्ती बढ़ी होगी। आज अयोध्यासे भी मथुरामें अुनकी बस्ती अधिक तरक्की पर है।

अयोध्यामें मन्दिर और मूर्तियां तो कअी हैं, परन्तु राजमहलमें गोविन्द या विष्णुका जो मन्दिर है, अुसकी मूर्ति असाधारण है। यह मूर्ति है तो काले पत्थरकी, लेकिन अुसके काले रंगमें गहरे हरे रंगकी छटा है। अतः अुसकी शोभा और भी बढ़ गअी है। रसिक भक्तोंने श्री-कृष्णको श्यामसुन्दर मानकर कौनसा कला-विधान सिद्ध किया है, अिसकी कल्पना अिस मूर्तिके दर्शनसे स्पष्ट हो जाती है।

जब हम मन्दिर देखने गये थे, अुस वक्त दोपहरके कोअी ग्यारह-बारह बज रहे होंगे। मन्दिरके सेवक यानी ब्राह्मण आरतीके लिअे अेकत्र हुअे थे।

सत्यं ज्ञानमनन्तं नित्यमनाकाशं परमाकाशम्।

स्तोत्र बहुत ही मीठे, गुस्वर रागमें और मधुर आलापों सहित गाया जा रहा था। राजमहलके हरअेक विभाग पर अुस विभागके नामकी तख्ती लगी हुअी है। ये सारे नाम संस्कृतमें लिखे गये हैं, अिस बातकी तरफ मेरा ध्यान गये बिना न रहा।

अयोध्यामें मुख्य दर्शन तो हनुमानगढ़ीके हनुमानजीका है। यहां यात्रियोंकी अधिक-से-अधिक भीड़ होती है। कोअी नारियल लेकर जाते हैं, तो कोअी पेड़े लेकर पहुंचते हैं। कोअी हनुमानजीको पंखेसे हवा करते हैं। बड़े पंखेकी रस्सीका छोर मन्दिरके बाहर रखा गया है। जिसे श्रद्धा हो, वह पंखा झले और धन्य हो! मैं अिसी अुधेड़बुनमें पड़ गया कि पवन-कुमारके सिर पर पंखा झलना अुचित है या अनुचित? मशरूवाला बाके साथ चर्चा करना असम्भव था, क्योंकि वे तो भक्तिसे मतवाले हो रहे थे। जब अुनका दिया हुआ भोग हनुमानजीको चढ़ाया गया, तब तो अुनके नेत्रोंसे पन्नालाके आंसुओंका प्रवाह बहने लगा। वे तो धन्य हुअे ही, लेकिन अुनकी अुस भक्तिके दर्शनसे मैं भी धन्य हुआ!

गढ़ीसे नीचे अुतरकर हम रामजन्मका स्थान और अिसी प्रकारके अन्य रामायण-प्रसिद्ध स्थान देखने गये। मैंने वहां सुना कि ये सारे स्थान

मुसलमान भाअियोंकी धर्मान्धताके शिकार हुअे हैं। आज वे स्थान अिस योग्य नहीं रहे कि अपनी प्राचीन दशाकी जरा-सी भी झांकी दर्शकोंको करा सकें।

जिस प्रकार श्री भैरव काशीके कोतवाल हैं, अुसी प्रकार श्री मत्तगजेन्द्र अयोध्याके कोतवाल हैं। अिनकी कथा या माहात्म्य मुझे वहां सुननेको नहीं मिला। दर्शन समाप्त करके हम अेक ब्राह्मणके घर भोजन करने गये। पहले तो अुसके घरकी स्वच्छता देखकर ही हम अघा गये। घरके आंगनमें अेक बालिश्त लम्बा और अेक बालिश्त चौड़ा अेक पत्थर पड़ा हुआ था। जिस समय हम वहा पहुचे, अुस समय यानी ठीक मध्याह्नमें ब्राह्मणकी लड़की अुस पत्थर पर बैठकर दतौन कर रही थी। थोड़ी देरके बाद अेक बालकने पास ही प्रातर्विधि पूरी की। माने बच्चेको अुसी पत्थर पर बैठाकर धोया। और अुस पानीके सूखनेसे पहले ही अुस शिलाको धोकर अुस पर कैथेकी चटनी बांटी। घरमें कपड़े और बरतनोंका चौपट राज था। चूल्हेसे धुआं निकल रहा था, और ब्राह्मणके मुहसे गालियां। आखिर अुसके यहा जितना खाया जा सका, खाया; जितनी अुचित जान पडी अुतनी ही दक्षिणा दी, और हम अयोध्यासे रवाना हुअे।

अयोध्यामें सरकारी कचहरिया वगैरा कुछ नहीं है। क्योंकि नजदीकका फैजाबाद शहर जिलेका सदर मुकाम है। सब प्रतिष्ठित लोग वहीं रहते हैं। अयोध्याकी बस्ती तो खासकर यात्रियोंकी, और अुन पर गुजर करनेवाले पडों और साधुओंकी बस्ती है। साधु भी विशेषकर नागा बाबा हैं। ये लोग जबरदस्त कर्मकाडी और स्वयंपाकी होते हैं। खुद पकाकर खाते हैं, और सारा दिन चिलम पीते हैं। कमरमें लंगोटी और गलेमें काठकी बड़ी-बड़ी गुरियोंकी माला पहने रहते हैं। दिनभर रामजीकी बातें करते हैं, तुलसी-रामायणके दोहे और चौपाअियां बेसुरे रागमें गाते हैं, और जहां बैठते हैं वहां शान्ति अेवं संगीतका तो खून ही करते हैं। फिर भी अिन लोगोंकी कअी बातें सीखने योग्य हैं। ये बहुत साफ रहते हैं। आम तौर पर तन्दुरुस्त होते हैं। जहां जाते हैं, अेक छोटासा, कामचलाअू मन्दिर बना लेते हैं। लोगोंको अुपदेश करते हैं, और साधुकी

आरतीके समय तालबद्ध घंटा बजाते हैं। साधारणतः ये लोग झगड़ालू नहीं होते, परन्तु जब कभी अिन पर झगड़नेकी धुन सवार हो जाती है, ये बगैर खून किये नहीं मानते। ये लोग पुलिससे बहुत चिढ़ते हैं। दो पक्ष चाहे जितने लड़-झगड़ रहे हों, पुलिसके आते ही दोनों फौरन् अेक हो जानेका स्वांग रचते हैं। यह हिन्दुस्तानकी अेक अैसी पुरानी संस्था है, जिसको न तो हम अुपयोग ही कर सकते हैं, और न अिसे नअी चमक या 'ओप' ही दे पाते हैं।

गुजरातमें जो स्वामीनारायण सम्प्रदाय जितना फैला हुआ है, अुसके आद्यगुरु श्री सहजानन्द स्वामी अयोध्यासे ही गुजरात आये थे।

तीन वर्ष बाद मैं फिर अेक बार अयोध्या गया था। अुस बार भी मैंने पहले जितनी ही प्रसन्नताका अनुभव किया। मोक्षदायिका सप्तपुरियोंमें हमारे पूर्वजोंने अयोध्याको प्रथम स्थान दिया है।

अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्तिका।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः॥

९

अलमोड़ाकी ओर

रामकृष्ण परमहंसने कहा है — 'जिसे मोक्षका रास्ता लेना हो, अुसे छोटी-छोटी फुटकर और निर्दोष वासनाओंकी तृप्ति कर लेनी चाहिये। और बादमें बड़ी वासनाओंका सामना करनेके लिअे कमर कसकर तैयार हो जाना चाहिये।' अेक दृष्टिसे हमने मोक्षके पंथ पर पदार्पण किया था। हम दोनोंको सांसारिक प्रवृत्तियों और अुनकी विविध अुपाधियोंके प्रति घृणा अुत्पन्न हो गअी थी। परन्तु मेरे मनमें हिमालयकी यात्रा और रामकृष्ण-मिशनके पुण्यपुरुषों तथा पवित्र स्थानोंका दर्शन करनेकी लालसा रह गयी थी। गरुड़ेश्वर बाबाको अयोध्या-दर्शनकी साध लगी हुअी थी। अब वह तृप्त हो गयी। अतः हम दोनों बरसातके बादके बादलोंकी तरह हलके हो गये, और हिमालयकी तरफ चल पड़े। मङ्गल-मूर्तिसे समाद

श्राद्धके समान ही आनन्द होता है। अुस आनन्दको प्राप्तकर हम दोनोंने अयोध्यामें आखिरी रात मानो योगनिद्राके अनुभवमें बिताअी। मनमें न कोअी वासना अुठती थी, न कोअी विचार आता था; फिर स्वप्नमें भी वे क्यों आने लगे? सवेरे अुठते ही अैसा मालूम होने लगा, मानो हम कोअी बिलकुल नये आदमी बन गये हों! अब तक हम अिस दुनियाके साधारण मनुष्यों-जैसे मनुष्य ही थे। दूसरे तीर्थयात्रियोंकी तरह तीर्थयात्रा करते थे। पर अब हिमालयका चित्र कल्पनाके सामने तैरने लगा था।

ट्रेनमें बैठे। भीड़ गजबकी थी। लोगोंको जगहके लिअे लड़ते देख मैं मनमें कहने लगा — 'जरा सब्र करो भाअी! यह हमारी आखिरी यात्रा है। फिर हम भीड़ करने नहीं आयेंगे।' लेकिन लोगोंको मेरे मनोगत विचारोंका क्या पता? न जाने कितने लोग हर साल मेरी तरह अिस दुनियासे अिस्तीफा देकर वैराग्य खण्डमें चले जाते होंगे! बहती दुनियाको न तो अुसका कोअी हर्ष-विषाद है, और न अुससे कोअी लाभा-लाभ। परन्तु जानेवालेकी दृष्टिसे यह कितना गम्भीर काम होता है! जब बूढ़े टॉल्स्टॉय अन्तिम बार घर छोड़कर निकले होंगे, तब अुनके मनमें क्या-क्या विचार न आये होंगे?

अुत्तर हिन्दुस्तानमें रेलको शुरू हुअे पौनसौ साल तो आसानीसे हो चुके होंगे। मगर अब तक लोग रेलके आदी नहीं हुअे। अिस डरसे कि कहीं रेलका 'टेम' न चूक जाय, लोग पांच-पांच, छह-छह घंटे पहले स्टेशन पर आकर अुम्मीदवारी करते हैं। टिकटघरकी खिड़कीके पास अपना पहला नम्बर लगानेके लिअे लोग वहां सिपाहीको घूस देकर और आसपासके मुसाफिरोंको धक्के मारकर आगे जानेका हक खरीदते हैं। स्टेशन पर गाडी आनेके बाद जब तक अुतरनेवाले मुसाफिर अुतर न जायं, तब तक तीसरे दरजेके मुसाफिरोंको स्टेशनके चबूतरे पर (प्लैटफॉर्म पर) जाने नहीं दिया जाता, यह बात अब तक अुनके ध्यानमें नहीं आती! तो फिर अुतरनेवाले और बैठनेवाले मुसाफिरोंके लिअे अिसमें कितना सुभीता है, यह खयाल अुन्हें कहांसे आवे? अिसलिअे फाटक खुलनेसे पहले ही कठहरे पर चढ़कर प्लैटफॉर्म पर कूदनेका प्रयत्न कोअी न कोअी मुसाफिर जरूर करेगा। और, ट्रेनमें कुछ जबरदस्त लोग दिन-दहाड़े पैर पसारकर

जरूर सोयेंगे। बैठनेवाले लोग भरसक ज्यादा जगह रोकनेके लिअे पलथी मारे, अधिक-से-अधिक फैलकर बैठनेकी कोशिशमें, पैरोंकी नसोंसे खूब व्यायाम करायेंगे। डिब्बेका दरवाजा अगर अन्दरकी तरफ खुलता हो, तो दरवाजेमें ही सामान रख देंगे और रेलवे जितना कष्ट देती है, अुसे अपनी तरफसे यथासम्भव बढ़ानेकी कोशिश बड़ी लापरवाहीसे करते रहेंगे।

अैसी गाड़ीमें यात्रा करना अेक भारी तपस्या ही है। गाड़ीमें प्रवेश मिलनेसे पहले ही डार्विनके जीवन-कलहके अेक-अेक सिद्धान्तकी पुनरावृत्ति हो जाती है। परन्तु गाड़ी चलते ही प्रिन्स क्रोपाटकिनका राज्य शुरू हो जाता है। बादमें खड़े होनेवालोंको बैठनेकी जगह मिल जाती है; प्यासेको, अगर जात-पात अनुकूल हो, पानी भी मिल जाता है। पान-सुपारी, बीड़ी, और दोहोंका लाभ तो होता ही है। स्टेशन दूर हो, तो गपशप चलने लगती है। ज्यादातर मेघराजकी अकृपा और अकालकी जानकारीकी बातें सुनाअी देती हैं। प्रसिद्ध डाकुओंके साहस-पराक्रमके किस्सोंमें सभीको मजा आता है। हमारे डिब्बेमें अेक सज्जन मुरादाबादकी तरफके किसी डाकूका किस्सा सुना रहा था, और डाकुओंके प्रति समभाव रखते हुअे सब कोअी अुसे सुन रहे थे। डाकू यानी मनुष्य-समाजके शत्रु। अुनके नामसे ही मनुष्य-मात्रको नफरत होनी है। परन्तु फिर भी लोग डाकुओंके लिअे अितनी सहानुभूति कैसे रख सकते हैं, यही विचार अुस दिन मेरे मनमें आता रहा। ज्यों-ज्यों डाकू-पुराण आगे चलता गया, त्यों-त्यों मुझे अपने प्रश्नका अुत्तर मिलने लगा। डाकुओंमें भी खानदानियतके अंश होते हैं। शरीफ (!) डाकू गरीबोंको तंग नहीं करते। स्त्रियोंको नहीं छेड़ते। अंधेरी रातमें कोअी स्त्री अकेली जाती हो, तो चीरोंकी परिपाटीके अनुसार अुसे पहुंचाने जाते हैं। मरीजोंको दवा-पानी देनेमें मदद करते हैं। सत्यनारायणकी कथा करनेवाले ब्राह्मणोंको मुक्त हस्तसे दक्षिणा देते हैं। और प्रजाको तंग करनेवाले पुलिसवालोंसे सदा बैर रखते हैं। आम लोगोंका यह खयाल होता है कि डाकू अुन्हीं लोगोंको परेशान करते हैं, जो मुकदमेबाज हैं, जो जालसाजी करते हैं, अकालमें भी रियायत नहीं देते, मनमाना ब्याज लगाकर खेत हड़प कर लेते हैं, और दुकालके समय

तेज भावकी आशासे गल्ला बेचनेसे अिनकार करते हैं; अिसलिअे डाकुओंके प्रति लोगोंका कुछ सहानुभूतिशील होना स्वाभाविक है। जनता न्याय, कानून, नागरिकताके अधिकार और कर्तव्य आदि कुछ नहीं जानती। खुशकिस्मतीसे कभी-कदास मिलनेवाले सुख और नित्य नसीब होनेवाले दुःखसे ही वह परिचित है।

डाकुओंके किस्से खतम होने पर अेक बावाने अपने पूर्वजन्मके कर्मका वेदान्त छाटना शुरू किया। संसार असार है, काया झूठी है, माया झूठी है, अेक रामनाम ही सत्य है (और सत्य है बाबा-बैरागियोंको दी जानेवाली रोटी और लंगोटी), बाकी सब मायाका जंजाल है। जैसा अुस जन्ममें किया होगा, वैसा अिस जन्ममें भुगतना होगा, अुसमें हमारा कोअी वश नहीं चल सकता — यह अुनके वेदान्तका सार था। मैं भी साधु होने जा रहा था। मनमें सोचने लगा — 'क्या मैं अिन्हीं लोगोंकी बिरादरीमें मिलने जा रहा हूं? अिस प्रकारके वेदान्तसे क्या मुझे मोक्ष मिलनेवाला है या हिन्दुस्तानको स्वराज्य मिल सकता है?'

अितनेमें बरेली स्टेशन आया। यहां हमें कुछ घंटों तक काठगोदामकी गाड़ीका अिन्तजार करना था। अिस स्टेशन पर मुसाफिरोंके भोलेपनका अेक अजीब नमूना देखा। अेक बूढ़ा गाजियाबादकी तरफ जाना चाहता था। अुसकी स्त्री और दो लड़के अुसे पहुचानेके लिअे स्टेशन तक आये थे। हलवाअीके चीथड़े-जैसी मैली-कुचैली धोतीका कच्छ लगाये अेक नौकर भी साथ था। बूढ़ेने स्टेशन पर अपनी अेक चौकोन दोहर बिछा दी थी। अुस पर दो-चार धोतियां, अेक मिरजअी, अेक लोटा, बिछाने-ओढ़नेके दो-चार कपड़े, अेक पानदान आदि कअी चीजोंका ढेर लगा दिया था। बादमें दोहरके आमने-सामनेके छोर मिलाकर गांठ लगायी। दूसरे दो छोर किसी तरह हाथमें नहीं आते थे। आखिर नौकरकी मददसे अुन दोनों हठीले छोरोंका किसी तरह गठबन्धन किया और पोटलीको गोल आकार प्राप्त हुआ। अिस प्रकारकी पोटली देखकर ही शायद कुछ पुराणोंमें पृथ्वीको चौकोन कहा गया हो। अिस सर्व-संग्रह-पोटली पर ध्वज या पताकाके तौर पर बूढ़ेने अेक कोनेमें अपना प्रौढ़ हुक्का खोंस दिया। पोटलीमें हुक्का तो मौन लेकर ही बैठा था, लेकिन अुसका रोब देखकर

यह स्पष्ट मालूम होता था कि जब यह बोलता होगा, तब अच्छे-अच्छे हुक्का-बहादुरोंके हृदय हिलानेकी वाचासिद्धिका परिचय देता होगा। थोड़ी देरमें बूढ़ेकी गाड़ी आअी। गठड़ी सिर पर रखकर यह अेक डिब्बेकी तरफ दौड़ा। गाड़ीके दरवाजे कितने बड़े होते हैं, अिसका अन्दाजा करनेकी कला सतजुगसे आज तक किसीने खोजी ही न थी। अिसलिअे किसी तरह पोटली अन्दर घुसती ही न थी। बूढ़ा अपनी सारी ताकत लगाकर पोटली अन्दर ढकेलने लगा। लेकिन अितनेमें अेक मुसाफिरको अपने हुक्का खयाल हो आया। अुसने पोटली बाहर फेंक देनेका प्रयत्न शुरू किया। अिन्द्र और विश्वामित्रकी खींचातानीमें बेचारे त्रिशंकुकी जो दुर्दशा हुअी थी, वही यहां बेचारी अुस पोटलीकी हुअी। पोटली पलटा खाकर अधोमुख हुअी। हुक्केकी चिलम नीचे गिरकर शतधा विदीर्ण हो गअी। तब बूढ़ेका नौकर वीरभद्रके वेगसे दौड़कर आया और अुसकी मददसे यह वृद्ध तथा अुसकी पोटली दोनों डिब्बेके अन्दर दाखिल हुअे। नौकरने गालियोंकी गर्जना जारी रखी। और बेचारा वृद्ध चिलमके अभावमें गरीब गायकी तरह दीन-हीन दिखायी देनेवाले हुक्केकी हालत पर तरस खाता हुआ अेक कोनेमें बैठ गया।

अिस अुपाख्यानका रस खूब चावसे चख चुकनेके बाद भी हमारी गाड़ीके छूटनेका वक्त नहीं हुआ। हम बिलकुल अुकता गये। आखिर मरहेकर बाबाने भोजन बनानेका प्रस्ताव पेश किया। मेरी समझमें न आता था कि स्टेशन पर भोजन कहां बनाया जाय? लेकिन बाबा पुरुषार्थी ठहरे। वे कहींसे अेक कोरा मटका ले आये। स्टेशनकी बगलमें अेक झाड़के नीचे तीन पत्थर अिकट्ठा किये और लकड़ियोंकी खोजमें गये। लौटनेमें काफी देर लगी, लेकिन लकड़ियां भी खूब आअीं। फिर जाकर खिचड़ीका सामान ले आये। अितनेमें अेक बड़ी तोंद और छोटी आंखोंवाला सिपाही वहां आया, और जैसी सभ्य भाषा वह जानता था, वैसी सभ्य भाषामें अुसने कहा कि हम वहां रोटी नहीं बना सकते; क्योंकि वह जगह रेलवे कम्पनीकी थी, और रेलवे कम्पनीमें हमारे पिताजीकी कोअी साझेदारी नहीं थी। मुझे अैसे प्रसंगोंका अनुभव न था, अिसलिअे मैं ठिठक अुठा। परन्तु हमारे बाबाजी किसी कारण हार

माननेवाले जीव न थे। अिधर अिसी रगड़-झगड़में गाड़ीका वक्त हो गया, और हम वह सीधा और हमें मिली हुअी गालियोंकी विरासत अेक साधुको सौंपकर गाड़ी पर सवार हुअे। साधुने बाबाको आशीर्वाद देते हुअे कहा—'तुम कुछ फिक्र मत करो। अुस सालेको मैं ठीक करूंगा।'

गाड़ीमें अितनी सख्त गरमी थी कि हमारी ही खिचड़ी पक रही थी। अेक साधु हिमालयकी यात्रा करके आया था। अुससे जितनी जानी जा सकें अुतनी सब बातें जाननेमें ही हमने अपना वक्त बिताया। वह कहने लगा—"हिमालयमें अेक किस्मकी मक्खी होती है। अगर वह पिंडलीमें काट ले, तो अुसका अितना बड़ा और विषैला फोड़ा हो जाता है और अैसी जलन होती है कि अेक कदम भी नहीं चला जाता। दो-दो तीन-तीन दिन तक आदमी घायल पड़ा रहता है। अुस साधुके हाथमें तेजवलकी अेक लकड़ी थी। अुस लकड़ीके अद्भुत गुणधर्मसे भी अुसने हमें परिचित कराया—"यदि कोअी अिस लकड़ीका ठीक-ठीक पालन करे, तो अिसे रखनेवाला रातको अंधेरेमें भी देख सकता है।" मैंने पूछा—"लकड़ीका पालन क्या करनेसे होगा?" अुसने कहा—"लकड़ीकी छालमें ये जो आंखें-सी दिखाअी देती हैं, अुन्हें हमेशा साफ रखना चाहिये। लकड़ी कभी जमीन पर टेकनी न चाहिये। रातको सोते वक्त अुसे कहीं अूंची जगह रख देना चाहिये। और दिशा-जंगलसे आनेके बाद बग़ैर हाथ-पैर धोये लकड़ीको छूना न चाहिये। अिस लकड़ीसे साप या बिच्छूको न मारना चाहिये। अिन नियमोंका पालन करनेसे लकड़ीका पालन होगा, और तभी लकड़ी अपने अद्भुत गुण दिखायेगी।"

जीवन-भर यात्रा करनेवाले और रोज नया अनुभव लेनेवाले अिस साधुमें अितना वहम देखकर मेरे मनमें विचार आया कि हिन्दू धर्मकी सारी शक्ति यों ही फिजूल जाती है। समाजके लिअे यह साधु-समाज बोझरूप हो गया है। या तो अिसका अन्त करना चाहिये, या अच्छे-अच्छे विचारवान लोगोंको अिन बैरागियोंकी जमातमें शामिल होकर धैर्यसे अिन्हें सुधारना चाहिये। अिन दो मार्गोंमें से कौनसा सम्भव और कौनसा असम्भव है, सो कौन कह सकता है?

हम ज्यों-ज्यों बरेलीसे दूर-दूर जाने लगे, त्यों-त्यों भीड़ छंटती गयी और हमें स्वाधीनताका — स्थान और विचारकी स्वाधीनताका — आनन्द मिलने लगा।

१०

नगाधिराज

विदेशमें रहनेवाले मनुष्य-मात्रमें अपनी जन्मभूमिका स्मरण, जन्मभूमिका विरह और वापस जन्मभूमिमें पहुंच जानेकी अिच्छा हमेशा जाग्रत ही रहती है। बाबरको हिन्दुस्तानकी जबरदस्त शाहंशाहत मिली और अमृत-सा मीठा आम खानेको मिला, फिर भी अुसे मध्य-अेशियाके अपने तरबूजोंकी याद बार-बार आया करती थी। साथ ही, अुसकी यह अिच्छा भी रही कि चाहे जीतेजी अपनी जन्मभूमिके दर्शन करना अुसके भाग्यमें न हो, फिर भी आखिर अुसकी हड्डियां तो अुस जन्मभूमिमें ही गिरनी चाहियें। हिन्दुस्तानमें आकर नवाबी ठाठसे रहनेवाले अंग्रेजको भी तब तक चैन नहीं पड़ता, जब तक छह महीनोंकी छुट्टी लेकर वह स्वदेश नहीं हो आता। कुछ अिसी तरहकी अुत्कंठा हिमालयके प्रति हिन्दुओंके मनमें रहती है। अितिहास-लेखक आर्योंके मूलस्थानके रूपमें अुत्तर ध्रुवकी कल्पना चाहे करें, और भाषाशास्त्री अिसका गौरव मध्य-अेशियाको चाहे दें, और देशाभिमानी लोग चाहे हिन्दुस्तानको ही आर्योंकी आद्यभूमि सिद्ध करें, तो भी अगर राष्ट्रके हृदयमें बिराजी हुअी प्रेरणाका अपना कोअी अैतिहासिक महत्त्व है, तो हिमालय ही हम आर्योंका आद्यस्थान है। राजा हो या रंक, बूढ़ा हो या जवान, पुरुष हो या स्त्री, हरअेक यह अनुभव करता है कि जीवनमें अधिक नहीं तो कम-से-कम अेक बार तो हिमालयके दर्शन अवश्य ही किये जायं, हिमालयका अमृत-सा जल पिया जाय, और हिमालयकी किसी विशाल शिला पर बैठकर क्षणभर अीश्वरका ध्यान किया जाय। जब जीवनके सभी करने लायक काम किये जा चुकें, अिन्द्रियोंकी सब शक्तियां क्षीण हो जायं, जीर्ण देह और शेष आयुष्य भाररूप लगने लगे, तब अिस दुनिया-

रूपी पराये घरमें पड़े न रहकर अपने घरमें पहुंचकर मरना ही ठीक है। अिस अुद्देश्यसे कअी हिन्दू अन्न-जलका त्याग करके देहपात होने तक हिमालयमें अीशान्य दिशाकी ओर बराबर बढ़ते ही चले जाते हैं। हमारे शास्त्रकार यही मार्ग लिख गये हैं। किसी राजाका राज-पाट गया नहीं कि वह हिमालयमें पहुंचा नहीं। भर्तृहरि-जैसोंको कितना ही वैराग्य क्यों न अुत्पन्न हुआ हो, फिर भी हिमालयके विषयमें अुनका अनुराग अणुमात्र भी कम न होगा। अुलटे, वह अधिकाधिक बढ़ता ही जायगा। किसी व्यापारीका दिवाला निकलनेकी घड़ी आ पहुंचे, किसी सौदागरका सब-कुछ समुद्रमें डूब जाय, किसीकी स्त्री कुलटा निकले, किसीकी सन्तान या प्रजा गुमराह हो जाय, बागी हो जाय, किसीके सिर कोअी सामाजिक या राजनीतिक संकट आ पड़े, किसीको अपने अधःपतनके कारण समाजमें मुंह दिखाना भारी हो जाय — हालत कैसी भी क्यों न हो आस्तिक हिन्दू कभी आत्महत्या न करेगा। हिन्दुओंके मनमें परम दयालु महादेवके प्रति जितनी श्रद्धा है, अुतनी ही श्रद्धा हिमालयके प्रति भी है। पशुपति-नाथकी तरह हिमालय भी अशरण-शरण है। चन्द्रगुप्तने राष्ट्रोद्धारका चिन्तन हिमालयमें जाकर ही किया था। समर्थ रामदास स्वामीको भी राष्ट्रोद्धारकी शक्ति हिमालयमें ही बजरंगबली रामदूतसे प्राप्त हुअी थी। यदि पृथ्वीकी सतह पर अैसी कोअी जगह है, जहां हिन्दू धर्मका रहस्य अनायास प्रकट होता हो तो वह हिमालय ही है। श्री वेदव्यासने अपना ग्रंथसागर हिमालयकी ही गोदमें बैठकर रचा था। श्रीमत् शंकराचार्यने अपनी विश्व-विख्यात प्रस्थानत्रयी हिमालयमें ही लिखी थी। और स्वामी विवेकानन्द और स्वामी रामतीर्थने भी हिमालयमें ही अिस बातका विचार किया था कि सनातन धर्मके तत्त्व आधुनिक युग पर किस तरह घटाये जायं।* हिमालय — आर्योंका यह आद्यस्थान, तपस्वियोंकी यह तपो-भूमि — पुरुषार्थी लोगोंके लिअे चिन्तनका अेकान्त स्थान, थके-मांदोंका विश्राम-स्थल, निराश बने हुओंका सान्त्वना-धाम, धर्मका पीहर, मुमूर्षुओंकी

---

* यहां अिस बातका स्मरण हुअे बिना नहीं रहता कि गांधीजीने गीताका अपना अनुवाद — अनासक्तियोग — भी हिमालयमें ही पूरा किया था।

अन्तिम दिशा, साधकोंका ननिहाल, महादेवका धाम और अवधूतकी धम्या है। मनुष्योंको तो ठीक, पशु-पक्षियोंको भी, हिमालयका भूरे आधार है। सागरसे मिलनेवाली अनेक नदियोंका यह पिता है। धूनी सागरमें अुलझ बादलोंका यह तीर्थस्थान है। कविकुल-गुरुने 'देवतात्मा नगाधिराज'को पृथ्वीका मानदंड जो कहा है, सो अनेक अर्थोंमें यथार्थ है। हिमालय भूलोकका स्वर्ग और यक्ष-किन्नरोंकी निवासभूमि है। यह अितना विशाल है कि अुसमें संसारके सभी दुःख समा सकते हैं; अितना शीतल है कि सब प्रकारकी चिन्तारूपी अग्निको वह शान्त कर सकता है; अितना धनाढ्य है कि कुबेरको भी आश्रय दे सकता है; और अितना अूंचा है कि मोक्षकी सीढ़ी बन सकता है। हम ठेठ अपने बचपनसे हिमालयका नाम सुनते रहते हैं। बालकथा, बालगीत, प्रवास या यात्रा-वर्णन, अितिहास या पुराण, कहीं भी क्यों न देखें, सर्वत्र अन्तिम आश्रय तो हिमालयका ही मिलेगा। बचपनसे जो आदर्श रमणीय स्थान कल्पना-सृष्टिमें प्रत्यक्ष हुआ होगा, अुसकी कल्पना हिमालयमें ही आअी होगी।

अरे, अिस हिमालयने क्या-क्या नहीं देखा? पृथ्वीके असंख्य भूकम्पों और आकाशके हजारों धूमकेतुओंको अुसने अपलक भावसे देखा है। महादेवके विवाह अुसीने करवाये हैं। सतीके विहारका और कुमार-सम्भवका कौतुक अुसीने अपत्य-वात्सल्यसे किया है। भगीरथ सरकी रघुकुलकी अनेक पीढ़ियोंकी कठिन तपस्याओंका वह साक्षी है। पाण्डवोंकी महायात्रा अुसीने सफल की है। लेकिन ये पुरानी बातें क्यों दोहराअी जायं? सन् सत्तावनके पराक्रममें पराजित होनेके कारण जो वीर और सुगढ़ी हताश और निराश हो गये थे, अुन्हें आश्रय देनेवाला हिमालय ही है। यदि सुन्दर-शास्त्रकी दृष्टिसे देखना हो, प्राणिशास्त्रकी दृष्टिसे विचार करना हो, अैतिहासिक दृष्टिसे शोध करनी हो, भव्यताके दर्शन करने हों, धर्म-तत्त्वोंकी गांठ सुलझानेका प्रयत्न करना हो, तो हिमालय ही वह जगह है जहां सब प्रकारसे आपका समाधान हो सकता है; क्योंकि हिमालय आर्यावर्तके अेक-अेक युगके पुरुषार्थोंका साक्षी रहा है — यह सब जानता है।

यह कहना कठिन है कि हिमालय जानेकी पहली अिच्छा मेरे हृदयमें कब पैदा हुअी। शायद मेरे जन्मके साथ ही यह भी जन्मी होगी।

जैसा कि अूपर कह चुका हूं, बहुत संभव है कि वह वंश-परम्परागत राष्ट्रीय भावना रही हो। जब यात्राका विचार करते हैं, तो मनमें यह खयाल पैदा होता है कि हम अपना घर छोड़कर परदेश जा रहे हैं। पर जब-जब भी मैंने हिमालय जानेका विचार किया है, तब-तब मेरे मनमें यही भावना प्रबल रूपसे अुठी है कि मैं स्वदेश जानेवाला हूं, नहीं-नहीं, स्वगृह जानेवाला हूं, और अिस विचारने मेरे मनको हमेशा गुदगुदाया है। आज भी जब कोअी हिमालयकी बात छेड़ता है, तो मुझे अुतना ही आनन्द होता है, जितना ससुरालमें रहनेवाली बहूको मायकेकी बात सुनकर हुआ करता है। लड़की जब मायकेसे दूर जा पड़ती है, तो वह दिन-रात अपने मायकेको और मायकेवालोंको ही विसूरा करती है। अिस विसूरनेका नतीजा यह होता है कि मायकेका प्रत्यक्ष चित्र अेक ओर रह जाता है, और वह अपने मनमें अेक प्रेमचित्रका निर्माण कर लेती है। अुसके अपने लिअे यह प्रेमचित्र ही अेक यथार्थ वस्तु बन जाता है। विसूरनेका, चिन्तनका, गुण ही यह है कि दिल जिस चीजको जैसी देखना चाहता है, दिलकी भावना कुछ अैसी बन जाती है कि वह चीज वैसी ही मालूम होने लगती है। दुनियामें किसीको यथार्थ — यथातथ — ज्ञान होता हो तो भले हो; पर जिसे हम अनुभवका प्रत्यक्ष ज्ञान कहते हैं, अुस पर भी हमारी अिन्द्रियोंका रंग चढ़ा ही रहता है, वह निरा ज्ञान नहीं होता। प्रेमचित्रमें रंग अिन्द्रियोंका नहीं, हृदयका होता है, आदर्श भावनाओंका होता है। और, अिसी कारण वह चित्र हमारे जीको विशेष निकटका और विशेष रूपसे सच्चा प्रतीत होता है। तर्कवादी चाहे अिस चित्रको खोटा मानें, पर संसारका अनुभव और संसारका रहस्य सभी कुछ तर्ककी छलनीमें चाला नहीं जा सकता। तर्क सोचता है कि मैंने जो व्यवस्था बांध दी है, जो क्रम तय कर दिया है, दुनियाको वह मानना ही चाहिये; जो मेरे गले नहीं अुतरता वह सत्य हो ही नहीं सकता। अस्तु।

आगे हिमालयके जो शब्दचित्र मैं देनेवाला हूं, वे प्रेमचित्र ही होंगे। जिस वस्तुसे प्रेम हो जाता है, अुस वस्तुका प्रेम-रहित विचार हो ही नहीं सकता। अिसलिअे मुझसे प्रेमचित्र छोड़ दूसरी किसी चीजकी अपेक्षा कोअी रखे ही क्यों?

११

भीमताल

हिमालयके पांच विभाग माने गये हैं। काश्मीर, जालन्धर, गढ़वाल (अुत्तराखण्ड), कुमाअूं (कूर्माचल) और नेपाल। अुत्तराखण्ड परम पवित्र समझा जाता है। गंगोत्री, जमनोत्री, केदारनाथ, बदरीनारायण, पंचप्रयाग और पांच-केदारनाथ, अुत्तरकाशी, ज्योतिर्मठ तथा तुंगनाथ अित्यादि प्रख्यात तीर्थस्थान अिसी विभागमें हैं। सन्त-महन्त अिसी विभागको तपस्याके लिअे पसन्द करते थे। परन्तु कहा जाता है कि यात्राके मार्ग और साधन सुगम हो जानेसे आजकल यहां तीर्थयात्री बहुत जाते हैं। अिसलिअे अच्छे-अच्छे साधु प्रायः अुत्तराखण्डको छोड़कर चले गये हैं। वे ज्यादातर अप्रकट रूपसे कुमाअूंमें रहते हैं। कुमाअूं प्रान्त रमणीय और अुपजाअू है। अिसी प्रान्तमें स्वामी विवेकानन्दका मायावती मठ बना हुआ है।

मायावती अलमोड़ासे कोअी पचास मील दूर होगा। प्रवृत्तिमें डूबे हुअे हमारे-जैसे लोगोंको चौबीसों घण्टोंकी निवृत्ति मिले, तो अुसे भी हम पचा नहीं सकते। शायद अिसी अुद्देश्यसे स्वामी विवेकानन्दने मायावतीमें अेक छापाखाना चलाया, और वहांसे हिन्दुस्तानको जगानेके लिअे अथवा जागे हुअे हिन्दुस्तानका सन्देश दुनियाको सुनानेके लिअे, वे महासाग निकलनेवाले 'प्रबुद्ध भारत' नामक मासिक पत्रको मायावती ले गये। वहां वे आध्यात्मिक पाठशाला स्थापित करना चाहते थे। अलमोड़ा जानेके लिअे रेलसे काठगोदाम तक आना पड़ता है। वहांसे अलमोड़ा छत्तीस मील है।

बरेली जंक्शन तक यथासंभव भीड़ थी। बादमें भीड़ छंटने लगी। हल्द्वानी स्टेशन पर कुछ मुसाफिर अुतर गये। काठगोदाम स्टेशन 'टर्मिनस' है। यहां पहुंचते तक तो बहुत ही थोड़े आदमी रह गये थे। अिसलिअे कुछ सुदासी-सी मालूम होती थी। न जाने क्यों मुझे 'बरिलक ऑफ़ नर आन

मूर' नामक कविताकी सहसा याद आयी। मैंने कहा — "बाबा, स्वर्गारोहणके समय पाण्डवोंके दिलमें भी अिसी तरहके भाव अुठे होंगे। भीड़ तो पीछे रह गअी; और हम अकेले हिमालय पर चढ़ रहे हैं।" पाण्डव ही क्यों, हरअेक जीवके लिअे यही बात लागू है। स्नेहियोंका समूह और अिन्द्रिय-कलाप अेकके बाद अेक छोडते चले जाते हैं, और आखिर धर्म-कर्मको साथ लेकर ही मनुष्य यमघाट चढ़ता है।

परन्तु यह अुदासी क्षणजीवी थी। हम कोअी मील-डेढ़-मील ही गये होंगे कि हिमालयका असर मालूम होने लगा। पास ही रामगंगा बह रही थी। रामगंगाने कहा — "बच्चा, तू अपने दुनियावी विचारोंसे रुखसत ले ले। यहां अनगिनत पेड़ अुगते हैं, सूखते हैं, और सड़ जाते हैं। बहुतसे पत्थर बनते हैं, और फूट जाते हैं। पहाड़ियां ढह जाती हैं, और गांव घाटियोंमें समा जाते हैं। लेकिन यहां न कोअी हंसता है, न रोता है। यहां अिफरात है, अुड़ाअूपन है, बेफिक्री है। यहां जो पछतावा या चिन्ता करता है वह पापी है।"

रामगंगा अैसा अुपदेश न करती, तो भी मेरी अुदासी काफूर हो गअी होती। क्योंकि आसपासके पेड़ों पर वनस्पतियोंके असंख्य बालक खिल रहे थे। अुनकी सुगंध अुन्मादकारी थी, पर विलास-प्रेरक न थी। हम आगे बढ़े। पहाड़ चढ़ने लगे। ज्यों-ज्यों अूपर जाते त्यों-त्यों पहाड़की शोभा और प्रकृतिकी भव्यता बढ़ती ही जाती थी। छोटे बच्चे जब समुद्रके किनारे जाते हैं, तो चादीकी-सी सीपें देखकर सबकी सब सीपें जेबमें भर लेनेको अुनका जी ललचा अुठता है। लेकिन अेकाध घंटा घूमनेके बाद असंख्य सीपें देखकर वे अुबा जाते हैं, और जेबोंमें भरी हुअी सारी सीपें निकालकर फेंक देते हैं। बहुत हुआ तो यादगारके लिअे अेकाध सीप रख लेते हैं। पांच मीलकी चढ़ाअीके बाद अेक बहुत ही सुन्दर पहाड़ आया। अुसके टूटे हुअे अंचलमें रंग-बिरंगे पत्थरोंके अैसे मजेदार स्तर थे, और हमारा रास्ता अितना टेढ़ा-मेढ़ा था (जिससे पहाड़के सभी पहलुओंकी सुन्दरता हम देख सकते थे) कि जी चाहने लगा — कहीं अिस पहाड़को महाराष्ट्रमें ले जा सकता तो कितना अच्छा होता? दूसरे ही क्षण मनमें विचार आया, क्या कोअी राजा अपने ही महलकी सुन्दर

लगनेवाली कोअी चीज अेक कमरेसे दूसरे कमरेमें कभी ले जाता है? सभी कमरे राजाके ही हैं। और जो चीज जहां नियोजित है, वहीं यथायोग्य है। यदि महाराष्ट्रके लोग अिस सुन्दरताका अनुभव करना चाहें, तो अुन्हें यहां आना चाहिये। हम लोग पैसा कमानेके लिअे या किसी तरहके दूसरे सांसारिक हेतुसे थोड़ा-बहुत स्थलान्तर करते हैं। सृष्टिकी शोभा देखनेके लिअे अथवा देव-दर्शनोंके लिअे बाहर नहीं निकलते। हमें यह स्वच्छन्दता जैसा मालूम होता है। क्या देव-दर्शन करना हमारा कर्तव्य नहीं है? हमारे जिन ऋषि-मुनियोंने चार धामोंकी यात्राको पुण्यकी परिसीमा कहा, वे सच्चे देशभक्त थे। आज हम लोगोंमें देशाभिमान है, पर देशभक्ति बहुत कम है। अुन्मादमें मैंने कहा — "पहाड़ भैया! तुम यहीं सुखसे रहो! मैं तुम्हें खिसकाअूंगा नहीं, बल्कि अपने महाराष्ट्रीय भाअियोंको ही यहां भेजूंगा। वे जब आयें तो तुम अपने अमृत-जलसे और सुगन्धित पवनसे अुनका असी तरह सत्कार करना! यह लो, मेरे प्रणाम!"

हिमालयके पहाड़ बहुत ही विचित्र हैं। सामने अेक गगनस्पर्शी पर्वत दिखाअी देता है, और अैसा जान पड़ता है कि अुसके अूपर पहुंचनेके बाद वहांसे नीचे अुतरना पड़ेगा। लगभग अूपर पहुंचने तक यही धारणा रहती है। लेकिन अूपर पहुंचने ही क्या देखते हैं? हम अपनेको दूसरे अेक प्रचण्ड पहाड़की तलहटीमें पाते हैं। हरे राम! अब अिस पहाड़ पर भी चढ़ना होगा। अगर ज्यादा थक नहीं गये हैं, तो दूसरे ही क्षण विचार आता है: 'खैर, अधिक अूंचे जायेंगे तो अधिक दूर तक देख सकेंगे; प्रकृतिकी विशालता दृष्टिगोचर होगी, और अगर आज ही हमारे भाग्य खुले तो शायद बर्फके दर्शन भी हो जायं!' माथे पर हिमका किरीट धारण करके वानप्रस्थ दशामें ध्यान करने बैठे हुअे नगाधिराजके दर्शन करनेकी लालसा अब दुर्निवार हो गयी थी। लेकिन अुस दिन बर्फके दर्शन करना हमारे भाग्यमें लिखा न था। ज्यों-त्यों अभी दूसरे पहाड़ पर चढ़ ही थे कि तीसरा हाजिर! अब तो हमारा धैर्य छूट गया। क्या हरअेक पहाड़ अिस स्वर्गारोहणकी अेक-अेक सीढ़ी बनेगा? धूप तपने लगी; हम थक गये, और प्रकृतिने रौद्राकार धारण किया। आखिर हम भीमताल आ पहुंचे।

मैंने सचमुचके या कल्पनाके सुन्दर-सुन्दर सरोवर देखे ही न हों, सो बात नहीं। सर वॉल्टर स्कॉटकी 'सरोविहारिणी' (लेडी ऑफ दि लेक)में तो अेक सुन्दर सरोवरका हृदयस्पर्शी शब्दचित्र देखा था। परन्तु भीमतालका प्रत्यक्ष दर्शन कुछ और ही था। अिस प्रदेशका प्राचीन नाम 'षष्टिखात' है; क्योंकि आसपास छोटे-बड़े साठ सरोवर हैं। अुनमें भीमताल और नैनीताल ये दो ही सुविख्यात हैं। और अिन दोमें भी नैनीतालकी छवि न्यारी ही है। नैनीताल भीमतालसे कोअी बारह-पंद्रह मील दूर है। अब वह अेक यूरोपियन शहर बन गया है। अुसका वर्णन यथास्थान आयेगा। भीमताल अेक बहुत अूंचे पर्वतकी समतल भूमि पर तीन पहाड़ोंके बीच बने हुअे अेक गड्ढेके कारण बना है। अिसलिअे वह बहुत गहरा है। पानी स्फटिककी तरह निर्मल है। सरोवरका आकार अेक आड़े-टेढ़े त्रिकोणके समान है। और अिस सरोवरके सौन्दर्यकी पूर्ति करनेके लिअे अिसके बीचोंबीच प्रकृतिने अेक छोटा-सा द्वीप बना दिया है। वहां पहुंचते ही हमें अितनी ठण्डी हवा लगी कि अेक क्षणमें हमारा सारा ताप और थकान दोनों अुतर गये। सरोवरका किनारा कुछ अूबड़-खाबड़-सा था। किनारे पर जहां-तहां पत्थर बिछे हुअे थे; और अुसे सीधे पार करके पानी तक पहुंचना आसान न था। फिर भी किसकी हिम्मत थी कि वह अितना सुन्दर पानी छोड़ दे? मैं साहस करके अुतरा और पानीमें जा गिरा। अररर! यह पानी है या हजारों बिच्छुओंका समूह? मुझे अैसा मालूम हुआ मानो मेरे दुबले-पतले शरीरकी परिधि भी पानीकी ठण्डकसे सिकुड़कर दो-तीन अिंच कम हो गयी हो! जान बचानेके लिअे मैंने जोरसे हाथ-पैर मारे। बादके आनन्दका मैं क्या वर्णन करूं? किनारे पर बैठे हुअे बाबा कल्लाये न होते, तो मुझे वापस किनारे पर आनेकी बात सूझती भी नहीं। मैं सोचने लगा — 'क्या बाणभट्ट द्वारा वर्णित अच्छोद सरोवर अैसा ही रहा होगा? मैं कादम्बरीमय हो गया। सामनेवाले द्वीपके पीछेसे नौका-विहार करती हुअी कादम्बरी या महाश्वेता अभी निकलेगी — अिस तरहकी कल्पना-तरंगमें मैं मग्न ही था कि अितनेमें सचमुच पीछेसे अेक श्वेत नौका आयी। लेकिन हाय रे हाय! गया — मेरा सारा काव्य काफूर हो गया! बोटमें तो हाथमें मछली पकड़नेकी

मैंने सचमुचके या कल्पनाके सुन्दर-सुन्दर सरोवर देखे ही न हों, सो बात नहीं। सर वॉल्टर स्कॉटकी 'सरोविहारिणी' (लेडी ऑफ दि लेक)में तो अेक सुन्दर सरोवरका हृदयस्पर्शी शब्दचित्र देखा था। परन्तु भीमतालका प्रत्यक्ष दर्शन कुछ और ही था। अिस प्रदेशका प्राचीन नाम 'षष्टिखात' है; क्योंकि आसपास छोटे-बड़े साठ सरोवर हैं। अुनमें भीमताल और नैनीताल ये दो ही सुविख्यात हैं। और अिन दोमें भी नैनीतालकी छबि न्यारी ही है। नैनीताल भीमतालसे कोअी बारह-पंद्रह मील दूर है। अब वह अेक यूरोपियन शहर बन गया है। अुसका वर्णन यथास्थान आयेगा। भीमताल अेक बहुत अूंचे पर्वतकी समतल भूमि पर तीन पहाड़ोंके बीच बने हुअे अेक गड़हेके कारण बना है। अिसलिअे वह बहुत गहरा है। पानी स्फटिककी तरह निर्मल है। सरोवरका आकार अेक आड़े-टेढ़े त्रिकोणके समान है। और अिस सरोवरके सौन्दर्यकी पूर्ति करनेके लिअे अिसके बीचोंबीच प्रकृतिने अेक छोटा-सा द्वीप बना दिया है। वहां पहुंचते ही हमें अितनी ठण्डी हवा लगी कि अेक क्षणमें हमारा सारा ताप और थकान दोनों अुतर गये। सरोवरका किनारा कुछ अूबड़-खाबड़-सा था। किनारे पर जहां-तहां पत्थर बिछे हुअे थे; और अुसे सीधे पार करके पानी तक पहुंचना आसान न था। फिर भी किसकी हिम्मत थी कि वह अितना सुन्दर पानी छोड़ दे? मैं साहस करके अुतरा और पानीमें जा गिरा। अररर! यह पानी है या हजारों बिच्छुओंका समूह? मुझे अैसा मालूम हुआ मानो मेरे दुबले-पतले शरीरकी परिधि भी पानीकी ठण्डकसे सिकुड़कर दो-तीन अिंच कम हो गयी हो! जान बचानेके लिअे मैंने जोरसे हाथ-पैर मारे। बादके आनन्दका मैं क्या वर्णन करूं? किनारे पर बैठे हुअे बाबा शल्लाये न होते, तो मुझे वापस किनारे पर आनेकी बात सूझती भी नहीं। मैं सोचने लगा — 'क्या बाणभट्ट द्वारा वर्णित अच्छोद सरोवर अैसा ही रहा होगा? मैं कादम्बरीमय हो गया। सामनेवाले द्वीपके पीछेसे नौका-विहार करती हुअी कादम्बरी या महाश्वेता अभी निकलेगी — अिस तरहकी कल्पना-तरंगमें मैं मग्न ही था कि अितनेमें सचमुच पीछेसे अेक श्वेत नौका आयी। लेकिन हाय रे हाय! गया — मेरा सारा काव्य काफूर हो गया! बोटमें तो हाथमें मछली पकड़नेकी

बन्सी लिये हुअे दो सोल्जर बैठे थे। अगर मैं वाल्मीकि होता, तो मुन्दर झख मारनेवाले (झख—झष—मछली — रामचरितमानस) अरसिक गोरोंको शाप देता।

जब काव्य-गगनसे अुतरा, तो पता चला कि पेटमें चूहे अुछल-कूद मचा रहे हैं। पेटभर खाया, आंखभर सो लिया, हाथ-पैर-धरकर थकावट अुतारी, रामसिंहको जगाया, सामान अुसके सिर पर चढ़ाया और रामगढ़के लिअे प्रस्थान किया। अिस प्रकार आधे दिनमें हिमालयकी चौदह मीलकी यात्रा पूरी हुअी।

१२

हिमालयकी पहली सिखावन

भीमतालसे आगे चले। रास्ता समतल था। दूर बायीं तरफ अेक कतारमें रावटियां दिखाअी देती थीं। दरियाफ्त करने पर मालूम हुआ कि वहां बीमार सिपाही रहते हैं। आखिर पहाड़की चोटी पर पहुंचे। अपार आनन्द हुआ; और चिर-परिचित समतल भूमि पाकर हम तेजीसे चलने लगे।

परन्तु हिमालयने तो मानो अेक ही दिनमें सारे सबक सिखानेकी ठान ली थी। अुसने फिर हमारे अभिमान पर आघात किया। अरेबियन नाअिट्समें अथवा पंचतंत्रमें जिस प्रकार अेक कहानीमें से दूसरी नयी कहानी निकल पड़ती है, अुसी प्रकार अिस पर्वत-शिखर पर चौड़ा होकर बैठा हुआ अेक नया पहाड़ आ धमका। चार मजदूरोंके कन्धों पर आरामकुर्सीमें बैठे हुअे किसी अमीरके जैसी गम्भीर मुस्कराते और भारी महत्ताके परिपूर्ण भानका परिचय देनेवाली स्वाभाविकतासे यह पर्वत विराजमान था। अगर यह खड़ा होता तो? तो मेरे कपालमें आसमानका चंदोवा फट ही जाता।

हमें अिस बड़े भारी पहाड़ पर चढ़ना था। अिसलिअे हमने अपने पासके सामान-असबाबका सारा बोझ मजदूरोंको दे दिया, अभिमानका बोझ तलहटीमें ही छोड़ दिया, और बालकोंकी तरह बिलकुल हल्के होकर हम चढ़ने लगे। और डेढ़ घंटा तक चढ़ते ही चले गये।

रास्तेमें अेक तरहके फूल खिल रहे थे। अुनका आकार बारहमासीके फूलों-जैसा था, और रंग खूब अुबाले हुअे दूधकी मलाअीकी तरह कुछ पीला। सुगन्धकी मधुरताकी तो बात ही क्या? सुगन्ध गुलाबसे मिलती-जुलती; पर गुलाबके समान अुग्र नहीं। अिन लज्जा-विनय-सम्पन्न फूलोंको देखकर मैं प्रसन्न हुआ। मेरा अध्वखेद नष्ट हो गया। अैसे सुन्दर और आतिथ्यशील फूलोंका नाम जाने बिना मुझसे कैसे रहा जाता? लेकिन रास्तेमें कोअी आदमी ही न मिलता था। मजदूर तो अपने मजदूर-धर्मके प्रति वफादार रहकर पिछड़ गया था। अुसकी बाट जोहनेके लिअे समय न था। और नाम जाने बिना आगे बढ़नेकी अिच्छा न थी। अितनेमें पहाड़की अेक पगडण्डी परसे कोअी पहाड़ी अुतरता हुआ दिखाअी दिया। हिमालयकी पगडण्डियां अितनी विकट हैं कि आदमीकी कमर ही तोड़ दें। अुस पहाड़ीसे मैंने हिन्दीमें — या सच पूछिये तो अुस समय जिसे मैं हिन्दी समझता था अुस भाषामें — अुन फूलोंके विषयमें कअी प्रश्न पूछे। अुसने पहाड़ी हिन्दीमें जवाब दिया। परन्तु मुझे विश्वास नहीं कि वह मेरे प्रश्नोंको समझ सका होगा। मैं तो अुसके जवाबका अेक ब्रह्माक्षर भी न समझ सका। किन्तु अिस सम्भाषणसे (मैं नहीं जानता, अिसे सम्भाषण कह सकते हैं या नहीं) फूलका नाम तो मुझे मिल ही गया। असीरियाकी शरशीर्ष लिपिमें लिखे हुअे शिलालेख पढ़कर कोअी विद्वान अुनका अर्थ लगानेके लिअे जितना प्रयास कर सकता है, अुतने ही प्रयाससे मैंने पता लगाया कि फूलका नाम 'कूजा' था। मालूम होता है, पहाड़ी भाषामें यह शब्द बहुत सुललित समझा जाता होगा; लेकिन खुद मुझे अुस नामने बिलकुल मोहित नहीं किया!

दूर, बहुत दूर, अब क्षितिज दिखाअी देने लगा। वहां बहुत घने बादल थे। बादलों पर संगमरमरके पर्वत-शिखर-जैसा कुछ दिखाअी देता था। तलहटीका हिस्सा बादलोंसे ढंक जानेके कारण अैसा जान पड़ता था, मानो मैनाक पर्वतका अेक बच्चा आकाशमें अुड़ रहा हो। दूसरे दिन मुझे पता चला कि वह पवित्र नन्दादेवीका शिखर था।

कुछ अुतरकर हम रामगढ़ आ पहुंचे। वहां अेक छोटी-सी धर्मशाला थी। अथवा धर्मशाला कैसी? पांच फुट अूंचे कमरोंकी वह अेक अैसी

कतार थी, जिनमें अेक-अेक छोटे दरवाजेके सिवा किसी जगह छिद्र नामकी कोअी चीज नजर नहीं आती थी! गधे भी अुनमें छोड़नेको राजी न होंगे। बनियेसे दाल, चावल और आटा खरीद लिये। बनियेने दो-तीन बरतन भी दिये। हमने सोचा — 'कैसा भला बनिया है; रसोअीके बरतन भी देता है!' बादमें मालूम हुआ कि पहाड़में तो यह दस्तूर ही है। आटा-चावलके दामोंमें बनिया बरतनोंका किराया भी लगा लेता है। फिर भी यहांका यह रिवाज बेशक अच्छा है। ज्यों-त्यों पकाकर थोड़ा-बहुत खाया, क्योंकि हमारी रसोअी ठीकसे पकी नहीं थी।

धर्मशालाकी सूरत देखकर हमने बाहर खुलेमें सोनेका विचार किया और बिछौना बिछाया। अितनेमें हिमालयने कहा — 'ठो, क्या मजा चीखो!' अितनी सख्त ठंड लगने लगी कि मंत्रमुग्ध सांप जिस प्रकार अपने-आप पिटारीमें घुस जाता है, अुसी प्रकार हम भी बिस्तर लेकर अब खूबसूरत मालूम होनेवाली अुस गरम कोठरीमें जा घुसे। हमें यह विश्वास हो गया कि कमरेमें अेक भी खिड़की न रखकर धर्मशाला बनानेवाले शिल्पीने यथायुक्त भी अधिक कौशल्यसे काम लिया है।

सारा दिन चलते ही रहे थे। पहली ही बार अितनी लम्बी बीस मीलकी यात्रा की थी। रातको पेटभर खाया भी न था। तिस पर ठंड जान चूस रही थी। अिसलिअे बहुत मनाने पर भी नींद तो पास फटकी तक नहीं। जब निद्रादेवी न आअीं, तो अुनकी सखी कैरिव चिन्ता और कल्पना हाजिर हो गअीं। मैं सोचमें पड़ा। घरबार छोड़कर, समाजकी सेवासे मुंह मोड़कर, पुस्तकें पढ़ना भूलकर, अखबारोंमें लेख लिखनेसे विरत होकर, मैं किसलिअे यहां आया? अीश्वरने मुझे जिस स्थानमें नियुक्त किया अुस स्वाभाविक स्थानको छोड़कर जिस अनजाने प्रदेशमें मैं

शिकायत करता है कि मेरा यह लड़का मेरा कहना नहीं मानता; और लोग पशुओंसे अुनकी ताकतसे कहीं ज्यादा काम लेते है। निस्सन्देह, पहाड़ोंमें व्यापार नहीं बढ़ा है, रेल नहीं पहुंची है, वस्ती घनी नही है, और अिन कारणोंसे समाजमें जो सड़ांध पैठती है, वह यहा पैठी नहीं है।

अिस पराये देशमें न कोओी मेरी भाषा जानता है, न कोओी मुझे पहचानता है; न कोओी मेरा सगा-सम्बन्धी यहां है। और, जिस वैराग्यके लिअे मैं यहां आया अुसका यहां नाम-निशान नही है। अिस खयालसे दिल परेशान होने लगा। अिसलिअे वाहर कड़ाकेका जाड़ा होते हुअे भी मैं अेक कम्बल ओढ़े वाहर निकला। मैंने निश्चय किया था कि हिमालयकी अपनी यात्रामें मैं सुओीसे सिला हुआ कोओी कपड़ा न पहनूंगा। दिनमें तो धोती, चादर और कान ढंकनेके लिअे मफलर भर अिस्तेमाल करता था। रातको बिछानेके लिअे अेक चटाओी और कम्बल रखता था, और ओढ़नेके लिअे अेक दोहर तथा बैंगनी रंगका अेक मुटका। जब वाहर निकला, तो आकाश निरभ्र था। नक्षत्र अद्‌भुत कान्तिसे चमक रहे थे। हिमालय आनेसे पहले मेरे अेक रसिक मित्रने नवसारीमें तारोंसे मेरी जान-पहचान करा दी थी। तारे मेरे दोस्त हो गये थे। पूर्णिमाके चन्द्रसे भी न डरनेवाले सभी तारोंको मैं पहचानता था। मैंने अुनकी तरफ देखा। अुन्होंने कहा —
"भाओी, घबराते क्यों हो? यह परदेश कैसा? क्या यहा तुम्हारा अपना कोओी सगा-सम्बन्धी नही? देखो, हम अितने सारे तुम्हारे दोस्त यहां ज्यों-के-त्यों मौजूद है। दो घड़ी गुस्ताओगे, तो दूसरे भी कओी अुस पहाड़की ओटसे जल्दी ही अूपर आयेंगे। क्या तुम हमें भूल गये हो? क्या अपने और हमारे सिरजनहारको भूल गये हो? कहां गया तुम्हारा प्रणवमंत्र? कहा गया तुम्हारा गीतापाठ?

मने अेव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।
न कश्चित् कस्यचिन्मित्रं न कश्चित् कस्यचिद्रिपुः।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुः आत्मैव रिपुरात्मनः।

यह सब तुम्हीं कहते थे न? आज ही सवेरे अुस नदीने तुमसे क्या कहा था? अिस पहाड़को देखकर तुम्हारे दिलमें कौनसे विचार आये

अर्थात् — हे करुणासागर राघव रघुराज, विषयोंने मेरे प्राण भ्रांत न बनाअिये। . . . अरे अिस प्रपंचमें फंसकर जगह-जगह श्रमित और भ्रमित होकर आयु क्षीण होती जाती है। हे दयाघन राम . . . ।

भजनकी धुन सवार हो गअी। मैं अुच्च स्वरमें ललकार रहा था। आगे यह चरण आया:

सच्चित्सुख तो तू परब्रह्म केवळ,
सच्चित्सुख तो तूं पर ब्रह्म केवळ.

सामनेवाले पहाड़ने अेकाअेक गर्जना की:

सच्चित्सुख तो तूं परब्रह्म केवळ.

हिमालयकी यह मेघ-गम्भीर गर्जना मुझे तो अशरीरिणी वाणी प्रतीत हुअी। सचमुच ही मैं सच्चित्सुखात्मक परब्रह्म हूं। मैं अिसे भूलता हूं, अिसीलिअे पामर बन जाता हूं। जरा देखो तो यह धीर-गम्भीर हिमालय किस प्रकार सच्चित्सुखकी समाधिका अुपभोग कर रहा है! अिस बरफको देखो। गरमी और जाड़ा दोनों अिसके लिअे बराबर हैं! देखो, अिस विशाल आकाशको देखो। कितना शान्त और अखिन्न है! क्या मैं अिससे भिन्न हूं?

मुझ पर अद्वैतकी मस्ती सवार हो गअी। अिसलिअे पीपुड़ा कब आ गया, अिसका मुझे भान भी न रहा। पीपुड़ाके पानीकी बड़ी तारीफ सुनी जाती है। डाक्टरोंकी सलाहसे पानी खास तौर पर मंगाकर पीते हैं। पीपुड़ामें हमने भोजन बनाकर खाया, थोड़ा आराम किया और आगे बढ़े। फिर अुतार। मेरे घुटनोंमें चमकें आने लगीं और दर्द होने लगा। अिसलिअे फिर यह वृत्ति जाग्रत हुअी कि मैं देहधारी हूं। धीरे-धीरे मैं फिर आसपासकी सुन्दरता निहारने लगा।

हिमालयकी खेती देखने लायक होती है। जहां बड़ी और चौड़ी पहाड़ी होती है, वहां चोटीसे तलहटी तक दो-दो, चार-चार हाथ चौड़ी सीढ़ियोंके समान क्यारियां बनाते हैं और अुनमें पानी रोककर अनाज बोते हैं। अिन खेतोंका दृश्य नदीके पक्के घाटके समान दीख पड़ता है।

जहां अुतार खतम हुआ, वहीं अेक झूलता पुल आया। अुस पुलको लोधियाका पुल कहते हैं। अुसके नीचेके पत्थर देखने लायक हैं। नदीके

प्रवाहसे घिसे हुअे पत्थरोंका आकार बहुत सुहावना दिखाअी देता था। जहां पानीके भंवर पड़ते हैं वहा तलेके खुले पत्थर भी गोल-गोल चक्कर काटकर तलेके पत्थरोंमें जो गहरे-गहरे गड्ढे बनाते है, अुनका दृश्य मनोवेधक होता है।

अिस पुलके नीचे मैंने अेक सांप देखा। यहां अिसका अुल्लेख अिसलिअे कर रहा हूं कि हिमालयके घने जंगलोंमें और दूसरे भिन्न-भिन्न प्रदेशोंमें मैंने जो दो-तीन हजार मीलकी यात्रा की, अुसमें सिर्फ दो सांप देखनेमें आये। अेक यहां और दूसरा गंगोत्रीके पास। अब फिर चढ़ाअी शुरू हुअी। दूर पर अेक पहाड़ी शहर दिखाअी देने लगा। यह अलमोड़ा था या मुक्तेश्वर, अिसका मैं निश्चय न कर सका। सांझ होने लगी। और आखिर हम अलमोड़ाके पास पहुंचने लगे। वहां अेक चुंगीघर था। वहीं हमने अेक बैलगाड़ीकी लीक देखी। हिमालयमें बैलगाड़ीकी लीक सभ्यताकी परिसीमा समझी जाती है। हमारे यहांकी किसी राजधानीमें संगमरमरका कोअी रास्ता हो, तो अुसके विषयमें लोग जिस अुमंग और अदबके साथ बोलते हैं, अुसी अुमंग और अदबसे पहाड़ी लोग अिस 'कॉर्ट रोड' के विषयमें बोलते हैं। बगलमें ही मुसलमानोंका कब्रस्तान था। पर्वतकी वन्य शोभामें ये सफेद-सफेद कब्रें भोंडी नहीं लगती थीं। अक्सर मुसलमान कुदरतकी शोभाको बिगाड़ते नहीं। सांझके समय ये कब्रें अैसी लगती थीं, मानो चरागाहसे लौटी हुअी गायें आरामसे बैठी-बैठी जुगाली कर रही हों। ३७ मीलकी यात्रा कुशलपूर्वक की; लेकिन आखिर हम रास्ता भूल गये। हमने अलमोड़ाकी आधी परिक्रमा की। रास्ता छोड़कर लोगोंके आगनोंमें से होते हुअे और अनेक घूरे खूदते हुअे अन्तमें हम सात बजे बाजारमें पहुंचे। बाजारका रास्ता पत्थरोंसे पटा हुआ है। यहा 'हिल बॉअिज स्कूल' का रास्ता पूछते-पूछते हम मेरे अेक मित्रके मकान पर पहुंचे। वे घरमें न थे। कहीं टहलने गये होंगे। हरनंदन नामका अेक लड़का अन्दरसे बाहर आया। अुसने हमारा स्वागत किया और कहा — "आअिये, भीतर आअिये; अिस खटिया पर विराजिये। मैं स्वामीजीका शिष्य हूं। वे बाहर गये हैं। अभी आते ही होंगे। कह रहे थे कि काकाजी आनेवाले हैं। आप दोनोंमें से काकाजी

कौन है ?" थोड़ी देरके बाद स्वामी आये। बड़ौदेमें स्वामीको जैसा देखा था वैसे अब वे न थे। लम्बी-लम्बी दाढ़ी, लम्बी-सी चोटी, कुछ पर अेक फीके गेरुअे रंगका मफलर और लम्बी सफेद कफनीवाली मूर्ति अेक लम्बी नोकदार लकड़ी हाथमें लिये मेरे सामने आकर खड़ी हुअी। प्रेमवश हम अेक-दूसरेसे लिपट गये। बाबा प्रेमके अुद्रेकसे रोने लगे। मैंने देखा कि स्वामी मराठीमें आसानीसे बोल नहीं सकते थे। हरअेक वाक्यके साथ बरबस आनेवाले हिन्दी शब्दोंको हटानेकी अुन्हें कोशिश करनी पड़ती थी।

रातको हमने क्या खाया, कितनी रात तक बातचीत करते बैठे रहे, और कब आंख लगी, अिसका मुझे बिलकुल स्मरण नहीं है। सिर्फ अितना याद है कि अुस वक्त स्वामी पुरश्चरण करते थे, अिसलिअे दूध पर ही रहते थे। कुछ खाते नहीं थे। यहां तक कि पानी भी नहीं पीते थे। नींद अैसी आअी, मानो निर्विकल्प समाधि हो!

१३

अलमोड़ा

अलमोड़ा हिमालयकी अेक शाखा पर बसाया हुआ मनुष्योंका घोंसला है। अलमोड़ाकी हवा साफ और तर मशहूर है। दूर-दूरके क्षयरोगी अंग्रेज अक्तूबरके बीच यहां आकर रहते हैं। यहां के चीड़के शानदार और अूंचे-अूंचे पेड़ोंकी राह सन्-सन्-सन् बहनेवाली हवाका सेवन करते हैं, और रानी सोता नामके अेक झरनेका पानी पीते हैं। अिस मौसिममें चाहे जिस रास्तेसे टहलने निकलिये, अिन मरीजोंका अेकाध समूह जीनेकी अिच्छासे बड़ी मेहनतके साथ टहलता हुआ और फेफड़ोंमें प्राण भरता हुआ जरूर नजर आयेगा। [illegible] अिस निर्मल हवा और आसपासकी सात्त्विकताकी प्रकृतिके कोमल अन्तर की स्वच्छता और पहाड़ोंके भेद-भाव जान पड़ता था। यह शहर त्रिशूल और कुमाअूं पहाड़ोंका सदर मुकाम है। यहां ब्रिटिश अदालत है, छावनी है, [illegible]

द्वारा चलाया जानेवाला अेक कॉलेज भी है। ये लोग यहां अपना अेक खासा अुपनिवेश-सा बनाकर रहते हैं। यहांसे ३७ मील पर नैनीताल नामकी अेक गन्धर्व-नगरी है। अिसलिये अलमोड़ा गोरोंके आक्रमणसे बच गया है।

दूसरे दिन सवेरे अुठकर हम घूमने गये। गरमियोंके दिन थे, फिर भी हमारे यहांके शीतकालसे भी वहांकी ठंड अधिक थी। आसपास हरअेक घाटीमें सफेद-सफेद बादल आलसियोंकी तरह सोये हुअे थे। अूपर आकाश निरभ्र था। अुत्तरकी तरफ नन्दादेवीका शिखर सूर्यकी तरुण किरणोंमें सुवर्ण-मन्दिरकी तरह जगमगा रहा था। जहां अब तक सूर्य-किरणें नहीं पहुंच पायी थीं, वहांकी अरुण-सदृश रक्तिमा अुषाको भी लजाती थी। हिमालयके घरमें शिखरोंका दारिद्र्य नहीं है। तो भी, नन्दादेवीकी सुन्दरता अितनी अधिक है कि अैसा मालूम होता है, मानो हिमालयको भी अुस पर गर्व हो। और अिसीलिअे अिस शिखरकी प्रतिष्ठाकी रक्षाके लिअे अेक अनुचरकी तरह नन्दाकोटाका शिखर अुसकी सेवामें अुपस्थित है। नन्दादेवीका वर्णन मैं क्या करूं? पूर्वमन्वन्तरके ऋषि मार्कंडेयने अिस देवीका जो वर्णन किया है अुसीको यहां दे दूं, तो क्या वह बस न होगा?

कनकोत्तमकान्तिस्सा सुकान्तिकनकाम्बरा ।
देवी कनकवर्णाभा कनकोत्तमभूषणा ॥

अिस देवीकी अुपासनामें ऋषिको अितनी श्रद्धा है कि वह कहता है:

नन्दा भगवती नाम या भविष्यति नन्दजा ।
सा स्तुता पूजिता ध्याता वशीकुर्याज्जगत्त्रयम् ॥

हमने नन्दादेवीकी दिशामें ही टहलने जाना 'दुरुस्त' समझा। हिमालयमें जगह-जगह देवियोंके निवासस्थान हैं। स्याहीदेवी, धूरादेवी, शीतलादेवी और पातालदेवी, ये चार अलमोड़ाकी चार दिशाओंकी रक्षा करती हैं। हिन्दू समाजके नेताओंकी दृष्टि कुछ अद्‌भुत है। जीवनके हरअेक अंगके साथ ये किसी-न-किसी तरह धर्मका सम्बन्ध जोड़ देते हैं। अगर अलमोड़ा शहरको स्वाधीन रखना हो, तो आसपासके ये चार स्थान अलमोड़ा-वासियोंके हाथमें रहने चाहियें। यह बात फौजी दृष्टिसे देखने-

वालेके ध्यानमें आसानीसे आ सकती है। अब यही बात अिन पर्वतोंने लोगोंके सामने किस प्रकार पेश की है, सो देखिये। भक्ति और मुक्ति-दायिनी ये चार देवियां चार कोनोंमें विराजमान हैं। अिनके मन्दिरोंकी रक्षा करो और अिन स्थानोंको पवित्र रखो तो —

सैषा प्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये।

मुक्ति यानी आजादी।

और अिस ऋषि-वचनका अनुभव लोगोंको हर जमानेमें हुआ है। शत्रुकी चढ़ाअी होते ही सब मर्द जवान घरसे बाहर निकलकर अिन चार मन्दिरोंमें अिकट्ठा होते थे। और जब तक ये चार स्थान अुनके हाथमें हों, तब तक शत्रुकी क्या ताब कि वह अलमोड़ेके चीड़ या देवदारके सींकड़ी थालको भी बाधा कर सके?

हम अल्मोड़ेके रास्ते चीड़का जंगल देखने गये। बीचमें अेक छोटीसी पहाड़ी पर जेल दिखाअी दिया। स्वामीने मुझसे कहा — 'बंगालके सुप्रसिद्ध नेता अश्विनीकुमार दत्त अिसी जेलमें रखे गये थे।' चीड़का जंगल पार करके आखिर हम बल्ढोटी नामक पर्वत पर पहुंचे। किसी समय अंग्रेज सरकारने अिसी जगहको शिमला बनानेका विचार किया था। जब स्वामी विवेकानन्द अमेरिकासे लौटे, तो अुन्होंने अिस जगह अद्वैताश्रमकी स्थापना करनेका निश्चय किया था। लेकिन सुनते हैं कि जिस दिन अुन्होंने सरकारसे अुस जगहकी मांग की, अुसी दिन वहांके कमिश्नरने वह स्थान पादरियोंको दे दिया। यहां अीसाअी बने हुअे पहाड़ी लोगोंकी बस्ती है। हरदेवने कहा — "बाबाजी, देखिये अिन पादरियोंकी चालाकी! ये जब यहांके लोगोंको अीसाअी बना लेते हैं, तो अुन्हें दूसरे प्रान्तोंमें ले जाते हैं, और दूसरे प्रान्तोंसे अीसाअी बनाये हुअे लोगोंको यहां लाकर रखते हैं, ताकि समाजके साथ अुनका सम्बन्ध टूट जाय और लोगोंमें भी अिन पादरियोंके खिलाफ द्वेष पैदा न हो। हमारे प्रान्तके कितने लोग अिस तरह अीसाअी बना दिये गये हैं, अिसका कोअी पता नहीं। दूसरे प्रान्तके अनेक लोगोंको अीसाअी बने देखकर अुस प्रान्तके लिअे भी हमारे दिलमें नफरत पैदा होती है।" हरदेवकी यह मार्मिक आलोचना सुनकर मुझे बहुत मजा आया। वहांसे हम लौटे

पातालदेवीकी तरफ अुतरे। साढ़े सातका वक्त था। और, जब हम अुतर रहे थे, तब घाटीमें अूघते हुअे बादल स्कूली लड़कोंकी तरह आंखें मलते हुअे अुत्तरके हिम-प्रदेशकी पाठशालाकी ओर जाने लगे थे। पातालदेवीका स्थान साधुओंके रहनेके लिअे विशेषरूपसे अनुकूल है। वहां खूब अेकान्त है। पानीका सुन्दर झरना है, और कलेजेको ठिठुरा देनेवाले पहाड़ी झंझावातसे यह स्थान सुरक्षित है। यहीं पहाड़के अिस तरफ अेक अेकाकी वृक्ष है, और वह अितना बड़ा है कि दूर-दूरके पहाड़ों परसे दिखाओ देता है। सिंहगढ़ पर तानाजीकी घाटीका जो महत्त्व है, वही यहां पातालदेवीके अिस स्थानका है। पातालदेवीसे आगे चढ़ते-चढ़ाते हम अपने डेरे पर लौटे। मुझे भूख तो अैसी कड़ाकेकी लगी थी कि अगर मैं मुलायम कंकर बीनकर खाता तो वे भी हजम हो जाते, अिसमें मुझे कोओ शक नहीं।

घर पर नेपाली भिस्तीने पानी तैयार रखा था। अुससे हम नहाये। सारी थकान अुतर गयी, और शरीरमें फिर दस मील चल सकने लायक अुत्साह आ गया। हमने अपना नित्यपाठ समाप्त किया। अितनेमें हरख-देव खाना ले आया। अुसमें 'ओगल' नामके अेक जंगली बीजके आटेका हलुवा भी था। दोपहरको हम 'हिल बॉअिज स्कूल'के संचालक श्री हरिराम पांडे वकीलसे मिलने गये। हरिराम पांडे अेक सात्त्विक और संस्कारी सज्जन हैं। साधारण शिष्टाचारी प्रश्नोत्तरके बाद अुन्होंने मुझसे यह सलाह पूछी कि 'हिल-स्कूल' सरकारी ग्रांट ले या न ले। मैंने कहा— "ग्रांट बिलकुल न लेनेमें ही बुद्धिमानी है। थोड़ीसी मददके लिअे हम अपनी स्वतंत्रता गवा देते हैं, और जब अिन्स्पेक्टरको खुश करनेकी वृत्ति अेक बार हममें पैदा हो जाती है, तो फिर जनहित किस बातमें है अिसका विचार हमें नहीं रहता। सरकारकी नीति तो स्पष्ट है—'युवर मनी, अवर कंट्रोल' (धन तुम्हारा, सत्ता हमारी)।" पांडे साहबको यह अन्तिम सूत्र बहुत ही पसन्द आया। और अुन्होंने ग्रांट न लेनेका निश्चय किया। फिर अुन्होंने अत्यन्त विनयपूर्वक मुझसे पूछा—"आप लोग साधु बनकर घूमते फिरते हैं, अिसके बदले समाज-सेवा करें तो क्या हर्ज है? साधु लोग नाहक यहांसे वहां भटककर समाजके लिअे भाररूप क्यों हों।" अुन्हें क्या पता कि समाज-सेवाका भूत अुनके बनिस्बत मुझ पर

ज्यादा सवार था, और अुससे छुटकारा पानेके लिअे ही मैं यहां हिमालयमें आया था?

समाज-सेवा करनेके लिअे भी अधिकार चाहिये। आज अनधिकारी लोग सेवाकार्यकी जिम्मेदारी लेकर समाजमें जो गड़बड़ी पैदा करते हैं, अुससे वे मुंह मोड़ लें तो भी बड़ी-से-बड़ी समाज-सेवा हो सकती है। डर यह है कि कहीं यूरोपकी तरह यहां भी समाज-सेवा अेक पेशा न बन जाय। विलायतमें किसी समय बैरिस्टर अेक बहुत निर्दोष समाज-सेवक था। वही आज जोंककी तरह अपने मुवक्किलोंका खून चूसनेवाला बन गया है। मैंने वकील साहबसे पूछा — "आप जो समाज-सेवा कर रहे हैं, क्या अुसके सिलसिलेमें आपको यह अनुभव नहीं हुआ कि कुछ निकम्मे लोग बीचमें नाहक टांग न अड़ायें, तो आपका काम थोड़ी मेहनतसे ज्यादा अच्छा हो?" अुन्होंने अुत्तर दिया — "अजी साहब, यह अनुभव तो पग-पग पर होता है। सारी शक्ति अिन आदमियोंके विरोधका सामना करनेमें ही खर्च हो जाती है। और आखिर आदमी निराशावादी बन जाता है।" मैंने कहा — "तब अिस बारेमें हम लोग आपको अभयदान दे रहे हैं, यह क्या कम है? आत्मोन्नति और समाज-सेवामें विरोध नहीं है। फिर भी अिस क्षणिक विरोधको स्वीकार करके मैं कहता हूं कि आत्मोन्नतिकी साधना करना हमेशाका कर्तव्य है। समाज-सेवाके लिअे यह नहीं कहा जा सकता। समाज-सेवाके लिअे बहुत बड़ी गुणग्राहकी जरूरत है। यह अेक खतरनाक व्यसन है। हमारा अपना पतन न हो, और समाज भी परावलम्बी तथा निष्प्राण न बने, अिन आदर्शोंको सम्भालते हुअे ही समाज-सेवा करना अुचित है। यहां तो पर्वतोंसे आपको पोषण मिलेगा।" वकीलजी कुछ बोले नहीं। कदाचित् अुन्हें सन्तोष हो गया होगा। अल्मोड़ावाले हमारे बारेमें अुन्होंने कहा — "आप अपने मैदानवाले लोगोंसे कहिये कि तन्दुरुस्तीके लिअे यहां आना हो, तो बीमारीके शुरू होते ही यहां आनेमें फायदा है। बहुतेरे लोग बिलकुल आखिरमें यहां आते हैं, और यहांकी हवा बरदाश्त न कर सकनेके कारण नाहक मौतके शिकार होते हैं। मेरा यह सन्देश आप 'देश' के लोगों तक जरूर पहुंचाअियेगा।"

पुस्तकोंसे मैं अूब गया था, फिर भी अुनके यहां 'शब्दकल्पद्रुम' की मोटी-मोटी जिल्दें देखकर मेरी लालची नजर अुन पर पड़े विना न रही।

लौटते समय हम आशाबाबू नामक अेक बंगालीके घर गये। वे ब्राह्मो थे। अुनके साथ वेदान्त, तंत्र, शक्तिपूजा और ब्राह्मधर्म पर खूब चर्चा हुअी, और सांझ होते ही हम 'ग्रेनाअिट' पहाड़ी पर पहुंचे। वहांसे चारों ओरका दृश्य भव्य और मनोहर लगता था। नन्दादेवीने सन्ध्याका पीत वस्त्र परिधान किया था, और सन्ध्याको आशीर्वाद देकर वह अुसे विदा कर रही थी। तारे चमकने लगे थे, आकाश-गंगामें हंस नहा रहा था। बहुतसे देवता भी जल-विहार कर रहे थे। अुनके दर्शनसे पावन होकर हम धीरे-धीरे घर आये।

घर पर भिश्ती भक्तिभावपूर्वक स्वामीसे गीता सीखनेकी राह देखता बैठा था। सुबहके नौकरको सामके वक्त प्रिय शिष्य बना हुआ देखकर मेरा हृदय हर्षसे अुमड़ अुठा। थोड़ी देरके बाद श्रद्धाधन दरजी साअींजी भी आया। अिस आदमीने अपनी जिन्दगी जुअेमें तबाह कर दी थी। स्वामीके सम्पर्कसे अुसके दिलमें अुपरति अुदय होने लगी थी। मैंने स्वामीसे कहा — "आज 'अपि चेत्सुदुराचारो' पर प्रवचन कीजिये।"

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ।।

जब स्वामीने अिस श्लोकका रहस्य हिन्दीमें समझाया, तो साअींजीका कंठ भर आया। अुसने कहा — "नही सामीजी, हम अभी सुद्ध नहीं हुअे। हमको अब भी कभी-कभी मोह होता है। पाप हमारे दिलमें घुस आता है।" मेरे दिलमें विचार आया — "हमारे धर्मोपदेशक दक्षिणाके पीछे मरते हैं। अिन गरीब लोगोंको धर्मका प्रसाद कौन बांटेगा? कौन अिन्हें आश्वासनके वचन सुनायेगा? पतितोंको अस्पृश्य मानकर हमारे धर्मगुरु स्वयं अस्पृश्य बन गये हैं, और हिन्दू धर्मका पतित-पावनत्व खो बैठे हैं। गुहक और शबरीको अपने आत्मीय माननेवाले रामचन्द्रकी अब यह भरतभूमि नहीं रही।" अिस प्रकार विचार करता हुआ मैं बिस्तर पर लेटा। बाहर सन्-सन् करता हुआ पवन मेरे विचारोंके साथ ताल दे रहा था।

चार आलू या मिर्च और मांगनेवाला ग्राहक; देशसेवामें अेक सामान्य सैनिककी योग्यता रखते हुअे भी अपनी सेवासे ही राष्ट्रको स्वातंत्र्य मिलता हो, तो अुसी अेक शर्त पर अपनी बलि देनेकी अिच्छा रखनेवाला देश-सेवक; अंग्रेज लोगोंसे माग-मागकर और अुन्हें तंग कर-करके स्वराज्य प्राप्त करनेकी अुम्मीद रखनेवाले लोग; और महात्माओंके चरण-स्पर्श या वस्त्रस्पर्शसे या अुनकी जूठन खाकर यह आशा रखनेवाले कि अुनकी तपस्याका कुछ अंश बिजलीकी तरह हमारे अन्दर भी सहज ही दाखिल हो जायगा — ये सभी रंक हैं। बिना मेहनतके मोक्ष भी मिले, तो अुस मोक्षका मूल्य ही क्या? और अिस पिशाच-बाधाको मोक्ष कहा भी कैसे जाय?

साधुओंके विषयमें हम लोगोंमें बहुत ही अजीब खयाल पाये जाते हैं। कुछ लोग तो साधुको अेक जीती-जागती जड़ी-बूटी या मंत्र ही समझते हैं। कुछ लोगोंका खयाल है कि वे संसारको ठगनेवाले, ढोंग-धतूरा चलानेवाले और मुफ्तका माल अुड़ाकर मसजिदमें सोनेवाले आलसी ठग हैं, क्योंकि वे न तो कोअी समाज-सेवा करते हैं, और न द्रव्योपार्जन ही। अेक राष्ट्रभक्तने मुझ पर अपनी यह अिच्छा प्रकट की थी कि अिन सारे साधुओंको पकड़कर अुनकी अेक फौज बनाअी जाय और अुसे कवायद सिखाकर अंग्रेज सरकारसे लड़नेके लिअे भेज दिया जाय। आज सब कोअी जानते हैं कि हिन्दुस्तानमें साधुओंकी संख्या बावन लाख है; और अर्थशास्त्र जाननेवाले हमारे विद्वान लोग राष्ट्रकी शक्तिका अितना अपव्यय भला कैसे सह सकते हैं? अिसलिअे अिन बावन लाख साधुओंके साथ क्या किया जाय, अिसी चिन्तासे कितने ही देश-चिन्तक सूखकर कांटा हो रहे हैं! संसार असार है, अुसमें अेक रोटी और दो लंगोटीकी जरूरत रखकर निर्लेप रहो, और हरिनाम लो अथवा आत्म-चिन्तन करो — यों कहनेवाले साधुओंको खाकी पोशाक पहनाकर हाथमें बन्दूक और संगीन देकर और कमरबन्दमें प्राण-घातक बारूदके कारतूस बंधवाकर 'लेफ्ट, राअिट, लेफ्ट' करानेका दृश्य क्या हिन्दू धर्मकी विजयका सूचक होगा?

यह कोअी नहीं कहता कि आजके साधु आदर्श साधु हैं। खाकीबाबा हमेशा कहा करते — 'जैसा जुग वैसा जोगी।' जोगी न तो आसमानसे

खाकीबाबा

हिमालयसे लौटकर आये हुअे मनुष्यसे सब कोअी अेक ही सवाल पूछते हैं — "वहां आपको कोअी साधु-महात्मा मिले?" लोगोंका क्या ख्याल है, सो मैं जानता नहीं। क्या लोग यह समझते हैं कि हिमालयमें पेड़ोंके बदले साधुओंका ही वन अुगता है? जिस तरह मैं हिमालय गया था अुसी तरह बहुतसे साधु हिमालय जाते हैं। जैसे वह होटलवाला विशारद वहां जा बसा है, वैसे ही कभी साधु भी हिमालयमें रहते हैं। लेकिन लोगोंको अैसे साधुओंकी तलाश नहीं। अैसे साधु तो अुनके घर भी भीख मागने आते हैं। अुन्हें तो चाहिये त्रिकाल-ज्ञानी, चमत्कार-पटु और बिना कुछ खाये जी सकनेवाले महात्मा, जिनके चरणभर छूनेमें मोक्ष प्राप्त हो जाय, या कोअी अजीब कीमिया मिल जाय, अथवा और कुछ नहीं तो कम-से-कम किसी बीमारीकी अद्‌भुत जड़ी-बूटी ही अनायास हाथ लग जाय। राजनीतिमें दिलचस्पी रखनेवाले लोग पूछते हैं — "हिन्दुस्तानके भविष्यके विषयमें आपको हिमालयके साधुअोंसे कुछ मालूम हुआ है?"

अिन सब प्रश्नोंका जवाब मैं अेक ही वाक्यमें दे डालता हूं। मैं साधुओंकी तलाशमें गया ही न था। अुपदेशके रूपमें मुझे जो कुछ मिला था, वह मेरे लिअे काफी था। मुझे तो अपनी साधना स्वतः ही करनी थी। जिस प्रकार पराश्रजीवी रहकर दूसरेका आश्रित बनना लज्जास्पद है, अुसी प्रकार किसी साधुकी तपश्चर्यामें से भीखका टुकड़ा पानेकी और अुसके भरोसे सुखी होनेकी अिच्छा भी आध्यात्मिक दरिद्रताकी द्योतक है। साधुओंके दर्शनसे हमारा हृदय पवित्र हो, अुनका वैराग्य हमारे अन्दर अुद्‌भूत हो, अुनकी अीश्वर-निष्ठा हममें पैदा हो, और अुन्हींके जैसी तपस्या करनेकी निश्चय-शक्ति हमें भी प्राप्त हो, यह अिच्छा अुचित है। लेकिन अुनके प्रसादके रूपमें हमें कुछ मिले और हम अनायास, सेंतमेंतमें, सुखी बन जायं, अैसी अिच्छामें तो पामरता ही भरी हुअी है। बाजारसे साग-तरकारी खरीदते वक्त पूरा तुलवानेके बाद भी दो-

चार आलू या मिर्च और मांगनेवाला ग्राहक; देशसेवामें अेक सामान्य सैनिककी योग्यता रखने हुअे भी अपनी सेवासे ही राष्ट्रको स्वातंत्र्य मिलता हो, तो अुसी अेक शर्त पर अपनी बलि देनेकी अिच्छा रखनेवाला देश-सेवक; अंग्रेज लोगोंसे माग-मांगकर और अुन्हें तंग कर-करके स्वराज्य प्राप्त करनेकी अुम्मीद रखनेवाले लोग; और महात्माओंके चरण-स्पर्श या वस्त्रस्पर्शसे या अुनकी जूठन खाकर यह आशा रखनेवाले कि अुनकी तपस्याका कुछ अंश बिजलीकी तरह हमारे अन्दर भी सहज ही दाखिल हो जायगा — ये सभी रंक हैं। बिना मेहनतके मोक्ष भी मिले, तो अुस मोक्षका मूल्य ही क्या? और अिस पिशाच-बाधाको मोक्ष कहा भी कैसे जाय?

साधुओंके विषयमें हम लोगोंमें बहुत ही अजीब खयाल पाये जाते हैं। कुछ लोग तो साधुको अेक जीती-जागती जड़ी-बूटी या मंत्र ही समझते हैं। कुछ लोगोंका खयाल है कि वे संसारको ठगनेवाले, ढोंग-धतूरा चलानेवाले और मुफ्तका माल अुड़ाकर मसजिदमें सोनेवाले आलसी ठग हैं, क्योंकि वे न तो कोअी समाज-सेवा करते हैं, और न द्रव्योपार्जन ही। अेक राष्ट्रभक्तने मुझ पर अपनी यह अिच्छा प्रकट की थी कि अिन सारे साधुओंको पकड़कर अुनकी अेक फौज बनाओ जाय और अुसे कवायद सिखाकर अंग्रेज सरकारसे लड़नेके लिअे भेज दिया जाय। आज सब कोअी जानते हैं कि हिन्दुस्तानमें साधुओंकी संख्या बावन लाख है; और अर्थशास्त्र जाननेवाले हमारे विद्वान लोग राष्ट्रकी शक्तिका अितना अपव्यय भला कैसे सह सकते हैं? अिसलिअे अिन बावन लाख साधुओंके साथ क्या किया जाय, अिसी चिन्तासे कितने ही देश-चिन्तक सूखकर काटा हो रहे हैं! संसार असार है, अुसमें अेक रोटी और दो लंगोटीकी जरूरत रखकर निर्लेप रहो, और हरिनाम लो अथवा आत्म-चिन्तन करो — यों कहनेवाले साधुओंको खाकी पोशाक पहनाकर हाथमें बन्दूक और संगीन देकर और कमरबन्दमें प्राण-घातक बारूदके कारतूस बंधवाकर 'लेफ्ट, राअिट, लेफ्ट' करानेका दृश्य क्या हिन्दू धर्मकी विजयका सूचक होगा?

यह कोअी नहीं कहता कि आजके साधु आदर्श साधु हैं। खाकीबाबा हमेशा कहा करते — 'जैसा जुग वैसा जोगी।' जोगी न तो आसमानसे

खाकीबाबा

हिमालयसे लौटकर आये हुअे मनुष्यसे सब कोअी अेक ही सवाल पूछते है — "वहां आपको कोअी साधु-महात्मा मिले?" लोगोंका क्या ख्याल है, सो मैं जानता नहीं। क्या लोग यह समझते हैं कि हिमालयमें पेडोंके बदले साधुओंका ही वन अुगता है? जिस तरह मैं हिमालय गया था अुसी तरह बहुतसे साधु हिमालय जाते हैं। जैसे वह होटलवाला विशारद वहां जा बसा है, वैसे ही कअी साधु भी हिमालयमें रहते हैं। लेकिन लोगोंको अैसे साधुओंकी तलाश नहीं। अैसे साधु तो अुनके घर भी भीख मांगने आते हैं। अुन्हें तो चाहिये त्रिकाल-ज्ञानी, चमत्कार-पटु और बिना कुछ खाये जी सकनेवाले महात्मा, जिनके चरणभर छूनेसे मोक्ष प्राप्त हो जाय, या कोअी अजीब कीमिया मिल जाय, अथवा और कुछ नहीं तो कम-से-कम किसी बीमारीकी अद्‌भुत जड़ी-बूटी ही अनायास हाथ लग जाय! राजनीतिमें दिलचस्पी रखनेवाले लोग पूछते हैं — "हिन्दुस्तानके भविष्यके विषयमें आपको हिमालयके साधुओंसे कुछ मालूम हुआ है?"

अिन सब प्रश्नोंका जवाब मैं अेक ही वाक्यमें दे डालता हूं। मैं साधुओंकी तलाशमें गया ही न था। अुपदेशके रूपमें मुझे जो कुछ मिला था, वह मेरे लिअे काफी था। मुझे तो अपनी साधना स्वतः ही करनी थी। जिस प्रकार पराश्रजीवी रहकर दूसरेका आश्रित बनना लज्जास्पद है, अुसी प्रकार किसी साधुकी तपश्चर्यामें से भीखका टुकड़ा पानेकी और अुनके भरोसे सुखी होनेकी अिच्छा भी आध्यात्मिक दरिद्रताकी द्योतक है। साधुओंके दर्शनसे हमारा हृदय पवित्र हो, अुनका वैराग्य हमारे अन्दर अुद्‌भूत हो, अुनकी अीश्वर-निष्ठा हममें पैदा हो, और अुन्हींके जैसी तपस्या करनेकी निश्चय-शक्ति हमें भी प्राप्त हो, यह अिच्छा अुचित है। लेकिन अुनके प्रसादके रूपमें हमें कुछ मिले और हम अनायास, मुफ्तमें, सुखी बन जायं, अैसी अिच्छामें तो पामरता ही भरी हुअी है। बाजारमें साग-तरकारी खरीदते वक्त पूरा तुलवानेके बाद भी दो-

चार आलू या मिर्च और मांगनेवाला ग्राहक; देशसेवामें अेक सामान्य सैनिककी योग्यता रखते हुअे भी अपनी सेवासे ही राष्ट्रको स्वातंत्र्य मिलता हो, तो अुसी अेक शर्त पर अपनी बलि देनेकी अिच्छा रखनेवाला देश-सेवक; अंग्रेज लोगोंसे मांग-मांगकर और अुन्हें तंग कर-करके स्वराज्य प्राप्त करनेकी अुम्मीद रखनेवाले लोग; और महात्माओंके चरण-स्पर्श या वस्त्रस्पर्शसे या अुनकी जूठन खाकर यह आशा रखनेवाले कि अुनकी तपस्याका कुछ अंश बिजलीकी तरह हमारे अन्दर भी सहज ही दाखिल हो जायगा — ये सभी रंक हैं। बिना मेहनतके मोक्ष भी मिले, तो अुस मोक्षका मूल्य ही क्या? और अिस पिशाच-बाधाको मोक्ष कहा भी कैसे जाय?

साधुओंके विषयमें हम लोगोंमें बहुत ही अजीब खयाल पाये जाते हैं। कुछ लोग तो साधुको अेक जीती-जागती जड़ी-बूटी या मंत्र ही समझते हैं। कुछ लोगोंका खयाल है कि वे संसारको ठगनेवाले, ढोंग-धतूरा चलानेवाले और मुफ्तका माल अुड़ाकर मसजिदमें सोनेवाले आलसी ठग हैं, क्योंकि वे न तो कोओी समाज-सेवा करते हैं, और न द्रव्योपार्जन ही। अेक राष्ट्रभक्तने मुझ पर अपनी यह अिच्छा प्रकट की थी कि अिन सारे साधुओंको पकड़कर अुनकी अेक फौज बनाओ जाय और अुसे कवायद सिखाकर अंग्रेज सरकारसे लड़नेके लिअे भेज दिया जाय। आज सब कोओी जानते हैं कि हिन्दुस्तानमें साधुओंकी संख्या बावन लाख है; और अर्थशास्त्र जाननेवाले हमारे विद्वान लोग राष्ट्रकी शक्तिका अितना अपव्यय भला कैसे सह सकते हैं? अिसलिअे अिन बावन लाख साधुओंके साथ क्या किया जाय, अिसी चिन्तासे कितने ही देश-चिन्तक सूखकर कांटा हो रहे हैं! संसार असार है, अुसमें अेक रोटी और दो लंगोटीकी जरूरत रखकर निर्लेप रहो, और हरिनाम लो अथवा आत्म-चिन्तन करो — यों कहनेवाले साधुओंको खाकी पोशाक पहनाकर हाथमें बन्दूक और संगीन देकर और कमरबन्दमें प्राण-घातक बारूदी कारतूस बंधवाकर 'लेफ्ट, राअिट, लेफ्ट' करानेका दृश्य क्या हिन्दू धर्मकी विजयका सूचक होगा?

यह कोओी नहीं कहता कि आजके साधु आदर्श साधु हैं। खाकीबाबा हमेशा कहा करते — 'जैसा जुग वैसा जोगी।' जोगी न तो आसमानसे

टपकते हैं और न जमीनमें से पैदा होते हैं, बल्कि वे तो अपने जमानेके समाजमें से ही अुत्पन्न होते हैं। अपने ही दोषोंको साधुओंमें अुतरा हुआ देखकर सांसारिक लोगोंको अितना अचरज क्यों होता है? यदि साधु-वर्गको सुधारना है, तो समाजको ही सुधारना पड़ेगा। अर्थात् हरअेक अपने-आपको ही सुधारे। हमने तो सभी साधुओंको अेकसा ही माना है। साधुओंमें घुल-मिलकर अुन्हें परखा किसने है? कुछ साधुओंमें आपको संसारी लोगोंकी अपेक्षा अधिक कुलीनता, अधिक भूतदया और अधिक अुद्यमशीलता होती है। अुन्हें दुनियाका जो ज्ञान होता है, अुतना प्राप्त करनेके लिअे आप अपनी सारी लायब्रेरिया अुलट डालें, तो भी वह पर्याप्त न होगा।

अेक दिन सबेरे हम जल्दी अुठकर 'ग्रेनाअिट' पहाड़ी पर टहलने गये थे, और वहा अेक देवदार वृक्षके नीचे बैठकर अिमर्सनके 'सर्कल्स' पर बातचीत कर रहे थे। अितनेमें दाहिनी तरफ दूर बादलोंसे ढंका हुआ अेक छोटा-सा किला दिखाओी दिया। मैंने स्वामीसे पूछा — "यह अेक छोटे टापू-जैसा क्या दिखाओी देता है? कोओी मन्दिर या साधुओंका अखाडा तो नही है?" स्वामीने कहा — "यही तो खाकीबाबाका खगमरा कोट है। हम दोपहरमें वहां चलेंगे। खाकीबाबा अेक दिव्य पुरुष हैं। मैं अक्सर अुनके पास जाया करता हूं। अेकादशीके दिन अुनके यहां सारी रात भजन होता है। वहां अेक बंगाली साधु भी आता है। वह जितना भक्त है, अुतना ही अप्रतिम गायक भी है।"

अपने निश्चयके अनुसार हम दोपहरमें खाकीबाबाके दर्शनोंको गये। अल्मोड़ेकी गोदमें अुतरकर हम अेक नौअे (झरने) के पास पहुंचे। वहां मिसरी-सा मीठा पानी पिया और खगमरा पहाड़ी चढ़कर 'थानक' में पहुंचे। बाबा लोगोंका 'टाअुन-प्लैनिंग' देखने लायक होता है। ये अेक-दूसरेकी फैशनका अनुकरण करनेवाले शहरियोंके समान भेड़चाल चलनेवाले नही होते। अुनके अखाड़ोंकी रचनामें प्रयोजन होता है। अुनका हरअेक भाग साभिप्राय बना होता है। सारी रचना आयुक्त, प्रमाणबद्ध और काव्यमय होती है। अैश-आरामकी सुविधाके बिना

मकानोंमें कितनी सुन्दरता पैदा की जा सकती है, जिसका अेक प्रदर्शन ही वहां मौजूद रहता है। खुद खाकीबाबा जिस झोपड़ीमें रहते थे, वह अेक अठकोनी झोपड़ी थी। अूपर लकड़ीके लम्बे-लम्बे नल्लोंका छप्पर था, जो अूपरकी तरफ बरसातसे और भीतर धूनीके धुअेंसे विवर्ण हो गया था। बीचमें अेक बड़ी धूनी जल रही थी। धूनीमें लोहेके दो-चार चिमटे और अेक-दो त्रिशूल खोंसे हुअे थे। पास ही लकड़ीका अेक लम्बा, चौड़ा और मोटा तख्ता था, और अुस पर खाकीबाबाकी भव्य मूर्ति विराजमान थी। आसपास पहाड़ी शिष्यवृन्द बैठा था। धूनीके पास अेक लुटियामें पानी गरम हो रहा था। हम अन्दर गये। झुककर बाबाको प्रणाम किया और बैठे।

बाबाने बड़े प्रेमसे हमारा स्वागत किया। स्वामीने अुन्हें हम दोनोंका परिचय कराया। यह सुनते ही कि मैं बेलगामसे आया हूं, वे बोल अुठे — "आप बेलगामके हैं या शाहपुरके?" मैं दंग रह गया। बेलगाम और शाहपुर पास-पास बसे हैं। अुनके बीच पूरा अेक मीलका भी फासला नहीं है। अच्छा, तो हिमालयके अिस साधुको बेलगाम और शाहपुरके भेदका भी पता है! "मैं शाहपुरका हूं।" खाकीबाबा बोले — "आपका शाहपुर तो सांगलीकी हदमें है। वह ब्रिटिश राज्यमें नहीं। आपके यहां मारवाड़ी लोगोंने बालाजीका जो मन्दिर बनवाना शुरू किया था, वह पूरा हुआ?" मैंने वहांका सारा हाल सुनाया। बादमें, मैंने क्या क्या किया, कहां-कहां घूमा, सो सब अुन्होंने मुझसे पूछ लिया। मैं कुछ कम घूमा न था। फिर भी मैं जिस गांव या शहरका नाम लेता, वहांकी सारी तफसील सुनाकर वे अिस तरह सवाल पूछने लगते, मानो वे वहींके बाशिन्दा हों।

अुसके बाद मरढेकर बाबाकी बारी आअी। बाबा रामदासी सम्प्रदायके थे। अिसलिअे अुनके मठ, अुनके सम्प्रदाय आदि सभी चीजोंके बारेमें पूछताछ की। घड़ीभरमें ही हमने देख लिया कि हिन्दुस्तानके भूगोल और धार्मिक अितिहासके बारेमें खाकीबाबाका ज्ञान 'अिम्पीरियल गॅजेटियर्स' से बढ़कर था; और यह सब स्कूल या कॉलेजमें बिना गये और बिना 'रॉयल अेशियाटिक सोसायटी' के सदस्य बने प्राप्त किया

गया था! खुद हमारे ज्ञानको लगभग समाप्त होते देख अुन्होंने हमें ज्यादा सवाल पूछकर लज्जित नहीं किया।

बादमें हमने कहा — "हम गंगोत्री, जमनोत्री, केदार, बदरी आदि तीर्थस्थानोंकी यात्रा करना चाहते हैं। और स्वामीको तो कैलाश भी जाना है।" फिर क्या था। अुन्होंने हिमालयके सभी तीर्थोंका वर्णन करना शुरू कर दिया! हमें परेशान-सा देखकर अुन्होंने अपनी बगलमें पड़ी हुआी लकड़ीकी अेक तख्ती अुठाआी और सफेद मिट्टीकी अेक डली लेकर चटसे अेक कामचलाअू नकशा बना दिया। अुसमें बदरीनारायण जानेके चार रास्ते दिखाये गये थे। वे कहने लगे — "ज्यादा-से-ज्यादा रेलकी यात्रा करके कम-से-कम पैदल चलना हो तो यह रास्ता है; खाने-पीनेका सुभीता चाहते हो तो यह रास्ता है; जल्दी पहुंचना हो तो यह तीसरा रास्ता है। लेकिन अिस रास्तेके लिअे आपको अपने साथ काफी खुरदा (चिल्लर) रखना होगा। आपके 'नोट' वहां नहीं चलेंगे, और गरीब लोगोंके पास काफी चिल्लर भी नहीं मिलेगी।" चौथा रास्ता अुन्होंने अपने रास्तेके नामसे बतलाया। अुसमें जंगल और सृष्टिशोभा अधिकसे अधिक थी। यह रास्ता बिलकुल निर्जन था, और किन्हीं दो बस्तियोंके बीच कम-से-कम चालीस मीलका फासला रहता था।

मैंने पूछा — "महाराज, आप बदरीनारायण कब पधारे थे?" अुन्होंने कहा — "कुल मिलाकर सत्रह बार गया हूं!" स्वामीको कैलाश जाना था, अिसलिअे मैंने बाबाजीसे पूछा — "आप कैलाश भी गये होंगे?" अुन्होंने कहा — "आठ बार!" और, वे जिस तरह वहांका वर्णन करने लगे, मानो सारे रास्तेका चित्र ही अुनकी आंखोंके सामने मौजूद हो! अिसके बाद कैलासके रास्ते पर रहनेवाले मोरपंखीवाबा नामक अेक साधुका वर्णन शुरू हुआ, जो हरसाल कैलाश-यात्रा करते थे। बादमें हमने आसपासके प्रदेशमें रहनेवाले सोमवारगिरि बाबा जैसे दूसरे

स्वच्छताके विषयमें वहांवालोंकी लापरवाहीकी अुन्होंने शिकायत की। रामेश्वरकी तरफ़के मन्दिरोंकी व्यवस्थामें क्या-क्या त्रुटियां हैं, सो भी अुन्होंने बताया।

अिसके बाद अुन्होंने हमसे चाय पीनेका आग्रह किया। हिमालयकी चाय लिप्टनकी चाय नहीं होती; वहींकी पैदावार होती है। और वहां अुसे बनानेका तरीका भी और ही होता है। वहांवाले कहते हैं कि हिमालयकी सख्त ठंडमें यह चाय बड़ी अुपयोगी होती है। हमने चाय पीनेसे अिनकार किया। अिस पर अुन्होंने बगलमें रखी हुअी अेक टोकरीमें से पेड़े देनेके लिअे अपने अेक सेवकसे कहा। मैंने कहा — "मैं खांड नहीं खाता।' अुन्होंने कहा — "यह खांड तो देशी होती है। मैं हर साल कानपुरसे खास अपने लिअे मंगाता हूं।" (बादको मुझे मालूम हुआ कि खाकीबाबाके यहां जो शकर बरती जाती थी, वह हर साल पीलीभीतके राजा ललिताप्रसादकी तरफ़से भेजी जाती थी, जो गुमाश्तेकी देखरेखमें खास तौरसे कानपुरके कारखानेमें बनवायी जाती थी और बादमें बोरोंमें भरकर अेक ही खेपमें पहाड़ पर पहुंचा दी जाती थी।) मैंने कहा — "मुझे माफ़ कीजिये। छह साल तक शकर बिलकुल ही न खानेका मेरा व्रत है।" लेकिन बाबा यों सहज ही छोड़नेवाले न थे। तुरन्त ही मुझे बादाम और छुहारे दिये गये, और फिर बातोंका सिलसिला चल पड़ा।

बाबाने पीनेके लिअे लोटेमें से गरम पानी लिया, लेकिन पीनेसे पहले अुसकी दो-चार बूंदें अग्निको अर्पण कीं। मुझे अिस पर कुछ आश्चर्य हुआ। यह देख स्वामीने मुझसे कहा — "खाकीबाबा जो भी कुछ खाते या पीते हैं, अुसे पहले अग्निको अवश्य अर्पण करते हैं।" खाकीबाबा बोले — "अपने राम तो दिनमें अेक ही बार अेक 'बाटी' बनाकर 'पा' लेते हैं। आज दोपहरको जो पाया सो फिर कल दोपहरमें पायेंगे।" मैंने मन-ही-मन कहा — "तो फिर क्या ये पेड़े और बादाम और छुहारे हम-जैसे अतिथियोंके लिअे ही हैं? धन्य है अिस साधुको!" खाकीबाबाकी कमरमें मुंजकी अेक मोटी रस्सी पड़ी थी, और अुस पर अेक बित्ताभर चौड़ी कौपीन; सारा शरीर भस्म-चर्चित था। दाढ़ी और मूंछके लम्बे-लम्बे बाल तप तपकर लाल पड़ गये थे।

बादमें आजकलके साधुओंके धर्मोपदेशोंके बारेमें बात चली। कुछ अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोग साधु हो जाते है। वे अंग्रेजीमें पुस्तकें लिखते हैं, व्याख्यान देते फिरते हैं, और समाज-सेवाके पाठ सिखाते हैं — यह सब देखकर खाकीबाबाकी हंसी रोके न रुकती थी।

वे बोल अुठे — "आप अंग्रेजी पढ़े-लिखे साधु गरीबोंकी क्या सेवा करते हो? दुखियोंको कौनसा दिलासा देते हो?" और फिर अचानक शून्य दृष्टिसे सामनेवाली धर्मशालाकी तरफ टकटकी बांधकर देखते हुअे अुद्वेगपूर्वक वे स्वगत कहने लगे :

"साले-सगुरे लेक्चरबाजी करते हैं! अुसमें भी कोओ विवेकानन्द बननेकी तो ताकत नहीं; खाली ट्रान्सलेशन करते हैं! भगवानका नाम लो, कुछ तप करो। बन सके तो भूखेको अन्नदान दो; और अपना काम करो। ये क्या खाली बकबक लगाओी है?"

स्वामीने पूछा — "क्या आप अिस साल बदरीनारायण जानेवाले हैं?" बड़ी-बड़ी दरारोंवाले अपने तलवे दिखाते हुअे अुन्होंने कहा — "ओीश्वरने मुझे यह सजा दी है। यह बच्चा यात्राका बेहद शौकीन बन गया है, अिसलिअे अिसे अेक जगह जकड़कर रखना जरूरी है, अैसा सोचकर ओीश्वरने ही मेरे पैरोंकी यह हालत कर डाली है। अब अगर मुझे जाना हो, तो टाटके जूते पहनने होंगे।"

खगमरेमें रहकर खाकीबाबा जो मूक समाज-सेवा करते थे, अुसका हिसाब कौन लगा सकता है? वे बीमारोंको दवा देते थे; व्यवहार-कुशल और निस्पृह तो थे ही; अिसलिअे दुविधामें पड़े हुअे संसारी लोगोंको सलाह-मशविरा देते थे; भूखे-प्यासे सब खगमरेमें आकर अघा जाते थे; भाओी-भाओीके जिन टंटोंका निपटारा अदालतमें नहीं हो सकता था, अुनका तसफिया खाकीबाबाके अुपदेशसे हो जाता था। वे स्वयं योगमार्गी थे, और आखिरी घड़ीमें पद्मासन लगाकर प्राणोंको ब्रह्मांडमें ले जानेकी अुनकी अभिलाषा थी। संसारके द्वन्द्वोंसे वे निवृत्त हो गये थे, फिर भी अुस निवृत्तिमें से अुन्होंने सात्विक प्रवृत्तिका निर्माण किया था, और अुस सात्विक प्रवृत्तिमें भी कमल-पत्रकी तरह अलिप्त रहनेका अद्भुत योग अुन्होंने साध लिया था।

धर्मकी चर्चा करनेवाले हमारे आधुनिक विद्वानों, नीति-निपुणों, समाज-सेवको और अर्थशास्त्रियोंको साधुओंकी टीका करनेसे पहले पूर्वग्रह-रहित निर्मल वृत्तिसे अुनके जीवनका अध्ययन करना चाहिये। और कुछ नही तो कम-से-कम अितना तो हम साधुओंके जीवनसे सीख ही सकते हैं कि अिस देशमें किस तरहकी रहन-सहनसे स्वास्थ्य-रक्षा भलीभाति हो सकती है। अिस विषयमें अुनकी सेवा देशके लिअे अितनी आदर्श-रूप है कि अुस हद तक साधुओं पर खर्च होनेवाला पैसा सार्थक माना जा सकता है। क्या घर-गिरस्तीमें रहकर व लोगोंकी अधम वृत्तियोका पोषण करके धन कमानेवाले और मरते समय बेजान और बेशअूर बालबच्चोंकी फौज अपने पीछे छोड़ जानेवाले लोग समाजके हितकारी हैं, और ये साधु 'मुफ्तका खानेवाले' हैं? वाह रे न्याय!

जरा अपनी समाज-सेवाकी संस्थाओं पर तो दृष्टि डालिये। वे कितनी खर्चीली होती है! अुनके व्यवस्थापकोंको कितनी बड़ी तनख्वाह देनी पड़ती है! अुनकी रिपोर्टें छपवानेके लिअे भी पैसोंका और सत्यका कितना व्यय करना पड़ता है! और तिस पर भी बहुत सारे मामलोंमें पैसोंकी जो घालमेल और गड़बड़ी होती है, सो तो देखते ही बनती है। दूसरी तरफ, साधुओं द्वारा चलनेवाली संस्थायें अज्ञात होती हैं, अुनके विवरण कभी नहीं छपते। न कोअी अुनके 'लाअिफ मेम्बर' होते हैं, न 'पैट्रन'। लेकिन फिर भी सारा खर्च बहुत हद तक बड़ी किफायतसे किया जाता है, और पाअी-पाअी काम आती है।

हिन्दुस्तानका अप्रतिम लोक-साहित्य अिन साधुओंकी ही कृपासे अब तक जिन्दा है, और भविष्यमें भी जिन्दा रहेगा। धार्मिक संस्कृतिकी रक्षा, अभिवृद्धि, विस्तार और सुधारके लिअे दुनियामें अितनी अुन्नत, सस्ती और विश्वासपात्र व्यवस्था और कहीं न मिलेगी।

अैतिहासिक अेवं भौगोलिक प्रमाण अुपस्थित करके पुस्तकें लिखने-वाले विद्वानोंने हिन्दुस्तानकी राष्ट्रीय अेकता भले ही साबित की हो, लेकिन अुस राष्ट्रीय अेकताके निर्माणका श्रेय तो साधुओंको ही है। पुराने जमानेमें हरअेक प्रजाहित-दक्ष राजा अपनी राजधानीमें किसी साधुके पधारते ही अुसके दर्शनोंको जाता था, और दूर-दूरके प्रदेशोंका क्या हाल

है, लोगोंकी कैसी स्थिति है, वगैरा बातोंकी पूरी-पूरी जानकारी अुससे प्राप्त करता था। और वह साधु भी राजधानीसे बिदा होते समय राजाको आशीर्वाद देने जाता था, और अुसके राज्यमें जो कुछ देखा-भाला हो सो सब साफ साफ कह देता था। अिस प्रकार दीन-रंक प्रजाकी पुकार और फरियाद भी अैसे निःस्वार्थ-से-निःस्वार्थ वकीलके मारफत राजाके कानों तक पहुंच जाती थीं; राजाके अहलकारों पर यह अेक जबरदस्त अंकुश रहता था; और कीर्तिका अभिलाषी हरअेक राजा भी साधुकी धर्मबुद्धिको जंचने और सन्तोष देनेवाली राज्य-व्यवस्था बनाये रखनेकी चिन्तामें रहता था।

साधु जब गांवोंमें विचरण करता, तो ग्राम-देवताके मन्दिरमें या किसी पेड़ तले अपनी धूनी रमाता। वहां अुससे गांवके लड़के किस्से-कहानियों द्वारा लोक-जीवन और भूगोलका ज्ञान हासिल करते थे; व्यापारियोंको व्यापारकी जानकारी मिलती थी; शूरवीरोंको यह मालूम हो जाता था कि अुनकी बहादुरीकी कद्र कहां हो सकती है; गांवकी पुरखिनोंके दवा-दारू-सम्बन्धी ज्ञानमें वृद्धि होती थी; दुखियोंकी बीमारी दूर होती थी; और कभी दफा गांवके पुराने मन्दिर या धर्मशालाका जीर्णोद्धार भी हो जाता था। तितली जिस तरह अेक फूलसे दूसरे फूल पर फुदक कर सारे पौधोंको सुफलित करती है, अुसी तरह साधु भी अेक प्रदेशसे दूसरे प्रदेशमें भ्रमण करके संस्कृतिका लेन-देन करनेवाले बनजारे बनते हैं, और देश-देशमें संस्कृतिकी मण्डियां खोल देते हैं। समाजके अुच्च और संस्कारी वर्गके लोग गृह-लोलुप बन गये, अुनमें संयमका स्वाद न रहा, और अुसके फल-स्वरूप साधुओंमें भी अच्छे लोगोंकी संख्या कम होने लगी। समाज निठल्ला, विषयासक्त और लालची बन गया; साधुओंका पालन सिर्फ अिसी गरजसे होने लगा कि अुनकी कद्र किये बिना धर्मका पुण्य पल्ले पड़ता रहे। फलतः समाजके साथ-साथ वह वर्ग भी गिर गया। अब हम दूसरोंकी टीका-टिप्पणीसे प्रभावित होकर अुस वर्गका नाश करने पर अुतारू हो गये हैं।

अिस तरह हमने अपनी संस्कृतिकी प्रत्येक अुच्च और अुदात्त संस्थाको प्राणोंके अभावमें सड़ने-गलने दिया है, और आज अुसे सुधारनेके बदले अुसे नष्ट करके हम असंस्कारी और असंगठित स्थितिसे ही चिपटे रहना चाहते हैं। यूनान, रोम, मिस्र आदि राष्ट्र मिट चुके हैं; अकेला

हिन्दुस्तान जिन्दा है; अिस बात पर गर्व करनेवाले हम लोगोंको याद रहे कि हिन्दुस्तानके जिन्दा होनेका अर्थ यह है कि अब तक हिन्दुस्तान अपनी पुरानी मगर ताजी संस्कृतिसे पैदा हुआी संस्थाओंको टिकाये हुअे है और अुन्हें सुधार रहा है। ये संस्थायें टूटीं कि समझिये हिन्दुस्तानने कब्रस्तानमें प्रवेश किया!

मेरे मनमें अिसी तरहके विचारोंकी धमाचौकड़ी मच गयी। फलतः हम खगमरा पहाड़ीसे वापस कब आये, रास्तेमें लाला बदरीशाने क्या पूछा, पोस्ट-मास्टरके साथ और कौन-कौन थे, वगैरा बातोंकी तरफ मेरा ध्यान बिलकुल ही न गया। हिमालयकी हवा ध्यानके लिअे अनुकूल है, लेकिन अुस ध्यानका भंग करनेवाली दो बड़ी जबरदस्त चीजें वहां हैं— अेक ठण्ड और दूसरी भूख। दोनोंने मुझ पर अेकसा हमला किया था, अिसलिअे अुन दोनोंसे अेक साथ अपनी रक्षा करनेके लिअे हम दौड़ते दौड़ते अपने रसोअीघरमें दाखिल हुअे।

१५

पदमबोरी

साधुओंमें भी जीवनके दो आदर्श होते हैं। लेक्चरबाजीके लिअे हमें फटकार सुनानेवाले खाकीबाबा गरीबोंको अन्नदान करके, बीमारोंको दवा-पानी देकर और दूसरे कअी प्रकारोंसे समाज-सेवा करते थे। कुछ साधु अिन दोनों कामोंको भी अुपाधि-रूप मानते हैं। अुनके विचारमें साधुओंको तो केवल आत्मनिष्ठ रहना चाहिये, परोपकारके लिअे भी किसी तरहका परिग्रह न करना चाहिये। अुनका सूत्र है:

> धर्मार्थं यस्य वित्तेहा वरं तस्य निरीहता ।
> प्रक्षालनाद्धि पंकस्य दूरादस्पर्शनं वरम् ॥

दान करनेके लिअे वित्तकी अिच्छा रखनेकी अपेक्षा बेहतर यह है कि अुसका नाम ही छोड़ दें। कीचड़में हाथ डालकर फिर अुसे धोनेकी अपेक्षा कीचड़से दूर रहना क्या बुरा है?

यह नहीं कि अैसे लोग समाजके प्रति अुदासीन होते हैं, या अुनमें दयाका अभाव होता है। वे कहते हैं: "आप प्रवृत्तिको भलीभांति पहचान नहीं पाये हैं। प्रवृत्तिमात्र बन्धनकारी है। और वह जितनी सात्विक अुतनी ही अधिक बन्धनकारी होती है, क्योंकि अुसका बन्धन बन्धनके रूपमें प्रतीत ही नहीं होता, और जल्दी छूटता भी नहीं। प्रवृत्तिके ही साधनों द्वारा आप दुनियाका भला किस तरह कर सकेंगे? केवल अुपदेश करनेके लिअे न जानेमें भी दयाका अभाव नहीं। प्रवृत्तिमें फंसे रहनेके कारण आप अिस बातको देख नहीं पाते कि आपका अुपदेश अधिकतर निष्फल होता है। जिस आदमीको आपके अुपदेशकी जरूरत होगी, वह खुद आपके पास चला आवेगा। यह अीश्वरी योजना है। आपके अुपदेश देते फिरनेमें अथवा समाज-सेवाका पेशा लेकर बैठ जानेमें अनादि-कालसे विश्वकी यथातथ रचना करनेवाले प्रभुके विषयमें कितनी अश्रद्धा है, सो आपकी समझमें क्यों नहीं आता? प्रसंगवश जो अुपदेश करना पड़ जाय या किसीकी जो सेवा करनी पड़ जाय, अुसे सुचारु-रूपसे करके छुट्टी पानी चाहिये। लेकिन जब तक आप त्रिगुणोंमें फंसे हैं, तब तक स्नेह, दया आदि सात्विक गुणोंके विकासके लिअे चाहे थोड़े दिन समाज-सेवा करें। लेकिन यह साधन है, चित्तशुद्धिका अुपाय है। याद रहे कि अिसके द्वारा हमें मोहसे मुक्ति नहीं मिल सकती।" अपने सौभाग्यसे अैसी वृत्तिवाले अेक साधुके दर्शन हमें हुअे। यहां वह प्रसंग देता हूं।

अलमोड़ेमें हम लगभग पन्द्रह दिन रहे। पन्द्रह दिनोंमें हमने खूब देखा, कअी अच्छे-अच्छे आदमियोंसे मिले और कुदरतसे भी बातचीत की। स्वामी विवेकानन्द यहां जिनके पास रहते थे, अुनसे मिलकर स्वामीजीके विषयमें बहुतसी बातें जानीं। लेकिन यह सब यहां नहीं लिखा जा सकता।

'साधु चलता भला'; अिसी तरह यात्रा-वर्णन भी झटझट आगे-आगे न बढ़े, तो तबीयत अुकता जाती है। हमें भी अुत्तराखण्डकी यात्रा करनेकी जल्दी थी, अिसीलिअे अनुकूल समय देखकर हम अलमोड़ेसे रवाना हुअे। अलमोड़ेसे वापस काठगोदाम जाकर वहांसे रेल द्वारा हरद्वार और हरद्वारसे अुत्तराखण्डकी यात्रा; यह क्रम हमने अपने लिअे निश्चित किया था। लौटते हुअे मुक्तेसर होकर जानेका हमारा विचार था, क्योंकि

मुक्तेसरके पास सोमवारगिरि बावा नामक अेक साधु रहते थे। अुनके दर्शन करनेकी मनीषा थी।

सोमवारगिरि बावा जहां रहते थे, अुस स्थानको पदमबोरी कहते हैं। जगह सब तरहसे काव्यमय है। तीनों तरफ बड़े-बड़े पहाड़ और बीचमें बहती हुअी अेक नन्हीं-सी नदी। ये तीनों पहाड़ अितने अूंचे और अितने सटे हुअे हैं कि नदीके किनारे बैठकर अूपर देखिये, तो आकाशकी विशालता नष्ट होकर वह अेक त्रिकोणाकृति छत-सा प्रतीत होता है।

सांझ होते होते हम पदमबोरी पहुंचे। रास्तेमें हम अुस घुमक्कड़ लड़के हरखदेव, गीता सीखनेवाले भिश्ती, भले वकील हरिराम पांडे, बूढ़े बदरीशा, गद्गद कण्ठवाले सांअींजी दरजी, और बुढ़ापेमें पुत्रप्राप्तिके आनन्दमें दीवाने बने हुअे पोस्ट-मास्टर आदिके विषयमें बातें करते गये। अितनेमें हमारे घोड़ेवालेने (हमारा सामान-असबाब अिस घोड़े पर लदा था) कहा — "यह जो सामने नदीके अुस पार छोटा-सा मन्दिर दिखाअी देता है, वहीं महाराज रहते हैं।" हम पहले तो धर्मशालामें गये। वहां सारा सामान तरकीबसे जमा दिया, और फिर बावाजीके दर्शनोंको निकले।

बावाजीका नियम था कि दर्शनार्थीको हाथ-पैर धोकर व शुद्ध होकर दर्शनोंको जाना चाहिये। लेकिन चूंकि वे नदीके अुस पार रहते थे, अिसलिअे अिस नियमका पालन अनायास ही हो जाता था। हम हाथ-पैर धोकर नदीके प्रवाहमें ही अेक बड़ी-सी चट्टान पर बैठ गये। संध्या-वंदन थोड़में निपटा लिया और आगे बढ़े। सामनेवाला किनारा चढ़कर बावाजीके दर्शन करने गये। बावाजी तो प्रकृतिकी ही मूर्ति थे। अुनके शरीर पर अेक लंगोटीके सिवा कुछ भी न था। सिरके बालोंकी जटायें बन गयी थीं, और अुनकी छोटी-छोटी लटें आंखों और माथे पर खेल रही थीं। हाथमें अेक चिलम थी।

हमने जाते ही भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। बावाने भी अुतनी ही नम्रतासे प्रतिप्रणाम किया और मन्दिरके अहातेकी दीवार पर जाकर बैठ गये, और हम लोगोंको भी अपने पास आकर बैठनेको कहा। हम अुनके साथ समान आसन पर कैसे बैठते? नीचे अेक सीढ़ी थी, अुसी पर जाकर हम लोग बैठ गये। यह अुच्चनीच-भाव बावाजीसे सहा

न गया। वे तुरन्त सीढ़ी पर आकर बैठ गये। अिस पर हम लोग नीचे पड़ी हुअी चटाअी पर जाकर बैठे। मगर बाबाजी यों हार माननेवाले न थे। वे बिलकुल खाली जमीन पर जाकर बैठ गये। अब क्या किया जाय? हमने भी चटाअी हटा दी। अिस पर बाबाजी बोले — "हे प्रभु, मैं तो तुममें अीश्वरको देख रहा हूं। मैं सबेरेसे बाट जोह रहा हूं। ब्रह्मा-विष्णु-महेश — तुम मुझे दर्शन देने आये हो!"

सोमबारगिरि बाबासे हमारी जान-पहचान तो थी ही नहीं। हमारे आनेकी खबर अुन्हें किसीने नहीं दी थी। तिस पर भी अुस दिन सबेरेसे ही वे अपने पास बैठे हुअे लोगोंसे कह रहे थे — "आज कुछ लोग मुझसे मिलने आनेवाले हैं। मैं अुनकी बाट जोह रहा हूं।" हमसे वहांके अेक किसाननें कहा कि अुस दिन दोपहरसे ही वे अपनी जगहसे अुठ-अुठकर दूर तक देखते और निराश होकर अपनी जगह आकर बैठ जाते। निराश होने पर भी कहते — "नहीं, अैसा नहीं हो सकता। आज तो अुनको आना ही चाहिये।" हमने कहा — "महाराज, हमारा घोड़ेवाला देरसे आया, वरना हम यहां कबके पहुंच गये होते।" बादमें यात्राकी बातें चलीं। सोमबारगिरि बाबाने कअी यात्रायें की थीं। अिसलिअे खाकीबाबाकी तरह वे भी जीते-जागते विश्वकोश थे। चाहे जिस प्रान्तका जिक्र कीजिये, वे वहांका ब्यौरेवार वर्णन सुना देते थे। भाषा शुद्ध हिन्दी ही होती थी, अिसलिअे वे साधु कहांके निवासी थे, अिसका अन्दाजा कोअी लगा न पाता था।

फिर भी खाकीबाबा और सोमबारगिरि बाबामें अुत्तर ध्रुव और दक्षिण ध्रुवका-सा अन्तर था। दोनों अेक ही जून खाते, दोनोंको लंगोटीके अलावा दूसरे कपड़ेकी जरूरत ही न पड़ती थी। लेकिन दोनोंके जीवन और जीवनके आदर्शोंमें बहुत फर्क था। खाकीबाबा अपना अेक मठ बनाकर रहते थे; अिधर सोमबारगिरि बाबा किसी जगह ज्यादा दिन तक रहते ही न थे। वे कहते — "अेक जगह रहनेसे अुस स्थानके प्रति और वहांकी परिस्थितिके प्रति अेक तरहकी आसक्ति पैदा हो जाती है।" खाकीबाबा तरह-तरहकी जड़ी-बूटियां अपने पास रखते थे। अतिथि, अभ्यागत और पथिकोंको खिलाते-पिलाते थे; लेकिन सोमबारगिरि बाबा

पूरे अपरिग्रही थे। न तो कुछ लेते थे, न देते थे। वे मानते थे कि यह प्रवृत्ति अुनके-जैसे विरक्तोंके लिअे है ही नही। जब हम खाकीबाबाके पास गये थे, तो अुन्होंने पहले हमें मिठाअी दी थी, और मेरे यह कहने पर कि मैं चीनी नही खाता, अुन्होंने मेवा दिया था। यहा सोमवारगिरि बाबाने अपनी बाटीका अेक-अेक टुकड़ा हमें दे दिया। अितना पवित्र अन्न खानेका भाग्य हमेशा थोड़े ही प्राप्त होता है? अुसका स्वाद कुछ और ही था। सचमुच अितनी स्वादिष्ट रोटी मैंने और कहीं नही खायी। सोमवारगिरि बाबा अुसी दिन सबेरे आसपासके दो-चार गांवके निष्पाप किसानोंसे भिक्षा मांगकर ताजा आटा लाये थे। अुसमें शुद्ध घी और शुद्ध पानी मिलाकर जंगलकी लकड़ियों पर बाबाजीने खुद अपने हाथों वह बाटी बनायी थी। अुस बाटीकी पवित्रता और अुसकी मिठासका बखान कौन कर सकता है? अपने ही आहारमें से अतिथिको हिस्सा देनेकी वृत्ति सोमबारगिरि बाबामें थी, जब कि खाकीबाबामें अतिथिके अनुकूल साधन रखनेकी वृत्ति थी। खाकीबाबा देशी शक्करके बोरे खास कारखानेसे मगाते थे; और अिधर जिस वक्त हम सोमवारगिरि बाबाके पास पहुंचे थे, अुस वक्त वे चोरीसे विदेशी शक्करका अुपयोग करनेके अपराधके लिअे अेक हलवाअीको खूब खरी-खोटी सुना रहे थे।

जब हमने खाकीबाबाका अुल्लेख किया, तो अुनका नाम सुनते ही सोमवारगिरि बाबाने अुनके नामको श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया और कहा — "वे तो श्रेष्ठ साधु हैं। तपस्वी हैं। खूब लोक-कल्याण करते हैं।" बादमें फिर कहा — "हां, वे राजयोगी हैं। खूब प्रवृत्तिमें पड़ते हैं। यहां तो निःसंगी आदमी ठहरे। यह अेक व्याघ्रचर्म और यह कमण्डलु — बस यही मेरा परिग्रह है। अगर यहा मिलने-जुलनेवाले ज्यादा आने लगेंगे, तो यहांसे भी गायब हो जाअूंगा। जी चाहता है कि अिस परिग्रहको भी फेंक दूं।" अिसके बाद अुन्होंने अपनी पहचानके अनेक साधुओंकी चर्चा की। अुनके कार्योंका परिचय कराया, और अप्रत्यक्ष-रूपसे यह भी बता दिया कि साधुओंमें भी जुदे-जुदे आदर्श होते हैं।

मैंने अुनसे कहा — "आप लोगोंको धर्मोपदेश देते हैं; मैं भी जब पाठशालामें काम करता हूं, तो लड़कोंको धार्मिक शिक्षा देता हूं। फर्क

अितना ही है कि मैं पढ़ी हुअी बातें कहता हूं और आप अनुभवकी। मुझे भी कुछ सूचनायें दीजिये।"

अुन्होंने कहा — "मैं जानता हूं कि तुम लड़कोंको भगवद्गीता सिखाते हो, और अुसका अर्थ समझा देते हो। लेकिन अिसमें श्रेय नहीं है। भगवद्गीता जो निवृत्ति-धर्म सिखाती है, अुसके लायक तो बड़े-बूढ़े भी नहीं होते, तो फिर भला लड़के कहांसे हों? 'कर्मण्यकर्म यः पश्येद् कर्मणि च कर्म यः' जैसे अथवा —

कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः।
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः॥

जैसे श्लोक लड़कोंको तुम किस तरह समझा सकते हो? लड़कोंके सामने निष्काम कर्मकी बातें करनेसे पहले अुन्हें सकाम कर्तव्य कर्मकी अच्छी शिक्षा दो। तुम्हारे वेदान्तसे लड़के निकम्मे हो जाते हैं। अुनकी संकल्पशक्ति नष्ट हो जाती है। वे जिस बातका अिरादा करते हैं, अुसे अंजाम नहीं दे पाते, और नाहक सारा दिन बकझक ही किया करते हैं। गीताजीका अुपदेश तो योग्य व्यक्तियोंको ही करो।"

यह तो मुझे अेक नयी दिशाका दर्शन हुआ। मैं विचारमें डूब गया। मैंने पूछा — "तो क्या लड़कोंको गीता पढ़ायें ही नहीं?" अुन्होंने कहा — "नहीं, मैं अैसा नहीं कहता। लड़के गीताजीके श्लोक कण्ठ जरूर करें। मैं सिर्फ यह कहता हूं कि अुन्हें निवृत्ति-धर्मकी दीक्षा न दो।"

अिसके बाद अुत्तराखण्डकी यात्राके विषयमें हमने अुनसे खूब पूछ लिया। जैसे-जैसे बातें होने लगीं, वैसे-वैसे हमें प्रतीति होती गयी कि बाबाजी कितने अधिकारी पुरुष हैं। बड़ी रात तक हम वहां बैठे, और आखिर अुन्हें वन्दन करके धर्मशालाको लौटे। धर्मशालामें अितनी भीड़ हो गयी थी कि अगर हम पहलेसे ही अपने बिस्तर लगाकर न गये होते, तो हमें सोनेकी जगह भी न मिलती।

सवेरे जल्दी अुठकर फिरसे महाराजके दर्शन करके अुनकी आज्ञा लेने गये। बाबाजी ध्यान-विसर्जन करके अुठ रहे थे कि हम लोग पहुंचे। बातचीत शुरू करते ही वाले थे कि अितनेमें वहां अेक नेवला आया। बाबाजीने कहा — "यह भगवद्-दर्शन है।" फिर बाबाजीने हमें चाय

दी। मैंने कहा — "मैं तो चाय नहीं पीता।" जवाब मिला — "यह कोअी तुम्हारे मुल्ककी चाय नहीं है। यह हिमालयकी चाय है। अिसमें न शक्कर है, न दूध। यह थोड़ी-सी पी लो, यात्रामें फायदा करेगी।" चायके साथ अुन्होंने अेक बादामके तीन टुकड़े करके प्रसादके रूपमें हरअेकको अेक-अेक टुकड़ा दिया। दूसरी भी अेक विचित्र बूटी (भंग नहीं) चायमें डाली। हमने श्रद्धापूर्वक प्रसाद मानकर चाय ली; महाराजको प्रणाम किया और आज्ञा मांगी। अुन्होंने प्रेमसे हमारे कन्धों पर हाथ रखा और कहा — "सर्वत्र परमात्मा है!"

१६

गोहत्या

पदमवोरीसे मुक्तेसर। कितना अन्तर है! अुन्नति और अवनति! जैसा कि पहले कह चुके हैं, पदमवोरी तीन पहाड़ोंके बीच अेक पहाड़ी नदीके किनारे बसा हुआ महादेवजीका स्थान है। वहांसे हमें मुक्तेसर जाना था। मुक्तेसर कम-से-कम सात हजार फुटकी अूंचाअी पर है। अुसे मुक्तेसर क्यों कहते हैं, अिसकी हमने चर्चा की। मैंने कहा — "मुक्तीश्वर अथवा मुक्तिकेश्वर परसे यह नाम पड़ा होगा।" बावाजीने कहा — "वहां मोतीके समान कोअी तालाब होगा; अुस परसे मोतीसर नाम पड़ गया होगा। या मौक्तिकेश्वर भी हो सकता है।" हमारे साथ अलमोड़ाके भट्टजी थे। अुन्होंने कहा — "अक्सर नाम तो सादे ही होते हैं। बादमें आप-जैसे भाषाकोविद अुसी नामको कोअी-न-कोअी सुन्दर रूप दे देते हैं।" मूल नाम क्या रहा होगा, हम नहीं जानते। यहां तालाब तो नहीं है, सिर्फ मुक्तेश्वर महादेव हैं। ठेठ पर्वतकी चोटी पर विराजे हैं। यह भैरव घाटी भी है। मुक्तेसरके प्राकृतिक दृश्यको 'स्वर्गीय' कहनेमें कोअी अत्युक्ति तो है ही नहीं, अुलटे अल्पोक्ति हो सकती है। लेकिन — आजकल हिमालयमें भी 'लेकिन' कहनेका प्रसंग आता है — आज यह

स्थान नरकसे भी अधिक बुरा हो गया है! नीचे स्वर्ग और अूपर नरक — अलंकारशास्त्री अिसे कौनसा अलंकार कहेंगे?

मुक्तेसरमें सरकारी बैक्टेरिओलोजिकल डिपार्टमेण्ट (जन्तुशास्त्र-विभाग) है। अिस विभागके अन्तर्गत भयानक गोहत्या होती है। अिसका क्या कारण है? गोरी फौजकी गोमांसकी मांग पूरी करना? नहीं। हिन्दुस्तानकी गरीब गायों और बैलों पर क्रूर मानवका आहार बननेके अलावा *तरह-तरहकी बीमारियोंकी दवा करनेकी जिम्मेदारी आ पड़ी है।* यूरोपियन लोगोंने देखा कि अुनके बहुतसे घोड़े 'रिण्डर पेस्ट' नामकी बीमारीसे मरते हैं। अुसका अुपाय अुन्हें यह मिला कि बैलके बदनसे अुसका खून लेकर अुसका 'सीरम' बनाया जाय और वह घोड़ेके बदनमें दाखिल किया जाय। अैसे फालतू पशु तो हिन्दुस्तानमें ही मिल सकते हैं! वहां मैंने अेक व्यक्तिसे सुना कि शुरूके सोलह वर्षोंमें 'रिण्डर पेस्ट' के टीकेकी सारी दुनियाकी मांग पूरी करनेके लिअे ४० हजार बैलोंका खून निकाला गया था। खून निकालनेकी यह क्रिया बहुत ही क्रूर होती है। पहले बैलको खूब खिला-पिलाकर पुष्ट करते हैं। फिर अुसकी अेक नस काटकर अेक दो डोल खून निकाल लेते हैं। बादमें मरहम-पट्टी करके जानवरको दुरुस्त करते हैं। थोड़े दिन बाद फिर पहलेकी तरह खून निकाल लेते हैं। तीसरी बार सारा खून निकाल लिया जाता है, क्योंकि अुस वक्त तक जानवर अितना निःसत्त्व हो जाता है कि चौथी बारके लिअे अुसके शरीरमें खून *ही नहीं रह जाता!*

हम शामको समय मुक्तेसर पहुंचे। वहां अेक सज्जनके घर रातको आराम किया। भोजनका प्रबन्ध अुन्होंने बहुत भक्तिपूर्वक और अच्छे ढंगसे किया था, परन्तु भात बिलकुल पका न था। बातचीतमें मालूम हुआ कि पहाड़ी लोग अैसा ही भात पसन्द करते हैं। अगर हमें पहाड़ी *भूख न लगी होती, तो* अितना चावल चबानेकी मेहनत करनेसे दांतोंने अिनकार ही कर दिया होता। भुज्जी (भाजी) बड़ी मजेदार बनी थी। अुन सज्जनके दीवानखानेकी चारों दीवारोंका निचला हिस्सा काठका था। सो भी तकियेकी तरह तिरछा। अगर अिस ठंडे प्रदेशमें दीवारसे टिककर बैठना हो, तो अैसी कोअी-न-कोअी तरकीब आवश्यक है।

दूसरे दिन सवेरे हम पहले जन्तुशास्त्रका महकमा देखने गये। हमारे यजमान हमें वहांकी सारी बातें समझाते थे। मैं शून्यमनस्क होकर सुन रहा था। मेरी दृष्टिके सामने तो गोहत्याका कल्पना-चित्र ही खड़ा होता था। अेक पहाडी पर अेक बुर्ज था। अुस पर अेक बड़ा भारी घंटा टंगा हुआ था। मैंने पूछा — "यह किसलिअे है?" अुन्होंने कहा — "यदि जंगलमें आग लग जाय, कोअी दुर्घटना हो जाय या दूसरा कोअी संकट आ पड़े, तो यह घंटा बजानेसे सब लोग अिकट्ठा होते हैं।" जहां चालीस हजार गोकुलका महार होता है, वहां दूसरे किसी संकटकी जरूरत ही क्या है? जी चाहा कि अुस बुर्ज पर चढ़कर और अुस घंटेको बजाकर मैं बाअीस करोड़ हिन्दुओंको वहां जमा करूं, और यदि वे न सुनें तो हिमालयमें अदृश्य रूपसे विचरनेवाले तैंतीस करोड़ देवताओंको गोमाताका आर्तनाद सुनाअूं।

मनमें यह विचार चल रहा था, अितनेमें हम मुक्तेश्वर महादेवके पास जा पहुंचे। वहां मनको कुछ आराम अवश्य मिला। मुक्तेश्वर महादेवके पास भैरव घाटीवाला स्थान है। पहाड़ पर जहां अूंचे-से-अूंचा शिखर हो और पास ही नीचे अेकदम सीधा कगार हो, अुस स्थानको भैरव घाटी कहते हैं। प्राचीन कालमें और आज भी भैरव सम्प्रदायके लोग प्रायः अैसे स्थान पर भैरवजीका जप करते-करते अूपरसे नीचे कूद पड़ते हैं। माना यह जाता है कि अिस तरह आत्महत्या करनेमें पाप नहीं, अपितु पुण्य है। यह मान्यता आजके कानूनके अनुसार भले ही गलत हो, परन्तु मानस-शास्त्री अुसके आधारभूत तत्त्वको सहज ही समझ सकते हैं। दुनियासे सब तरह निराश होकर कायरतावश किसी मनुष्यका आत्महत्या करना और प्रकृतिके विशाल, अुच्च, अुदात्त तथा रमणीय सौंदर्यको देख तदाकार होकर प्रकृतिके साथ अेकरूप होनेकी अिच्छाका प्रबल हो अुठना, किसी तरह प्रकृतिका वियोग सहा ही न जाना, और अैसे वक्तमें किसी मनुष्यका अिस क्षुद्र देहके बन्धनको भूलकर सारूप्य प्राप्त करनेके लिअे अनन्तमें कूद पड़ना — ये दो बातें नितान्त भिन्न हैं। दोनोंका परिणाम चाहे अेक ही हो। हर तरहके विनाशको हम मृत्युके अेक ही नामसे पुकारते हैं; परन्तु वस्तु अेक ही नहीं होती। कअी बार मरण जीवन-रूपी नाटकका विष्कम्भक

होता है, और कअी बार वह अुस नाटकका भरत-वाक्य — जीवन-साफल्य — होता है।

मनुष्यकी आशा दुरन्त कहलाती है। सचमुच मनुष्यकी आशाका पार नहीं है। मनुष्यकी हरअेक आशाको सफल बनानेकी शक्ति जीवनमें नही है। जीवनकी समृद्धिकी भी मर्यादा होती है। मनुष्यकी आशाके सामने जीवन दरिद्री है। लेकिन मरणकी समृद्धि आशाको तृप्त करनेमें समर्थ होती है। जहा जीवन हार जाता है, वहां मरणकी जीत होती है। जीवन असंख्य बार मनुष्यको निराश करता है। मरणके पास निराशा है ही नहीं।

हम भैरव घाटी पर चढे। यहां भी गोहत्यावाली बात मनको व्यग्र कर रही थी। बेचारे बैल नाहक मारे जाते हैं। अेक दृष्टिसे देखने पर अिन बैलोंका आत्मयज्ञ स्वात्मार्पणकी पराकाष्ठा सूचित कर रहा था। हिन्दुस्तानके जानवर मरें और दुनियाके — सारी दुनियाके — घोड़े, खच्चर आदि अनेक प्रकारके प्राणी भयंकर रोगोंसे बचें, यह कोअी साधारण पुण्य नहीं कहा जायगा। परन्तु यह कौन स्वेच्छापूर्वक किया गया बलिदान है? आज मेरा भारत भी अमर्याद आत्माहुति दे रहा है। भारतके भरोसे ब्रिटिश साम्राज्य टिका हुआ है। भारत स्वयं मरकर असंख्य लोगोंको जिलाता है। परन्तु अिसका पुण्य भारतके पल्ले नहीं पड़ता। दुर्बलता और अज्ञानवश किया गया त्याग किस कामका? 'न च तत् प्रेत्य नो अिह'।

बाबाजीने भैरवके छोटे-से मन्दिरका घंटा बजाया और लौटनेकी सूचना दी।

१७

धर्मशालामें अपिकुल

मुक्तेसरसे हम काठगोदामके अपने पुराने रास्ते पर आये। भीमतालके फिर दर्शन किये, और हिमालयके पहाड़से अुतरकर मानवी सृष्टिमें प्रवेश किया। रास्तेमें पूर्व परिचित स्थान देखकर मनमें कुछ और ही भाव अुत्पन्न होते थे। अलमोड़ा जाते समय हिमालयका प्रथम दर्शन हुआ था। अितनी विशालता और अुत्तुंगता पहली बार ही देखी थी। लौटते वक्त यह सब परिचित-सा लगता था। फिर भी अुसका रस कुछ कम नहीं हुआ था। पहलेका रस अपूर्वताका था, अबका रस परिचयका था। जाते समय जिन-जिन झरनों और वृक्षोंने हमारा सत्कार किया था, अुनसे फिर मिलते समय हृदयमें कृतज्ञताकी अुमंग अुठे बिना कैसे रहती? मैं परिचित वृक्षोंसे मिला। परिचित झरनोंका, स्वाभाविक तृष्णासे नहीं, किन्तु प्रेमतृष्णासे, पान किया। जाते वक्त जिन पुलों पर बैठकर हमने थकावट दूर की थी, अुन पुलोंके फिर आने पर अुन पर अेक-दो मिनट न बैठते, तो अपनेको कृतघ्नता-दोषके पात्र समझते।

रास्तेमें स्वामीके साथ संस्कृत साहित्यकी चर्चा शुरू हुअी। मैंने कहा — "गगनचुम्बी पेड़ोंके झुंडोंकी यह घनी झाड़ी देखकर मुझे बाण-भट्टकी साहित्य-शैलीका स्मरण हो आता है। हर स्थानमें अपूर्वता और अुदारता भरी हुअी है। परन्तु वह अतिशयताके कारण अपना सौन्दर्य छिपानेमें ही खप जाती है।" अिसके बाद संस्कृत कवि और राजाश्रयका सवाल छिड़ा। कालिदास राजाश्रयी कवि था, परन्तु भवभूति लोकाश्रयी कवि हुआ। कालिदास पुष्पक विमानमें बैठकर अथवा मेघका वाहन बनाकर विहंगम दृष्टिसे भारतवर्षका अवलोकन करता है। लेकिन भव-भूति वल्कलधारी राम, लक्ष्मण और जनक-तनयाके साथ दण्डकारण्य और पंचवटीके अरण्योंमें से रास्ता निकालता हुआ धीरे-धीरे पैदल चलता है। दोनोंकी शैलीमें यही भेद है। भवभूतिकी शैली राजकुमारकी तरह

'धीरोद्धता नमयतीव गतिर्धरित्रीम्' है, जब कि कालिदासकी वर्णन-शैली शकुन्तलाके भावकी नाओं 'न विवृतो मदनो न च संवृतः' जैसी है। वनश्रीको देखकर संस्कृत कवियोंकी याद आयी। और अुस प्रसंगसे लोकाश्रयका विचार करते हुअे राजाश्रयकी निन्द्य रीतिसे निन्दा करनेवाले बिल्हणकी याद आयी। परन्तु अुसी क्षण स्मरण हुआ कि संसारमें विरक्त साधकोंको संस्कृतका असा काव्यरंग शोभा नहीं देता। दोपहर हो गयी थी। सूर्यनारायणने और अेक आंख खोल दी थी। बाबाजीने कहा — "पिपासितैः काव्यरसो न पीयते।" नीचे घाटीमें रामगंगा प्रचण्ड गड़गड़ाहट करती हुआी दौड़ रही थी। परन्तु अुसका पानी हमारे लिअे तो शरत्कालके मेघके समान दुष्प्राप्य ही था। स्वामी बोले — "अिस जंगलकी शोभा देखकर मुझे बाणभट्टकी कादम्बरीका स्मरण नहीं होता, बल्कि मुझे तो रामगंगाकी यह गर्जना सुनकर कुलाबा स्टेशनके दस-बीस अेंजिनोंका कोलाहल याद आता है।"

अेंजिनका नाम निकलते ही तुरन्त स्मरण हुआ कि प्राकृतिक सृष्टि छोड़कर हम मानवी सृष्टिकी तरफ अग्रसर हो रहे हैं। यदि यहां अग्निरथके समयका ध्यान न रखा तो काम न चलेगा। मैंने अण्टीसे घड़ी निकालकर देखी और बाबाजीसे कहा — "बाबाजी दौड़ लगाओ, नहीं तो हम समय पर काठगोदाम नहीं पहुंच पायेंगे।" तीनों दौड़े, और मुश्किलसे स्टेशन पहुंचे ही थे कि अितनेमें रेलगाड़ीने सीटी दी और वह हमारे देखते हंसती-हंसती निकल गयी। जरा-सी देरके लिअे गाड़ी चूक गये। हमें रेलगाड़ीके निकल जानेका कुछ भी बुरा न लगा। लेकिन हमें परेशानीसे बचानेके विचारसे हमारा जो कुली आगे दौड़ता आया था अुसका मुंह अुतरा देखकर हमें दुःख हुआ। फिर भी हम हंस पड़े, और अुससे कहा — "चलो भाओ, अभी तो काफी दिन है। यहां पड़े रहनेसे तो बेहतर है कि हल्द्वानी चलकर रात वहीं बितायें।" हल्द्वानी काठगोदामसे पहला स्टेशन है। व्यापारकी अेक छोटी-सी मण्डी है। वहां पैदल जा पहुंचे। 'खाया-पिया और (स्वप्नसृष्टि पर) राज किया।'

स्वप्नसृष्टिमें जानेसे पहले कल्पना-सृष्टिमें जानेका अेक प्रसंग आया। हम धर्मशालामें जगह प्राप्त करके रसोआी बना रहे थे। धर्मशाला

यानी विविध जन-समाज। वहां तीनों लोकोंकी चर्चा चलती है। धर्मशालामें वैरागी आते हैं, व्यापारी आते हैं, सरकारी अफसर आते है, वे पुराने जमींदार घोड़े पर पुराना जीन कसकर तीर्थयात्रा करने आते है जिन्हें यह सुध नहीं कि पुराना जमाना बीत चुका है; अैसे नौजवान भी आते हैं, जो जानते तक नहीं कि पुराने जमानेजैसी कोअी चीज थी भी या नहीं; भिखारी भी आते है, और भिखारियोंसे भी गये-बीते पुलिसवाले आते है। मुसाफिर आपसमें अथवा अपने कुलियोंसे, ग्राहक दुकानदारोंसे, दुकानदारकी स्त्री अपने लड़कोंसे, पुलिसके जवान भिखारियोंसे, और कुत्ते अेक-दूसरेसे आठ बजे तक लड़ लेते हैं। आठ बजने पर पहले क्षुधा शान्त होती है, बादमें चूल्हे शान्त होते हैं। अधिकांश दीये भी शान्त होते हैं; (क्योंकि अेक पैसेमें दीया, बत्ती और तेल देनेवाले दुकानदारके पास आठ बजे तकका ही बजट होता है।) और अिसके पश्चात् विरोध शान्त होकर वार्तालाप शुरू होता है। धर्मशालाका यह आन्तर-राष्ट्रीय कानून है कि आठ बजेके बाद अेक बार सुलह हो जाने पर कोअी किसीके साथ न लड़े।

तुरन्त ही मुसाफिर-मुसाफिरमें वार्तालाप शुरू हो जाता है। बाबा लोग देश-देशान्तरका हाल और अुसके साथ अपनी टीका-टिप्पणियां पेश करते हैं। जहां लड़के हों, वहां बादशाह और बीरबल तो जरूर होंगे ही। स्त्रियां हमेशा यात्राकी ही बातें करेंगी, और अगर अेक ही गांव की हों, तो सास-बहूके सनातन संग्रामकी बातें करेंगी। हिन्दुस्तानके किसी भी प्रान्तकी स्त्रियां दूसरे किसी भी प्रान्तकी स्त्रियोंसे धर्मशालामें बातचीत कर सकती हैं। भाषाकी अड़चन तो सुशिक्षित लोगोंके लिअे होती है। स्त्रियां यानी पुरानी दुनिया। वहां विचार, भावनायें, वहम, रीति-रिवाज और आदर्श सब अेक ही होते हैं। फिर बातचीतमें कौनसी बाधा हो सकती है? जब दो अंग्रेज मिलते हैं, तो वे अुस दिनकी हवाके बारेमें चर्चा करने लगते हैं; अिसी प्रकार जब दो स्त्रियां मिलती हैं, तो तुम्हारे बालबच्चे कितने हैं, लड़कियां कहां-कहां ब्याही हैं, अुन्हें ससुरालमें सुख है या दुःख, घरकी पुरखिनने तीर्थयात्रा की है या नहीं, आदि बातें होने लगती हैं। दुकानदारकी स्त्री अिस चर्चामें शामिल होकर अपने दुःखकी कहानी पांच हजार छह सौ बारहवीं बार सजल आंखोंसे सविस्तर,

ज्योंकी त्यों सुनाती है। और अधिकतर अुसका वर्णन अकारथ नहीं जाता। प्रेमल यात्री — दुष्ट दुकानदार द्वारा ठगे गये यात्री — दुकानदारकी स्तोरा दुःख देखकर और मनमें अिस बातका सन्तोष मानकर कि वह भी अुन्हींकी तरह दुकानदारसे द्वेष करती है, बिदा होते समय अुसे कुछ-न-कुछ दे जाते हैं। दुकानदारोंकी भी हरअेक प्रान्तके विषयमें अपनी राय बनी होती है, और वे भी अुसे ठीक बाबा-वैरागियोंकी तरह ही स्पष्टतासे प्रकट कर देते हैं; क्योंकि पीनल कोडकी कोअी भी धारा बाबा-वैरागियों तथा दुकानदारोंके लिअे नहीं है।

जब देशी रियासतोंके रअीस धर्मशालामें टिकते हैं, तो रियासतोंके तारतम्यकी चर्चा छिड़ती है, और दरबारके भीतरी षड्यंत्रों तथा प्रपंचोंका भेद वे 'सिर्फ आपसे' कहते हैं। वे अितने बेवफा नहीं होते कि चाहे जिससे अपने दरबारकी किम्वदन्तियां कहते फिरें, लेकिन 'आप' तो खानदानी आदमी ठहरे। 'आपसे' अैसी बातें कहनेमें भला क्या हर्ज हो सकता है?

हमें अेक देशाभिमानी और सनातन-धर्माभिमानी व्यापारीसे पाला पड़ा। हस्तिनापुरकी तरफ अुनका अपना अेक 'गुरुकुल' था — नहीं, नहीं, 'गुरुकुल' नहीं 'ऋषिकुल'। 'गुरुकुल' तो आर्यसमाजियोंके होते हैं। अतअेव सनातनियोंके तो ऋषिकुल ही हो सकते हैं, और वैष्णवोंके आचार्यकुल। बाबा-वैरागी हों तो अुनके 'मुनि-मण्डल' या 'साधु-आश्रम' होते हैं। और गंगापुत्रोंकी संस्था हो, तो वह होगी 'पण्डाकुमार महाविद्यालय'। परन्तु यह सब ज्ञान मुझे हरद्वार जाने पर हुआ। हस्तिनापुरके व्यापारीने कहा — "पार साल ही हमारा ऋषिकुल स्थापित हुआ था। पर अब तक हमें कोअी अध्यापक नहीं मिला है। अेक ब्राह्मण फिलहाल काम चला रहे हैं; परन्तु लड़के अैसे हैं कि अुनके कान काट लें। आपके-जैसा कोअी अंग्रेजी पढ़ा-लिखा — ग्रेज्युअेट — साधु वहां आवे, तो लोगों पर असर पड़े और प्रचारके लिअे जाने पर फण्ड भी अच्छा अिकट्ठा हो। आप आ जायं तो हमें रोज आपके दर्शनोंका लाभ हो, 'भव-बन्ध' कट जायं, और मिड़ी आर्यसमाजी अदरक खाये हुअे चूहेकी तरह चुप हो जायं। हमने ऋषिकुल अिसीलिअे स्थापित किया है। हमारे यहां दो आर्यसमाजी प्रचारक आये थे। अुन्होंने सनातन धर्मकी निन्दा करना शुरू किया।

हमारे अृषिकुलमें अैसा कोअी पंडित न था, जो अुन्हें जवाब देता। अिसलिअे हमने अर्जेण्ट तार देकर हरद्वारसे तीन सनातनी अुपदेशक बुलवाये और अुन्हें अिस कदर लड़वाया कि कुछ न पूछिये! तीन दिन तक शास्त्रार्थ हुआ!" मैंने बीचमें पूछा—"किस खास विषयको लेकर?" अुन्होंने कहा—"अजी साहब, आपके शास्त्रकी बातें हम क्या जानें? हम थोड़े ही संस्कृत पढ़े हैं? लेकिन आखिर आर्यसमाजियोंको ही चुप होना पड़ा और हमारी जीत हुअी। विपक्षी तो नाहक कहते रहे कि जीत तो हमारी ही हुअी। लेकिन आप ही बताअिये कि अगर अुनकी जीत हुअी होती, तो भला अुनके पंडित चुप बैठते?"

अिस महायुद्धका वर्णन मैंने अुदासीनतासे सुना, यह देख अुनका मजा कुछ किरकिरा हो गया। अुन्होंने पूछा—"आप आर्यसमाजी तो नहीं हैं?" मैंने कहा—"जी नहीं, मैं तो कट्टर सनातनी हूं।" अुन्होंने कहा—"तब तो आप जरूर हस्तिनापुर आअिये। हम आपके लिअे बढ़िया कुटी बनवा देंगे, अलग रसोअिया रख देंगे, और अंग्रेजी समाचार-पत्र मंगवा देंगे। आपके व्याख्यानोंका लाभ हमें मिलेगा।" मैंने कहा—"दूसरा कोअी संकल्प न होता, तो शायद मैं आ जाता; परन्तु मुझे तो अुत्तराखण्डकी यात्रा करनी है और तदुपरान्त पुरश्चरण करना है।"

अपने सारे विचार अुन पर प्रकट करनेकी हिम्मत मुझे कहांसे होती? और अगर प्रकट करता भी, तो वे कौन अुन्हें समझनेवाले थे?

दूसरे दिन हम रेलमें बैठे और चले। हिमालयकी यात्राके बाद रेलकी यात्रा केवल नीरस ही नहीं, असह्य भी हो जाती है। अेक-अेक खेतके अन्तरसे चलनेवाले हम तीनों आधी बेंच पर सिकुड़कर बैठे थे। जंगलके वृक्षोंकी सरसराहटके बदले डिब्बेके भीतर मुसाफिरोंका शोर सुनाअी दे रहा था! बरेली होकर हम लुक्सर गये, और वहां गाड़ी बदलकर आधी रात बीते हरद्वार पहुंचे।

रामकृष्ण-सेवाश्रम

तीर्थयात्रासे पुण्य होता है, लेकिन चाहे जिस ढंगसे यात्रा करनेसे नहीं। जो पैदल चलकर जाता है, अुसे पूरा सौ फीसदी पुण्य मिलता है। जो आदमीके कन्धे पर या पालकीमें बैठकर जाता है, अुसे आधा पुण्य मिलता है। जो पशुकी सवारी पर 'तीरथ' करता है, अुसका पुण्य लगभग नहींके बराबर होता है; और (आजकी स्थितिमें अितना और जोड़ देना चाहिये कि) रेल या मोटरमें बैठकर जो तीर्थ करे, अुसे पुण्यके बदले पाप ही लगेगा। रेलकी यात्रामें किसी तरहकी अुच्च या धार्मिक भावनाका परिपोष नहीं होता। और आज तो रेलकी यात्राका अर्थ है, स्वाभिमानका नाश। हम पैसे देकर अेक 'चिट' खरीदते हैं, और अुसे लगाकर पारसलकी तरह डिब्बेमें दाखिल हो जाते हैं। फर्क अितना ही है कि दूसरे पारसल मुकाम आने पर बाहर फेंक दिये जाते हैं और हम अपने-आप बाहर निकल आते हैं! गाड़ीमें बैठे-बैठे हम भविष्यकालकी तरफ नहीं जाते, बल्कि बाहरकी दुनिया ठंडी गाहें भरती हुअी भूतकालकी तरफ दौड़ती जाती है। जहां संयोगवशात् दो आदमियोंके निकट आने पर भी अुनमें प्रेमभाव पैदा नहीं होता, अुस स्थानको नरक ही कहना चाहिये। तीर्थस्थान तक रेलगाड़ी ले जाना असुरोंका काम है। रेलमें बैठकर यात्राका पुण्य अर्जन करना गयासुरके दिये हुअे मोक्षके समान है। *गुजरातने डाकोर और सिद्धपुरको तो भ्रष्ट किया ही है, अब पश्चिमी* धाम श्री द्वारकाजीको भ्रष्ट करनेका प्रयास शुरू हुआ है। कलियुग जो ठहरा! रवीन्द्रनाथ कहते हैं — "कलियुग यानी कल (यंत्र) युग।"

हरद्वार अर्थात् गंगाद्वार। भागीरथी गंगा गंगोत्रीसे निकलकर महादेवकी जटामें अर्थात् हिमालयके अरण्योंमें फंस गयी। फिर दो पहाड़ों या पहाड़ियोंके बीचसे ज्यों-त्यों रास्ता निकालकर आगे बढ़ी है। जब टिकट लेनेके लिअे लोग सकरे रास्तेसे निकलते हैं, तब अैसी भीड़ और

अड़चन होती है, अुसी तरहकी अड़चन पहाड़ोंमें गंगाजीको होती है। जब कोअी बड़ा भारी जुलूस तंग गलीसे निकलकर विशाल मैदानमें प्रवेश करता है, तो लोग छुटकारेकी सांस लेते हुअे स्वतंत्रतासे दसों दिशाओंमें बिखर जाते हैं। वही दशा हरद्वारके पास श्री गंगाजीकी हुअी है। जिस तरह गोशालासे छूटे हुअे बछड़े केवल स्वतंत्रताका अनुभव करनेके लिअे ही अिधर-अुधर चौकडी भरते हैं, अुसी तरह यहा गंगा अनेक धाराओंमें दौड़ती है। अुसके प्रत्येक प्रवाहका अुल्लास भी बाल्वृत्ति ही प्रकट करता है। नीलधारा कुछ गम्भीर जरूर है, लेकिन जिस तरह छोटे-छोटे लड़के अपने दादाकी पगड़ी बांधकर, हाथमें लकड़ी लिये, गम्भीरतासे चलते हैं, कुछ अुसी तरहकी यह कृत्रिम गम्भीरता है। नीलधारा अपनी गम्भीरताको निबाह भी नही सकती। हरद्वार जिस प्रकार गंगाजीके लिअे पहाड छोड़कर मैदानमें प्रवेश करनेका प्रथम द्वार है, अुसी प्रकार यात्रियोंके लिअे हिमालयकी यात्राके आरम्भमें तराअी छोड़कर पहाडमें प्रवेश करनेका भी द्वार है। अुत्तराखंडकी यात्रा यहींसे आरम्भ हुअी मानी जाती है। हरद्वार तक रेल है, फिर भी यह तीर्थस्थान अपेक्षाकृत बहुत स्वच्छ है। भले अिसका अेक कारण यहाकी म्युनिसिपैलिटीकी स्थायी आमदनी हो, परन्तु मुख्य कारण तो यह है कि हरद्वार साधुओंका स्थान है। बाबा और संन्यासियोंमें दूसरी तरहकी गन्दगी चाहे जितनी हो, लेकिन अिसमें शक नहीं कि वे शारीरिक स्वच्छता खूब रखते हैं।

हम रातको दो बजे हरद्वार पहुंचे। वहा हम किसीको जानते न थे, और न किसी पंडेके मेहमान ही बनना चाहते थे। अिसलिअे हमने पहलेसे ही पत्र लिखकर हरद्वारके पास कनखलके रामकृष्ण-सेवाश्रममें ठहरनेका प्रबन्ध कर लिया था। रातको दो बजे हमें स्टेशनसे आश्रम तकका रास्ता कौन बताये? हमने अेक कुली लिया, अुसे चार आने देना कबूल किया और अंधेरेमें चल पड़े। हमें आपसकी बातचीतमें अंग्रेजी शब्दोंका प्रयोग करते सुनकर यह कुली बोला — "Oh, Sir, you are gentlemen. I knows English, Sir. I am gentleman coolie, Sir. I have ten years live in Dehradun, Sir." हम हंस पड़े। अुसका अंग्रेजी वाक्-प्रवाह बराबर चलता रहा। फिर

भी हमने अुससे हिन्दीमें ही बोलनेकी अरसिकता या अगम्यता दिखाओी। पर यह बात तो अब कैसे छिप सकती थी कि हम अंग्रेजी जानते हैं? वह हमसे अंग्रेजीमें ही बोलता था।

जब सेवाश्रमके पास पहुंचे, तो हमारा 'जंटलमन कुली' बोला— 'Give me four anna bit, Sir. Copper is very heavy, Sir.' स्वामीके मुहसे जवाब निकल पड़ा—'Oh! I see. But certainly it is not heavier than the luggage you brought!'

रातके ढाओी बजे किसे जगाते? आश्रमके रुग्णालयके अेक चबूतरे पर हम सो गये। सवेरे किसीके अुठनेसे पहले ही चोरोंकी तरह अिधर-अुधर घूम-घामकर शौच हो आये, मुह धोया और मठपति स्वामी कृष्णानन्दजीसे मिलने गये। अुन्होंने प्रेमसे हमारा स्वागत किया और हमें अपना सामान रखनेके लिअे अेक कमरा दिखाया।

जब स्वामी विवेकानन्द सारे भारतवर्षकी और बादमें सारी दुनियाकी यात्रा करके लौटे, तो अुन्हें यह बात सूझी कि अिस नये युगमें साधुओंके लिअे नयी अुपासनाकी जरूरत है। जीते-जागते परन्तु भूखे-प्यासे, दीन, अपंग या रोगी-नारायणकी सेवा करना ही आज मोक्षका अुत्तम मार्ग है—दयाभावसे नहीं, किन्तु सेवाभावसे; किसी पर अुपकार करनेके लिअे नहीं, किन्तु सेवा करनेके सुयोगके लिअे निहोरा मानकर। स्वामीजीके गुरु-भाअियोंने और शिष्योंने काशी, प्रयाग, पुरी, हरद्वार, मायावती, वृन्दावन आदि तीर्थस्थानोंमें रुग्णालय अथवा सेवाश्रम स्थापित किये हैं।

हरद्वारका सेवाश्रम ब्रह्मदेवकी सृष्टिकी तरह शून्यमें से अुत्पन्न हुआ है। मायावतीवाले स्वामी स्वरूपानन्दजीने कहींसे दो सौ रुपये जमा किये थे। अुन्हें लेकर स्वामी कल्याणानन्द हरद्वार आये। वे न तो हिन्दी जानते थे और न वैद्यक। सरस्वतीका भी अुन पर कृपा-प्रसाद नहीं था। अिस-लिअे आज भी वे 'मुग-दुर्लभ' ही हैं। लेकिन अुनकी श्रद्धा अदम्य थी। देवदारके अेक सन्दूकमें कुछ 'होमियोपैथिक' दवाअियां रखकर अेक झोंपड़ीमें अुन्होंने अपना धन्धा शुरू कर दिया। धीरे-धीरे धन्धेमें बरकत हुओी। किसी मारवाड़ीने दस हजारका अेक मकान बनवा दिया। कल्याणानन्दजीने वैद्यकका अध्ययन किया। अुनके हाथको यश मिला,

और काम भी धड़ल्लेके साथ चल निकला। निश्चयानन्द नामके अेक महाराष्ट्रीय संन्यासी अुनके सहायक हैं। ये स्वामी विवेकानन्दके शिष्य हैं। स्वयं मराठी ठीक-ठीक बोल नहीं पाते। लेकिन अुन्हें बंगला अच्छी आती है। ये सज्जन भी मितभाषी ही हैं। सुबहसे लेकर शाम तक काम ही काम करते रहते हैं। थकान-जैसी कोअी चीज वे जानते ही नहीं। अलबत्ता, दस-पांच सवालोंका जवाब देना पड़ जाय तो थक जाते हैं। अुनके गुरुजीने अुनके लिअे नाम भी यथार्थ ढूंढ़ निकाला है।

सेवाश्रममें सैंकड़ों रोगी — क्या साधु और क्या गृहस्थ — रोज आते हैं। अुनमें जो ज्यादा बीमार होते हैं, अुन्हें रुग्णालयमें रखा जाता है। तपेदिकके लिअे अलग मकान है। धनवान लोग कितनी ही फीस क्यों न दें, पर कल्याणानन्दजी गरीबोंको छोड़ पहले धनवानोंके यहां कभी नहीं जाते। जिस समय हम सेवाश्रममें गये, अुस समय रामकृष्ण-मिशनके अध्यक्ष और श्री रामकृष्ण परमहंसके प्रिय शिष्य स्वामी ब्रह्मानन्द वहां आये हुअे थे। अुन्हें 'राखाल राजा' अथवा 'राजा महाराज' भी कहते हैं। हमें अुनके दर्शनोंका अपूर्व लाभ मिला। दूसरे साधु काशीके अद्वैताश्रमके मठपति शिवानन्दजी थे। स्वामी विवेकानन्दने अिनका नाम 'महापुरुष' रख दिया था। अुनसे श्री रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द और अुनके संघ (मिशन) के विषयमें बहुत-सी तफसीलें सुननेको मिलीं। कॉलेजमें स्वामी विवेकानन्दके लेख पढ़कर ही नास्तिकताका मेरा ज्वर और संशयवादका गर्व अुतर गया था। रामकृष्ण परमहंसको मैं अिस युगके अवतारी पुरुषके रूपमें पूज्य मानने लगा था। अैसी स्थितिमें जो रामकृष्ण परमहंसके प्रत्यक्ष सहवासमें रह चुके थे, अुन पुरुषोंका दर्शन मेरे लिअे बहुत प्रभावोत्पादक हुआ हो तो अुसमें आश्चर्य क्या? मैंने स्वामी ब्रह्मानन्दसे अेकान्तका समय मांग लिया। अुनसे मुझे बहुत आश्वासन मिला। मैं रामकृष्ण-मिशनमें शामिल नहीं हुआ, फिर भी वे मुझे अपना ही मानने लगे। मुझ घुमक्कड़को भी मानो घर मिल गया। हिमालयकी यात्रा करनेका अपना संकल्प मैंने स्वामी ब्रह्मानन्दको बतलाया। अुन्होंने आशीर्वाद दिया और हमने यात्राकी तैयारी शुरू की।

तैयारी

हमें बदरीनारायणकी यात्रा करनी थी। हरद्वारसे बदरीनारायण कितनी दूर है, किस रास्तेसे जाना पड़ता है, बीचमें कितने 'पड़ाव' आते हैं, साथमें क्या-क्या रखना चाहिये, सामान अुठानेके लिअे कुली कहां मिलेंगे, वे कितनी मजदूरी लेंगे, रास्तेमें देखने लायक क्या-क्या है, यह सब हमें जान लेना था। कनखलके पास सरकारने अेक बांध बनवाकर गंगा नदीका प्रवाह रोका है। यहींसे गंगाजीकी प्रख्यात नहर कानपुर तक जाती है। रुड़कीके पास सोलाना नामकी अेक नदी अिस नहरके रास्तेमें आती है। परन्तु अिंजीनियर लोगोंने सोलाना नदी पर अेक बड़ा भारी पुल बनाकर यह सारी नहर अिस पुल परसे निकाल दी है। अिस भगीरथ-कार्यका वर्णन मैं अन्यत्र कर चुका हूं।*

कनखलके पासवाले बांधके परे अेक टापू पर 'सप्तसर' नामका आश्रम है। वहांके स्वामी केशवानन्दसे कुछ सहायता मिलनेकी सम्भावना थी, असलिअे हम वहां गये। वहां केशवानन्द तो नहीं मिले, पर झाड़ीमें पीपलके चबूतरे पर बैठे हुअे दूसरे अेक सन्यासी मिले। अुनके शरीरकी गठन और अंगकान्तिसे साफ मालूम होता था कि वे 'खुशहाल' यानी खा-पीकर सुखी रहनेवालोंमें हैं। वे चबूतरे पर आरामसे बैठे थे। अपनी लम्बी चादर घुटनों और कमरके चारों ओर लपेटकर अुन्होंने अपने शरीरकी 'रॉकिंग चेअर' (झूलती आराम-कुरसी) बना रखी थी। अुसकी फलश्रुति यह है कि अिस आसनसे बैठकर मनुष्य घंटों बातें करता रहे तो भी वह थकता नहीं। अुनसे हमें कोअी खास जानकारी नहीं मिली। अुलटे रास्ता विकट है, जाना मुश्किल है, जानेवालोंमें से बहुतसे वापस आते ही नहीं, अिस तरह अुन्होंने हमें खूब डराया और यात्राका विचार छोड़ देनेकी बुद्धिमानीपूर्ण सलाह दी। तिस पर भी जब अुन्होंने हमारा

* देखिये 'जीवनलीला' का प्रकरण ३५।

अटल निश्चय देखा तो अेक अुर्दू शेर सुनाया, जिसका अर्थ यह था कि जब कमर कसकर कोअी काम अुठा लो, तो फिर अुसे कभी न छोड़ो—चाहे मौत ही क्यों न आ जाय।

अिस कीमती सलाहके लिअे अुनका आभार मानकर हम लौटे, और हरद्वारके बाजारकी ओर मुड़े। अुस समय कोट, कुरता आदि कपड़े पहनना मैं छोड़ चुका था। सिला हुआ कपड़ा मेरे काम नहीं आ सकता था, और ओढ़नेके लिअे मेरे पास काफी न था। अिसलिअे मैंने अेक कानपुरी शाल और दो मफलर खरीद लिये। अेक पतला-सा तवा, अेल्युमीनियमकी अेक पतीली, अेक ढक्कन, अेक रकाबी, पीतलकी अेक मोटी लुटिया और अेक छोटी-सी थाली, अितनी चीजें और खरीद लीं। (यात्रासे लौटते वक्त अिसी बाजारमें नमदेकी दो बढ़िया 'घुग्घी' मिल गयीं। हमने वे घुग्घियां लीं। 'घुग्घी' यानी माथेसे कमरके नीचे तक शरीर ढंकनेवाली नमदेकी लम्बी टोपी। यह मिली हुअी नहीं होती।) अितनेमें मनमें विचार आया कि चौमासेके दिन हैं, अपने पास मोमकप्पड़ हो तो अच्छा। मेरा यह विचार बहुत ही अुपकारक साबित हुआ। कपड़े, बिस्तर सब बांध लेनेके बाद हम अुस पर मोमकप्पड़ लपेट लेते थे। फिर चाहे जितनी बारिश हो और हम चाहे जितने भीगे हों, तो भी रातको हमें बिलकुल सूखा बिछौना मिलता था। कुनैनकी शीशी तो मेरे पास थी ही। मोमबत्तियां, दीयासलाअी, साबुन, कामके लायक चिल्लर और बाबाजीके लिअे ठोस बांसकी लम्बी लाठी, ये चीजें हमने रख लीं और यात्राके लिअे सज्ज हो गये।

सुना कि हरद्वारके बाहर भीमगोड़के पास कुलियोंका अड्डा है। वहां जाकर कुलियोंका भी अिन्तजाम कर लिया। अेक दिन और हरद्वार तथा कनखल देखनेमें बिताकर यात्राके लिअे प्रस्थान किया। हमें यात्रा पर जानेकी जल्दी थी, पर पाठकोंको तो अुसका वर्णन सुननेकी अुतावली हो ही नहीं सकती। वे हरद्वार और कनखलका सविस्तर वर्णन सुने बिना मुझे छोड़ेंगे नहीं, अिसलिअे पहले शान्तिपूर्वक अिनका वर्णन करना ठीक होगा।

गंगाद्वार

हरद्वार, कनखल और ज्वालापुर तीनोंकी अपनी अेक समष्टि है। हरद्वार तीर्थयात्रियोंका नगर है, ज्वालापुर पंडोंका धाम है, और कनखलको संन्यासियोंका स्थायी शिविर कह सकते हैं। तीनों पास-पास होने पर भी अलग-अलग हैं। तीनों स्थानोंमें मिश्र बस्ती है। तीनों जगह बड़ी-बड़ी धर्मशालायें हैं, सदावर्त हैं, और विद्यालय भी हैं। तीनोंमें कनखल और हरद्वार दो पुराने हैं, और पुराणोंमें दोनोंका माहात्म्य बहुत वर्णित है। कनखलसे थोड़ी दूर नदीके अुस पार आर्य-समाजियोंका गुरुकुल है। (अेक बहुत बड़ी बाढ़में यह गुरुकुल बह गया था। अिसलिअे अब यह संस्था गंगाजीके अिस पार कनखलमें आ गयी है।) हरद्वार और ज्वालापुरके बीच सनातनियोंका ऋषिकुल है, और खास ज्वालापुरमें ऋषिकुलके समान सनातनी ढंगका, परन्तु आर्यसमाजी मतका, ज्वालापुर महाविद्यालय है। तीनों संस्थाओंका अुद्देश्य अपने-अपने मतके अनुसार स्वधर्मका अुद्धार करनेवाले, कट्टर धर्मप्रेमी और धर्मोपदेशक तैयार करना है। तीनों संस्थाओंको प्रभावोत्पादक धर्मोपदेश करनेके लिअे अंग्रेजी भाषा और लौकिक विद्याके ठोस ज्ञानकी आवश्यकता जान पड़ती है। जब मैं पहले-पहल तीनों संस्थायें देखकर लौटा, तो मेरे मन पर यह छाप पड़ी कि तीनों संस्थाओंमें संस्थापकों या अध्यापकोंकी अपेक्षा विद्यार्थियोंमें धार्मिक आग्रह (धर्मोन्माद) कम था। अुनमें मताग्रहकी अपेक्षा स्वदेश-प्रेम अधिक था। आर्यधर्म या हिन्दू धर्मकी अपेक्षा राष्ट्रधर्मका प्रभाव अुन पर कहीं अधिक पड़ा था। अेक यात्रीके नाते मैं केवल अपने दिल पर पड़ी हुआी पहली छाप ही यहां बतला रहा हूं। अुसके बाद, अर्थात् यात्रा समाप्त होने पर, अिन तीनों संस्थाओंसे मेरा परिचय बढ़ा। अुनके विषयमें बहुत कुछ कहा जा सकता है। परन्तु यात्रा-वर्णनमें अुसका समावेश नहीं हो सकता।

अेक संस्थाने मेरा ध्यान विशेष रूपसे आकर्षित किया। वह है 'मुनि-मंडल-आश्रम'। यह संस्था हरद्वार स्टेशन और ऋषिकुलके बीचमें

है। 'मुनि-मंडल-आश्रम' विद्यालय नहीं है। वह अेक प्रकारका धर्म-तत्त्व-संशोधन-मन्दिर है। वहाका ग्रन्थ-भंडार सुन्दर है। अेकान्तमें बैठकर धर्म-चिन्तन और अध्ययन करनेवालोंके लिअे वह बहुत अुपयोगी हो सकता है। अिस संस्थामें हरिवंशकी अेक बड़ी पोथी है। पोथीके हरअेक पन्ने पर अेक या अधिक सुन्दर चित्र और अुसके आसपास तरह-तरहकी सुनहरी वेल-बूटी है। अक्षर बिलकुल मोतीके दाने-जैसे हैं। चित्रकारी जयपुरी पद्धतिकी अत्यन्त मनोहारी है। प्रत्येक चित्रके नीचे अुसका परिचय दिया गया है। ग्रंथ मराठी भाषामें होते हुअे भी अुसकी लिखावट मराठी ढंगकी नही है। अिसलिअे मैं समझता हूं कि यह अपूर्व ग्रंथ किसी मराठा सरदारने जयपुरी कारीगरोंसे लिखवाया होगा। मैंने बड़ौदा, जयपुर और बाकीपुरकी खुदावख्श लायब्रेरीके चित्र-संग्रह देखे हैं। काशी-नरेशके महलके भीतरकी दीवारों पर 'रामचरितमानस' के अनेक प्रसंगोंके जो चित्र बने हैं, वे भी देखे हैं। परन्तु फिर भी हरिवंशमें दिये गये चित्र और विविध प्रसंग देखकर मुझे बडी प्रसन्नता हुअी।

कौन जाने भारतीय कारीगरीकी 'आला दरजेकी चीजें' कहां-कहां पड़ी होंगी, कहा-कहा सड रही होंगी, और अुनमें से कितनी देशसे निर्वासित हो चुकी होंगी! मन अिस विचारसे अुद्विग्न हो अुठा। कितने ही ग्रंथ लन्दन म्यूजियममें या बर्लिनके म्यूजियममें पहुंच गये हैं। कितने ही चित्र और मूर्तियां आज बोस्टन-म्यूजियमकी शोभा बढ़ा रही हैं। अपनी अैसी विडम्बना होती देख भारतकी कला फूट-फूटकर रोती होगी। मनमें अिस विचारके आते ही मुंहसे सहसा सुविख्यात मराठी कवि केशवसुतकी यह पंक्ति निकल पड़ी —

'देवारे! मग ती स्फुन्दे
अेवढा तरी लाभूं दे।'*

वहांके साधु लायब्रेरियन मुझसे पूछने लगे — "आपने क्या कहा?" मैंने जवाब दिया — "कुछ नहीं, स्वामीजी! मैं यही चाहता हूं कि

---

* अर्थात् फिर वह सिसकती हुअी कहती है — 'हे भगवान, कम-से-कम अितना तो नसीब होने दे!'

अैसे रत्न देशके देशमें ही रहें। जैसे यशोदा मैया श्रीकृष्णका जतन करती थी, वैसे ही आज अिस हरिवंशका जतन होना चाहिये।"

ये हुअी थोड़ी-बहुत आधुनिक पद्धतिकी संस्थायें। पुरानी पद्धतिके अखाड़े, गुफायें और साधुओंकी कोठियां तो यहां चाहे जितनी हैं। सिक्खोंकी धर्मशालायें, अुदासी-पंथके मकान, और शांकर-मतके दसनामी अखाड़े तो अैसे क्षेत्रोंमें होते ही हैं। अन्नसत्र देखनेके लिये मैं घाट तीर पर गया। अहल्याबाअी अर्थात् महाराष्ट्रकी धर्मश्रद्धा, महाराष्ट्रका दान-नैपुण्य! अहल्याबाअी अर्थात् महाराष्ट्रकी नारी-प्रतिष्ठा! अिस पुण्यश्लोक रानीने अपनी प्रजाका मातृवत् पालन किया। वैराग्य-साधनामें जीवन व्यतीत किया, कुशलतासे राज्यकी रक्षा की, और आसेतु-हिमाचल तीर्थ-तीर्थमें अन्नसत्र खोलकर अपनी कीर्तिको अजरामर बनाया। आज भी अहल्याबाअीके नामसे काशीसे गंगाजलकी अेक कावड़ भरकर प्रतिदिन रामेश्वर जाती है। परन्तु अहल्याबाअीने अिनमें से अेक भी काम अपने नामके लिअे नहीं किया। अेक ब्राह्मणने अहल्याबाअीकी स्तुतिमें अेक सुन्दर ग्रंथ लिखा और वह अुन्हें दिखाने गया। अुस साध्वीने ब्राह्मणको दक्षिणा दी, और वह ग्रंथ लेकर पानीमें डुबा दिया।

बाबाजीने मुझसे पूछा — "तुमसे किसने कहा कि हरद्वारमें अहल्याबाअीका अन्नसत्र है?" मैंने कहा — "किसीके कहनेकी जरूरत ही नहीं है। मुझे अपने-आप लगा कि यहां अहल्याबाअीका अन्नसत्र जरूर होगा।" मुझे बचपनकी अेक बात याद आ गयी। बाबाजीसे मैंने कहा — "जब मैं छोटा था, तो अेक बार गोकर्ण-महाबलेश्वर गया था। वहां भी अहल्याबाअीका अेक अन्नसत्र था। हम अुनके पास ही ठहरे थे। दोपहरको बारह बजे अेक भूखा यात्री अन्नसत्रमें आया। वहांका व्यवस्थापक अितना श्रद्धालु न था कि वह अुसका हुआ भूखा फिर पहनकर अुस अतिथिको भोजन कराता। अिसलिअे अुसने मेरे जैसा अतिथिको भोजन करानेकी युक्ति निकाली। मैं मुश्किलसे आठ बरसका रहा हूंगा। तब मेरा जनेअू भी नहीं हुआ था। अिसलिअे मैं तो आठों पहर पवित्र ही था। मैंने तुरन्त कपड़े फेंक दिये और अन्नसत्रकी रसोअीमें से अेक पत्तल परोस लाया। पत्तल अतिथिके सामने रख दी,

और फिर कपड़े पहनकर मांके पास आ गया। मैंने मांसे पूछा — "यह मन्दिर किसका है?" जवाबमें मांने अहल्याबाअीके विषयमें अेक लम्बा गीत गाया। अुस दिनसे मैं अहल्याबाअीको पूज्य भावसे देखता आया हूं। अहल्याबाअी धनगर (गडरिया) जातिकी थी। परन्तु आज गोकर्णमें कट्टर ब्राह्मण भी अहल्याबाअीकी मूर्तिकी पूजा करते हैं।"

अरे! लेकिन मैं हरद्वारकी बात छोड़कर गोकर्ण कहां जा पहुंचा? यात्रा करनेवाला मनुष्य हमेशा स्थानान्तर करता रहता है। अुसी तरह अुसे विषयांतर करनेकी भी आदत पड़ जाती है। प्रवासी बातूनी तो होता ही है। आप हरद्वारके किसी भी अखाड़ेमें चले जाअिये। वहां आपको देश-देशान्तरकी बातें सुनानेवाले संन्यासी मिलेंगे। ज्वालापुरमें आप अैसे पंडे पायंगे, जो बिना अेक भी लम्बी यात्रा किये आपको सारे हिन्दुस्तानका हाल सुना सकते हैं। संन्यासी आपसे निरपेक्ष भावसे बात करेंगे। पर पंडे तभी बात करेंगे, जब देखेंगे कि आप मालदार हैं। परन्तु अुनकी बातोंमें माल (तथ्य) होता ही है, सो माननेकी कोअी वजह नहीं।

शामको धूप कम हो जाने पर गंगाजीके घाट पर हजारों, बल्कि लाखों, यात्री अिकट्ठा होते हैं। बम्बअीमें जिस प्रकार चौपाटी पर भीड़ लगती है, अुसी तरह हरद्वारमें 'हरकी पैंडी' के पास लोगोंकी भीड़ लगती है। जगह-जगह साधु-सन्त और धर्म-प्रचारक व्याख्यान देते हैं, भजन-कीर्तन करते हैं, फेरीवाले अपना व्यापार करते हैं, और स्त्रियां मंगतों तथा साधुओंसे होनेवाला सारा अुपद्रव सहकर भी अपनी प्रसन्नता कायम रखती हुअी गंगाजीके प्रवाहमें दीपदान करती हैं।

दीपदान मुग्ध स्त्री-संसारका अेक अनुपम काव्य है। असंख्य जीव जीवन-स्रोतमें पड़कर, सुख-दुःखकी लहरों पर अुतराते हुअे, भाग्य-पवनके झोंकों पर अिधर-अुधर नाचते हैं; कुछ शुरूमें ही डूब जाते हैं, कुछ दूसरे बिना किसी तरहका अनुभव प्राप्त किये ही अुस पार पहुंच जाते हैं, कुछ दो-दोकी जोड़ीमें चलते हैं, और कुछ तो अपनी छोटी-सी नैया ही जला डालते हैं, और जिस प्रकार दो क्षणोंकी दीप्ति दिखाकर लुप्त हो जाते हैं। कुछ अैसे भी होते हैं। जो अपने सौम्य तेजके आसपास

पर्याप्त स्नेहका संग्रह रखकर बहुत दूर तक गही-सलामत जाते हैं, और दूसरोंके लिअे दिशा-दर्शक बन जाते हैं। दीपदान जिसका अेक प्रतीक है। अेक ओरसे असंख्य दीपोंकी विशृंखल पंक्ति भागरोतमें बहती जाती है, और दूसरी ओर मन्दिरोंमें असंख्य घंटोंकी तालबद्ध झंकार हवाकी लहरों पर होती हुअी अनन्तके हृदयमें प्रवेश करती है, और गंगामैया अेक-दूसरेसे लड़-भिड़कर चिकने, सुन्दर और अहिंसक बने हुअे कंकरोंके साथ खेलती तथा हंसती हुअी यह सब सुनती रहती है। कैसा काव्यमय दृश्य है! आकाशमें तारे भी अेक क्षणके लिअे स्तब्ध होकर यह दृश्य देखते हैं। अपना सनातन संगीत स्थगित करके तारे यह घंटानाद सुनते होंगे, और अपना दिव्य नर्तन स्थगित करके वे अिस दीपमालाकी शोभा निहारते होंगे! गंगामैया अपने कलरव द्वारा कहती होगी — "हिन्दुस्तानमें आयी हुअी देश-देशान्तरकी सन्तानें मेरे प्रिय कंकरोंकी तरह सहिष्णु और अहिंसक बनकर, अेकत्र व हिल-मिलकर रहेंगी, अैसा सिद्ध करनेवाली मैं भारतकी संस्कृति हूं।"

चन्द्रमा अस्त हुआ और हम गंगाजीके किनारे-किनारे चलते हुअे मनस्थल आ पहुंचे। रास्तेमें साधुओंकी चटाअियोंके बने हुअे कुछ झोंपड़े देखे। झोंपड़ोंकी रचना, अुनकी सादगी, सुन्दरता और साफ-सुथरापन देख कर मैं खुश हुआ। साधुओंमें मकानोंके विषयमें अुच्च कोटिकी अभिरुचि होती है, और अपनी कुटीके आसपासकी स्वच्छता वे बहुत परिश्रमपूर्वक रखते हैं। यदि आधुनिक तिरस्कार-भावनाको छोड़कर आप अुनसे मिलें, तो आप अुनमें पर्याप्त मात्रामें कुलीनता, बहुश्रुतता, तितिक्षा आदि गुण पायेंगे। जिस प्रकार साधुओंकी यह झूठी धारणा होती है कि मोजे, जूते, टोप पहनने और चश्मा लगानेवाले लोग नास्तिक और धर्मभ्रष्ट होते हैं, अुसी प्रकार आधुनिक सुधारवादियोंकी समझमें प्रत्येक गेरुअे वस्त्रोंके अन्दर अेक निठल्ला, धूर्त, अकर्मण्य और पाखंडी व्यक्ति छिपा होता है। यदि बाह्य आकारकी पूजा अज्ञानकी द्योतक है, तो बाह्य आकार परसे कायम की हुअी तिरस्कार-भावना भी अुतनी ही अज्ञानकी द्योतक है।

मुझे यह देखकर थोड़ा विषाद हुआ कि हरद्वारमें भी अंग्रेजी बोल सकनेवाले साधुओंकी प्रतिष्ठा ज्यादा है। परन्तु हमें तो अनेकोंदा साधुओंने

अपेक्षा हमारा सामान ढो सकनेवाले कुलीकी ही चिन्ता अधिक थी, अिसलिअे दूसरे दिन हम कुलीकी तलाशमें कनखलसे भीमगोड़की तरफ गये।

२१

प्रस्थान

हरद्वारसे गंगाके किनारे-किनारे चलकर गंगोत्रीकी खोजमें जो सबसे पहला यात्री निकला होगा, क्या हमें अुसका अितिहास कहीं मिल सकता है? मेरी धारणा है कि गंगोत्री, जमनोत्री, केदार, बदरी, अमरनाथ, खोजरनाथ, मानस-सरोवर, राकसताल, अमरकंटक, महाबलेश्वर, त्र्यम्बक आदि सारे तीर्थस्थान नदीका अुद्गम खोजनेकी प्राकृतिक जिज्ञासाके ही परिणाम हैं। अुत्तर ध्रुवके आसपास रहनेवाले आर्य लोग अिस बातकी शोध करनेके लिअे बाहर निकले कि हमें अुष्णता देनेवाला सूर्य कहांसे अुदय होता है और कहां अस्त होता है, और चारों महाद्वीपोंमें फैल गये। अुसी प्रकार हिन्दुस्तानकी सन्तानें अपने-अपने ढोर-बछेरू लेकर या अकेले ही नदीके अुद्गमकी शोध करती हुअी घूमी हों तो कोअी आश्चर्य नहीं।

मैं अेक बार कह चुका हूं कि यात्राका अुद्देश्य धार्मिकके अतिरिक्त सैनिक भी हो सकता है। हमारे आद्यपुरुषोंने सोचा होगा कि सैनिक दृष्टिसे आसपासके प्रदेशकी रक्षा करनेमें समर्थ कोअी अूंचा स्थान, अथवा बहुत बड़ी संख्यामें अेकत्रित लोगोंके अुपयोगमें आने लायक कोअी जलाशय, किसी योग्य अथवा अयोग्य राजाके हाथमें रहनेकी अपेक्षा धर्मनिष्ठ प्रजाकी श्रद्धाका केन्द्र बन जाय तो अधिक सुरक्षितता रहेगी। 'धर्मो रक्षति रक्षितः' सूत्रका प्रत्यक्ष प्रमाण वहां मिल जाता होगा। केदार और बदरी तिब्बतके साथ व्यापारके नेतिघाटवाले रास्ते पर हैं। यह रास्ता साल भरमें आठ-नौ महीने तो बर्फ ही बर्फसे ढंका रहनेके कारण बन्द ही रहता है, और सिर्फ चौमासेमें खुला रहता है। अुन्हीं दिनों शान्तिमय व्यापार या अशान्तिमय आक्रमण हो सकता है। अगर अिन चार महीनोंमें ही हजारों यात्री अिस रास्ते आवागमन करेंगे, तो अिसका स्वाभाविक रीतिसे रक्षण होगा और व्यापार भी सहज गतिसे बढ़ेगा। यही बात

कैलास और मानस-सरोवरकी है। लिपूघाट और धूंटाधुरा घाट हमें मानस-सरोवर और राक्षसतालके बीचसे ग्यानिमा और गड़तोक-जैसी तिब्बती मंडियोंकी तरफ ले जाते हैं। मानस-सरोवर और कैलास जानेवाला यात्री यदि वहीं 'कैलासवासी' न हो जाय, तो अवश्य यात्राके पुण्यके साथ-साथ तिब्बतके अमूल्य गालीचे और दूसरी चीजें लेकर आयेगा।

अगर पहेलीके साथ अुसका जवाब भी दिया गया हो, तो अुसे बूझनेके प्रयत्नका आनन्द जाता रहता है। यही बात आज यात्रियोंकी हो गयी है। आज हिमालयकी यात्रामें भी यात्राके मार्ग बहुत बड़े अंशमें सरल हो गये हैं। पुराने जमानेमें गंगोत्री या बदरीनारायणकी यात्रा करनेवाले अपनी जायदाद अपने बेटे-बेटियोंमें बांट देते, सब सगे-सम्बन्धियोंसे मिलकर विदा मांगते, और लड़ाअी पर जानेवाले सिपाहीकी तरह मौतका न्योता स्वीकार करके ही प्रस्थान किया करते थे। अगर अुन्हें मौत न आती, तो अुसमें अुनका कोअी कसूर न होता था। अिसे तो मृत्युकी ही लापरवाही कहना चाहिये! आज बदरीनारायणसे भी यात्राके दिनोंमें तार भेज सकते हैं, और मनीऑर्डरसे पैसा मंगा सकते हैं। गंगोत्री-जमनोत्रीकी तरफ अितनी सुविधा नहीं है। अिसलिअे अभी वहां पुरुषार्थ शेष रह गया है।

* * *

भीमगोड़ेसे जरा आगे आने पर हमें कुलियोंका ठिकाना मिला। हमें जरूरत तो अेक ही कुलीकी थी, पर हमें दो भाअी मिल गये। अुन्होंने कहा — "आपका बोझा तो अेक ही कुलीके लायक है, लेकिन हम दो जने अुसे अुठायेंगे। बस, आप हमें अेक ही आदमीकी मजदूरी दीजिये।" वे हमारी भाषा नहीं जानते थे, अिसलिअे स्वामीने मराठीमें कहा — "काका, अच्छा तो है। हम अिन्हीं कुलियोंको ठीक कर लें। हमें अेकके बदले दो कुली मिल रहे हैं। रास्तेमें हम दोनोंको अच्छी तरह खिलायेंगे, तो दोनों खूब खुश रहेंगे। हम हर मुकाम पर अिन्हें मिठाअी खिलायेंगे। ये लोग मिठाअीको हलुवा-पूरीसे भी अधिक राज-विलासी भोजन समझते हैं।" हमने अपना बोझा पंचासिंह और बहादुर-सिंहके सिर पर चढ़ाया और अपना भाग्य साथ लेकर रवाना हुअे। 'भगवति भरतो भव:!'

२२

हृषीकेशके रास्ते पर

बायीं तरफ घनी झाड़ीमें से होकर रेलकी पटरियां देहरादूनकी दिशामें अिस तरह जा रही थीं, मानो जंगलमें कोअी नागिन चल रही हो। जब तक रेलकी ये पटरियां दीखती रही, तब तक बहुत चाहने पर भी मनमें यह भाव पैदा नही हो पाता था कि हम किसी पवित्र यात्राके लिअे रवाना हुअे है। परन्तु थोड़ी देर बाद ही हमारे रास्तेने रेलवे लाअिनसे असहयोग कर दिया, और अेक सुन्दर पुलकी राह जंगलमें प्रवेश किया। हमें रवाना होनेमें थोड़ी देर हो गयी थी, अिसलिअे सत्यनारायण पहुंचनेसे पहले ही प्रायः दोपहर हो चुकी थी।

यहांका मन्दिर सुन्दर है। मन्दिरके भीतर लक्ष्मीनारायणकी संगमरमरकी मूर्तियां अितनी आकर्षक हैं कि बरबस मनमें प्रेमभाव अुपजाती हैं। मन्दिरके पुजारी महाराज दक्षिणाकी आशासे हमारी तरफ ताक रहे थे। क्या लक्ष्मीपति सत्यनारायणसे भी हमारे वदन-सरोज अधिक आकर्षक थे? बिलकुल नहीं। परन्तु मन्दिरमें खड़ी संगमरमरी लक्ष्मीकी अपेक्षा हमारी गिरहमें छिपी हुअी रौप्य लक्ष्मी पुजारीके लिअे अधिक आकर्षक थी। हमने कुअें पर जाकर हाथ-पैर धोये और जरा विश्राम करनेके लिअे मन्दिरमें जा बैठे। वहां अिस चिर-परिचित गानका स्फुरण हुआ :

आजिचा सुदीन रे सुदीन
आमुचा अुदयला *भाग्याचा
आमुचा अुदयला भाग्याचा
आमुचा अुदयला भाग्याचा
लक्ष्मीनारायण पाहिला,
दयाघन देव वैकुंठिचा
दयाघन देव वैकुंठिचा
दयाघन देव वैकुंठिचा

लोकगीतकी रागमें तार स्वरमें गानेवाले मुझ-जैसे संगीत-शत्रुकी पुकार सुन कअी लोग वहां अिकट्ठा हो गये। मेरा स्वर-तार टूट गया, और लज्जासे कुछ झेंपता-सा मुह लेकर मैं वहासे खिसक गया।

धर्मशालामें पहुंचते ही हमारा स्वागत आमन्त्रित मेहमानोंकी तरह बड़े प्रसन्न वदनसे किया गया। दाहिनी तरफके छज्जे पर हमें अेक कमरा दिया गया। अेक आदमी आकर वहां चिराग जला गया। दूसरेने आकर पूछा — "कौन-कौनसे बरतन-भांडा चाहिये?" हम लेनेको तैयार होते, तो वह हमें सीधा भी दे देता। पर अिस तरहके स्वागतके लिअे हम तैयार न थे, अिसलिअे मैं हैरान होकर अेक कोनेमें जा बैठा। अनजान समाजके साथ घुल-मिल जानेकी कला स्वामी अच्छी तरह जानते हैं। बाबाजीकी और मेरी अेक और कठिनाअी थी। हमें हिन्दी नहीं आती थी। अिसलिअे घूमने-फिरनेके काम सहज ही स्वामीको करने पड़ते थे। वही हमारे 'मुखिया' बने। सारी यात्रामें अुन्होंने अपना काम बड़ी योग्यतासे किया। कभी-कभी अुनके अुत्साहके कारण हमें कुछ कष्ट भी सहना पड़ता था। लेकिन कुल मिलाकर अुनके नेतृत्वके कारण हमारी सुविधाकी योजना और शान्तिका निर्वाह सुचारु रूपसे होता था।

बाबाजीने रसोअी बनाअी। लकड़ियोंके धुअेंने अपना 'मानपत्र' अच्छी तरह लिखा, अिसलिअे बेचारे बाबाजीको नयी बहूकी तरह मुंह रो लेना पड़ा। तीनोंने मिलकर भोजन किया। मुख्य व्यवस्थापक संन्यासी जब हमारी कुशल और आवश्यकतायें पूछने आये, तो अुन्हें जवाब देनेका मुख्तारनामा स्वामीको सौंपकर मैं पैर पसार सो गया। धर्मशालामें अितने अधिक यात्री अिकट्ठा हो गये थे कि वहां तीसरे दरजेके मुसाफिरखानों जैसी ही भीड़-भाड़ थी। अिसलिअे आसपास घूमने या निरीक्षण करनेको जरा भी जी न चाहा।

सवेरे अुठते ही स्वामीने हमारे सामने यह सारी जानकारी पेश की, जो अुन्होंने रातमें जुटाअी थी। यहां अितनी धर्मशालायें हैं, अितने मकान हैं; पास ही 'झाड़ी' नामका अेक 'बेर-वन' है, अुसमें साधु लोग मौजसे डाकर रहते हैं; पंजाबी धर्मशालाकी आय बहुत है, आदि आदि सारी बातें सुनाअीं। अुठकर शौच हो आये, तो हाथ-पैर धुलानेके लिअे भी अेक आदमी तैयार था! अितनी आवभगत यात्रियोंके लिअे अच्छी नहीं, यह विचार अुस समय जो मनमें आया, सो आज भी कायम है।

हमारे काव्यों, पुराणों अथवा आजकलकी अद्‌भुत कथाओंमें शौच-विधिका अुल्लेख कहीं आता ही नहीं। स्मृति-वचनोंके बाहर मानो अिसके लिअे कहीं स्थान ही नहीं। अिस धर्मशालाके आसपास भी अिस आवश्यक क्रियाके लिअे कोअी नियत स्थान या किसी प्रकारकी व्यवस्था नहीं है। दूसरी सारी सुविधायें तो आवश्यकतासे कहीं अधिक हैं। परन्तु यह प्राकृतिक आवश्यकता प्रकृतिके हवाले ही छोड़ दी गयी है। अिसलिअे मैं मन ही मन सोचने लगा — "अगर मैं संन्यासी होअूं और मेरे आशीर्वादसे कहीं कोअी हताश व्यापारी करोड़पति बने, तो अुसे मैं पुण्यका यही मार्ग सुझाअूं कि वह अेक भी नयी धर्मशाला न बनवाये, बल्कि भारतमें जहां-जहां धर्मशालायें हों वहां-वहां शौचक्रियाके लिअे आदर्श स्थान बनवा दे। अैसा करनेसे वह स्वयं तो स्वर्गको जायगा ही, पर साथ ही अिस देशके लाखों यात्रियोंको सवेरेके नरकसे अुबार लेगा।" मुझे काशीके त्रैलिंग स्वामीका स्मरण हो आया।

जान पड़ता है कि हृषीकेशकी भूमि पर रामचन्द्रजीके भाअी भरतजीका स्वामित्व है। साधुओंको मढ़ैया बनाना हो, तो भरत-मंदिरके व्यवस्थापकोंकी अिजाजत लेनी पड़ती है। भरतजीके दर्शन करके हम आगे बढ़े। जब हम किसी स्थानमें अनेक बार जाते हैं, तो अुसके प्रथम दर्शनका कौमार्य नष्ट हो जाता है। परन्तु काली-कमलीवालेकी धर्मशालामें अुसके बाद कअी बार जाने पर भी पहले दिनका स्मरण मेरे मनमें आज भी अुतना ही ताजा और नया है।

अेक ओर पर्वतकी वृक्षराजि और दूसरी ओर गंगाजीके पुलिनकी शोभा देखते हुअे हम आगे चले। बायीं तरफ धनराजगिरिकी कोठी आयी। वैसे अुसका रखा हुआ नाम तो 'कैलास-कीर्ति-आश्रम' है, लेकिन वह 'धनराजगिरिकी कोठी' के नामसे ही पहचानी जाती है। यदि अुसे विद्वान संन्यासियोंका कॉलेज कहा जाय, तो अुसके स्वरूपकी पूरी कल्पना आ सकती है। अत्यन्त प्राचीन कालसे संन्यासियोंने अिस गंगातटको ध्यान तथा अध्ययनके लिअे चुना है। यहां अन्नसत्र (सदावर्त)की स्थापनासे पहले यहांके साधु अपनी प्रातःकालकी साधना समाप्त करनेके पश्चात् ग्यारह मील चलकर भिक्षाके लिअे हरद्वार जाया करते थे। और वहांसे

अुतने ही मील लौटकर अपनी गुफामें प्रवेश करते थे। अुनकी यह मुसीबत देखकर हृषीकेशमें अन्नसत्र खोला गया। वहांसे झाड़ीमें घूम-घूमकर साधुओंके पास साग-रोटी पहुंचायी जाती थी। बादमें यह व्यवस्था की गयी कि साधु लोग ही अन्नसत्रमें आकर भिक्षा ले जायं। कुछ अन्नसत्रोंमें अेक निश्चित मात्रामें ही भोजन दिया जाता है, और कुछमें साधु जितना चाहें अुतना। यदि कोअी साधु बीमार हो या बंगाली हो, तो अुसे भात मिलता है। पेटू अिन दोनोंमें से किसी अेक वर्गमें घुसकर भात प्राप्त कर लेते हैं। दूसरे अन्नसत्रमें जाकर दाल-रोटी लेते हैं, और गंगाजीके तट पर बैठकर अुसे आरोगते हैं। रोटीके किनारों पर तो गंगाजीकी मछलियोंका ही अधिकार होता है।

हृषीकेशकी झाड़ीमें साधु लोग सुन्दर कुटिया बनाते हैं। जंगलसे जो घास लाते हैं, अुसीमें से थोड़ी घास लेकर रस्सियां बना लेते हैं। लकड़ीके लिअे दूर जाना ही नहीं पड़ता। गंगाजीमें कितने ही शहतीर चिकने हो-होकर बहते आते हैं। अुन्हींको बेगारमें पकड़ लेनेसे मुफ्तमें मसाला निकल आता है। अेक दिनमें अेक मढ़ैया तैयार! दस-बीस मढ़ैयोंके बीचमें अेकाध व्याख्यान-मण्डप भी बना होता है। वहां बैठकर कोअी विद्वान आचार्य रोज संध्या-समय प्रस्थानत्रयीका विवरण करता है, और साधुओंके छोटे-बड़े दल 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' का सिद्धान्त अनेक प्रकारसे समझ लेनेका प्रयत्न करते हैं। वहां निरा चर्वित-चर्वण ही होता हो, सो भी नहीं। नयी-नयी शंकायें अुठती हैं, और अुनके जवाबमें नयी-नयी दलीलें दी जाती हैं। कुछ अर्द्धदग्धोंका पाश्चात्य विचारोंसे समन्वय करनेका बेढंगा प्रयत्न भी यहां चला करता है। कुम्भमेलेके अवसर पर अैसे नये-नये विषयोंका विनिमय होता है, और शास्त्रार्थमें रुचि बढ़ती है। अिस प्रकार हमारे साधुओंने हमारे अध्यात्म-शास्त्रको जीता-जागता और सुरक्षित रखा है।

कहते हैं अेक बार औरंगजेब अध्यात्मके अिस विद्यापीठ पर अपनी फौज लेकर आया। साधुओंने अपनी झोंपड़ियां जला डालीं और खुद अंदरके गांवोंमें लापता हो गये। सैनिक अुनके पीछे कहां तक दौड़ें? औरंगजेब हारकर लौट गया, और तीन ही दिनोंमें यह विद्यापीठ फिर ज्योंका

त्यों तैयार हो गया। जो लोग अपरिग्रह-व्रतका पालन करते हैं, वे परतन्त्र या परास्त कैसे हो सकते हैं?

यहासे आगे जाने पर मार्गमें रामाश्रम मिला। यह छोटी-सी संस्था स्वामी रामतीर्थकी स्मृतिमें आगरेके लाला बैजनाथने स्थापित की है, और अिसमें अुन्होंने अपनी अेक छोटी-सी लायब्रेरी भी रखी है। लाला बैजनाथने हिन्दू धर्मका गहरा अध्ययन किया था। अुनकी 'प्राचीन और अर्वाचीन हिन्दू धर्म' नामक अंग्रेजी पुस्तक मैंने पढी थी। जब यह सुना कि लालाजी आश्रममें ही हैं, तो अुनसे मिलनेकी अिच्छा हुअी। अुनके साथके वार्तालापसे मेरे मन पर यह छाप पड़ी कि रामतीर्थके अिस शिष्यके मनमें कुछ अैसा खयाल है कि रामतीर्थके निर्माणमें अुसका भी कुछ हाथ या हिस्सा था। और, यह सच भी हो सकता है। अुन्होंने हमें भोजनके लिअे निमंत्रित किया। हमने अुनके यहां भोजन किया। फिर अुनकी रुचि-अरुचिका विचार किये बिना ही अुनके दीवानखानेमें थोड़ा सो भी लिया। फिर कुछ बातें कीं, और अुसके बाद रवाना हुअे।

आजकलके साधु शास्त्राध्ययन नही करते। जीवनमें अुन्हें जो अवकाश मिलता है, अुसे वे यों ही नष्ट कर देते हैं। यदि अुन्हें अुचित शिक्षा दी जाय, तो देशका सर्वांगीण अुद्धार हो। बस, कुछ अैसी ही धुन लालाजी पर सवार थी। अिसलिअे शिक्षित विरक्त युवकोंका संग्रह करके अिस प्रकारके आश्रमों द्वारा नये-नये स्वामी रामतीर्थोंका निर्माण करनेके लिअे वे अुत्कण्ठित थे। मुझसे यह छिपा न रहा कि हमारी तरफ वे कुछ लोभकी दृष्टिसे देख रहे थे। लेकिन हम किसी जगह ठहरनेके लिअे आये ही न थे। हम तो चलनेकी धुनमें थे। अिसके कअी साल बाद अिन्हीं लाला बैजनाथसे मैं आगरेमें मिला। अकबरकी मशहूर कब्रके रास्ते पर यमुनाजीके किनारे अुन्होंने जो अेक निवृत्ति-स्थान बनवाया था वह मुझे दिखाया, और अुस वक्त भी मुझे वहां रहनेका प्रलोभन दिया। अिस निवास-स्थानकी रचना बड़े मजेकी थी। अेक पहाड़ी पर अेक कमरा बना था। यह कमरा पुस्तकालयके लिअे बनाया गया था। अिस कमरेके नीचे पहाड़ीके गर्भमें अेक दूसरा कमरा था। अुस कमरेमें जमनाजीकी तरफसे आनेवाली शीतल वायु सदा मिलती थी। प्रकाश भी अुसी रास्ते

आता था। पास ही अेक कोठरी रसोअियेके लिअे बननेवाली थी। अुसकी सूचना थी कि अिस स्थानमें रहकर संस्कृत तथा अंग्रेजी धर्मग्रंथोंका गहरा अध्ययन किया जाय, और देश-विदेशमें धर्मका प्रचार किया जाय।

रामाश्रमके बाहर निकलते ही दाहिनी ओर चट्टानकी बगलमें बहनेवाली गंगाजीके किनारे हमने बढ़अियोंको बांसोंका बेड़ा बनाते देखा। मुझे तुरन्त रातकी मुसीबत याद आयी। मैं अेक बढ़अीके पास गया, और अुससे कहा —"भैया, अिन बांसोंमें से हमें अेक बित्ता लम्बी फूंकनी बना दोगे?" अुसने दो फूंकनी बना दीं। जिससे बाबाजीको चूल्हा सुलगानेमें बड़ी आसानी हुअी। अिस 'वेणु-धमनी' ने सारी यात्रामें हमारे लिअे अींधन प्रदीप्त करनेका काम किया। आखिर बाबाजीकी गफलतसे अेक फूंकनी आधी जल गयी, और बची हुअी किसीके पैरों तले कुचली गयी। दूसरीका क्या हुआ, याद नहीं। बांसकी फूंकनी साथ रखनेकी यह कल्पना मुझे सूझी, अिस कारण बाबाजी और स्वामी पर मेरी कुशलताका खूब सिक्का जम गया, और आज तक अुसमें वृद्धि ही होती गयी है।

यहांसे हम लक्ष्मणझूला पहुंचे। हृषीकेशसे लक्ष्मणझूले तक क्रमशः राम, भरत, शत्रुघ्न और लक्ष्मणके चार मन्दिर हैं। राम-मन्दिरके चारों तरफ बाजार है, और सामने छोटा-सा त्रिवेणी-संगम है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, भरतजी यहांकी सारी भूमिके मालिक हैं। शत्रुघ्नजीके सामने टेहरी दरबारकी ओरसे यात्रियों और मजदूरोंसे अिकरारनामा लिखवाया जाता है। और लक्ष्मणजी गंगा पार करनेवाले यात्रियों पर निगाह रखते हैं।

कुलीके साथका करार महत्त्वकी चीज है। टेहरी राज्यमें शिक्षाका ज्यादा प्रचार नहीं है। ये 'जंगली' कुली यात्रियोंके जान-मालको अक्सर 'शिरोभार्य' करके भगवानके अरण्य पार करते हैं। अुन पर राज्यका पूरा-पूरा नियंत्रण रहता है। अिसका कोअी भरोसा नहीं कि पूरी दुनियासे दूर, पापके प्रायश्चित्तके लिअे तीर्थयात्रा करनेको आने पर भी, अपनी आदतसे बाज न आनेवाले यात्री बेचारे मजदूरोंको ठगेंगे ही नहीं। अिसलिअे करारके बिना मजदूर अेक कदम भी आगे चलनेसे अिनकार करते हैं। गंगोत्री, जमनोत्री और केदार तथा बदरी, अिन चार स्थानोंकी यात्रा करके यात्री रामनगर, अल्मोड़ा या काठगोदाम पहुंचते हैं। लेकिन मजदूर

वहां तक नहीं आते। बदरीनारायणसे लौटते समय मिलचौड़ी अथवा गणाअी नामका अेक गांव आता है, वहीं तक टेहरी राज्यकी सीमा है। अिसलिअे टेहरीके मजदूर शायद परराज्यमें न्याय न मिल सकनेके डरसे आगे नहीं जाते। मिलचौड़ीमें नये मजदूर लेनेके सिवा दूसरा चारा नहीं रहता।

लक्ष्मणझूलेका वर्तमान पुल लोहेकी रस्सी और सीखचोंका बना है, और झूलता हुआ है। दानवीर सेठ सूरजमलजीने अुसे बनवाया है, और यह नियम बना दिया है कि अुस पर यात्रियोंसे कर न लिया जाय। पहले गंगाजी पार करनेके लिअे यहां छींकोंका पुल था। अेक छींके परसे दूसरे पर जानेमें जानका खतरा तो रहता ही था। साथ ही, नीचे गहराअीमें प्रचण्ड वेगसे बहती हुअी गंगाजीकी तरफ देखनेसे चक्कर आकर बिना खतरेके भी मनुष्य नीचे गिर सकता था। स्थिर दृष्टिसे प्रवाहकी तरफ देखनेसे अैसा ही मालूम होता है, मानो पुल महान वेगसे प्रवाहकी विरुद्ध दिशामें दौड़ रहा हो। ट्रेनमें बैठे-बैठे जिस प्रकार हमें पेड़ दौड़ते हुअे दिखाअी देते हैं, कुछ-कुछ अुसी तरहका भास यहां होता है। कलकत्तेके दानशूर सेठने यह सुरक्षित पुल बंधवाकर बहुत बड़ा पुण्य कमाया है, अिसमें सन्देह नहीं। परन्तु साथ ही हमें यह भी न भूलना चाहिये कि अिस तरह यात्राका खतरा कम हो जानेसे यात्रियोंका पुण्य भी घट गया है। जब तक छींकोंके पुलसे गिरकर जल-समाधि मिलनेका पूरा-पूरा भय था, तब तक अुस पारके प्रदेशका 'स्वर्गाश्रम' नाम 'अन्वर्थक' था। अब तो अकेले धर्मराजका ही नहीं, बल्कि कोअी भी देहाती कुत्ता अिस पुल परसे स्वर्गको जा सकता है।

लक्ष्मणझूलेके पास गंगाजीकी शोभा कुछ निराली है। आमने-सामने अूंचे कगार हों, अुनके बीचसे स्वच्छ हरा जल बन्धमुक्त होनेके आनन्दमें दौड़ रहा हो, और आसपासके पहाड़ों पर खड़े छोटे-बड़े वृक्ष यह दृश्य देख रहे हों, तो कौन किसकी शोभा बढ़ाता है, यह कहना मुश्किल हो जाता है।

कुछ स्थानोंका प्रभाव अद्भुत होता है। जितनी बार मैंने लक्ष्मणझूला पार किया अुतनी ही बार यह विचार मनमें अंकुर आया

कि सृष्टि चैतन्यमय है, अन्तरात्माने ही ये भाँति-भाँतिके आकार धारण किये हैं, और जिस प्रकार लाखों बरसोंसे बहते रहने पर भी गंगाजीके पानीका अन्त नहीं आता, अुसी प्रकार अन्तरात्माकी विभूतियोंका भी कोअी अन्त नहीं। नदीका जल और अुसमें तैरनेवाली मछलियां, वृक्षोंके पत्ते और अुन पर गानेवाले पंछी, पहाड़की घास और अुस पर चरनेवाले पशु, और जिन सबका द्रोह करते हुअे भी परलोककी चिरायु प्राप्त करनेकी अिच्छा रखनेवाला मनुष्य, सब अेक ही हैं; द्रोह और पाप केवल माया है; अभेद और प्रेम ही वास्तविक है। अिस प्रकारके विचार, आते जाते, जब-जब लक्ष्मणझूले पर पैर रखा, मेरे मनमें आये हैं, और बाबाजीके साथ मैंने अुनकी चर्चा की है।

हिमालयकी सारी यात्रा पूरी करनेके पश्चात् बाबाजीके साथ मैं कुछ समय तक अिस झूलेके पड़ोसमें ही रहा था। अुस समय सुना था कि यहांसे नीचेकी तरफ कोअी दो-अेक मील पर, कअी साल पहले, अेक साधु रहते थे, जो 'सोऽहम्' का जप किया करते थे। अेक दिन अेक दुष्ट शेर अुन पर झपटा। अुस समय भी 'सोऽहम्' का अुनका घोष चलता ही रहा। 'सोऽहम्' का अर्थ ही अभेद है। अिस साधुको मृत्युके समय भी बाघके भय या क्रोधकी बाधा न हुअी। अुसी स्थान पर अिस प्राचीन कालमें हमारे धार्मिक ग्रंथ लिखे गये थे; अिसकी दन्तकथा भी मैंने यहां सुनी थी। परन्तु वह कथा भगवान व्यासके विषयमें थी या आद्य शंकराचार्यके विषयमें, सो आज याद नहीं।

यहां बेरके पेड़ बहुतायतसे हैं, और नजदीक ही पासमें जो खेत हैं, वे आसपासके सारे प्रदेशमें प्रख्यात हैं। अिन खेतोंका 'बासमती चावल' का भात खानेके लिअे अमीरों और फकीरोंका तो कहना ही क्या, देवताओं और पितरोंका भी जी ललचायेगा।

नये-नये अनुभव

मस्तिष्कमें यात्राके चित्र अितने भरे पडे हैं कि जिनका कोअी पार नहीं। परन्तु अुनके नीचे या पीछे स्थल-काल लिखकर नही रखे। अिसलिअे अुनका क्रमबद्ध चित्र-संग्रह (अलबम) तैयार नही होता, और यह डर बना रहता है कि कही अेक स्थानका वर्णन किसी दूसरे स्थान पर न जड़ जाय। अिसलिअे जितना स्पष्ट रूपमे याद है, अुतनेकी ही मर्यादामें रहना अुपयुक्त है। कल्पनाके रंग तो चाहे जितने भरे जा सकते हैं। परन्तु कम-से-कम मूल रेखाचित्र यथादृष्ट होना चाहिये, तभी वह यथार्थ यात्रा-वर्णन माना जायगा। स्वामीकी लेखमाला पढता हूं, तो धुंधली होनेवाली स्मृतिया ताजा होनेके बदले और अुलझ जाती है।

अिस स्थितिका अनुभव करने पर अेक नया ही विचार मनमें आया। जो यात्रा हमने साथ-साथ की, अुसके वर्णन पढ़ने पर भी यदि अुस समयके चित्र दृष्टिके आगे अुपस्थित नही होते, तो जिन्होने यात्रा की ही नहीं है अुन्हें कोरे शब्दात्मक वर्णनसे कितनी कल्पना करा सकूगा? यदि सारा वर्णन अेक शब्दजाल ही बन जाय, तो अुसमे अुत्पन्न होनेवाला आनन्द सृष्टिका आनन्द नही, बल्कि शब्दोंका ही आनन्द होगा। अुसे कभी शुद्ध या अुच्च आनन्द नही कहा जा सकता। किसीको गुदगुदाकर हंसानेके समान ही यह प्रवृत्ति होगी। अिसमें से तत्त्वकी बात कितनी मिलेगी?

परन्तु अिस तरहके विचार बोलनेवालो और सुननेवालोंको विषण्ण बना देते हैं, अुन्हें विरस कर देते हैं। अिसलिअे सयानोंको अैसे विचार अपने पास ही रखने चाहिये। व्यक्तिगत दुःखके लिअे जिस प्रकार प्रकट रूपसे रोना नही चाहिये, अुसी प्रकार निर्मोह दशा भी प्रकट नही करनी चाहिये। अिसलिअे आअिये, यह सब यही छोड़कर हम अपनी यात्रा पर आगे बढ़ें।

लक्ष्मणझूले तक हम सभ्य संसारमें थे। हमने लक्ष्मणझूला पार किया, दाहिनी तरफका स्वर्गाश्रमवाला रास्ता छोड दिया, और वनमें प्रवेश किया। यहांसे रास्ता बहुत अूचा-नीचा होने लगा। भयसे अपरिचित

होनेके कारण जंगलके कुछ जानवर जिस तरह कभी-कभी मनुष्यके बिल्कुल पास आ जाते हैं, अुसी तरह पेड़ और लतायें बहुत नज़दीक आने लगीं। और हमें भी अैसा मालूम होने लगा कि अब हम आरण्यक हैं। झम्पानमें बैठनेवाले लोग आसपासके दृश्यसे विसदृश (बेमेल) और विश्री (बेढब) दिखाओ देने लगे। 'झम्पान' अेक तरहकी पालकी होती है। अिसे अुठानेवाले कहार चौकोन बनाकर नहीं चलते, किन्तु चारों आदमी अेकके पीछे अेक सीधी कतारमें चलते हैं। क्योंकि सकड़े रास्तेकी विकट पगडण्डी पर अुन्हें चलना होता है, जहां दो आदमी बराबरीसे खड़े भी नहीं रह सकते। कहीं अेक तरफके अूंचे पहाड़से टकरा जायं, तो चारों कहार, अुनकी झम्पान, और झम्पानमें रखा हुआ जीवित बोझ, सभी दूसरी तरफकी गहरी खाओमें गिरकर स्वर्गको पहुंच जायं!

कण्डीमें बैठनेवाले लोग अितने बेडौल नहीं लगते। जंगली बेंतके बने हुअे, पानी पीनेके लम्बे गिलासकेसे आकारवाले, अेक बड़े टोकनेमें आधे तक सामान भरकर यात्री अुस पर बैठ जाते हैं। पांव बाहर निकालनेके लिअे टोकनेके अूपरके हिस्सेमें दरारें बनी रहती हैं। और पांव लटके-लटके थक न जायं, अिसके लिअे अेक कामचलाअू रकाब लगी होती है। अेक मजदूर अिस तरहका टोकना (कण्डी) अपनी पीठ पर कन्धोंसे बांध लेता है। अिरानी जाकट पहननेके बाद जिस तरह हाथ खाली रहते हैं, अुसी तरह मजदूरके हाथ खाली रहते हैं। कण्डीका सारा बोझ अकेले कन्धोंको ही अुठाना न पड़ जाय, अिसके लिअे अेक पट्टा मजदूरोंके सिर पर लगा रहता है। जब मजदूर चलता नहीं होता, अुस वक्त अपने कन्धों और माथेको आराम पहुंचानेके लिअे वह T के आकारकी कुबड़ी-नुमा अेक लकड़ी अपने साथ रखता है। कण्डीके नीचे अिस कुबड़ीको रख देने पर मजदूर अुसके बोझसे मुक्त हो जाता है। अिस प्रकार अेक मजदूरके सिर पर अेक आदमी जान-मालके साथ चलता है। लेकिन अुसका मुंह पीठकी तरफ होता है। शुरू-शुरूमें यह सारा दृश्य हास्यास्पद मालूम होता है, परन्तु अिसे देखते रहनेका अभ्यास हो जाने पर यह जचने लगता है कि अिस प्रदेशमें यही ठीक है। जब पड़ाव पर पहुंचकर मजदूर

आपसमें बातें करते हैं, तो कौन कितने मनकी 'लाश' अुठा रहा है, अिसका अुल्लेख किये बिना नहीं रहते। यहांकी यह रीति है कि यदि आपका मजदूर आपके लिअे, आपके सामने, 'लाश' शब्दका प्रयोग न करे, तो समझिये कि अुसने मर्यादा निवाह ली।

जिन दिनों यात्राका मौसिम पूरे जोर पर था, अुन्हीं दिनों हमने अपनी यात्रा शुरू की थी। अिसलिअे हमें रास्तेमें कहीं कोअी स्थान निर्जन नहीं मिला। चींटियोंकी कतारकी तरह हम लोग चलते थे। हमारे साथ अहमदनगर या बरारकी तरफके अेक सज्जन 'झम्पान' में बैठकर यात्रा कर रहे थे। अुनके साथ आश्रितोंका परिवार भी कम न था। बादमें मालूम हुआ कि दो पत्नियोंके स्वामी होने पर भी अुनके कोअी सन्तान न थी। अिसलिअे वे बदरीनारायणके दर्शनको जा रहे थे।

झम्पानमें बैठनेवालोंकी मुद्रा पर दो तरहके भाव देखनेमें आते हैं। कुछ लोगोंके चेहरों पर शर्मका भाव होता है। मानों वे यह कहते-से मालूम होते हैं — "हम स्वयं चल नहीं सकते, अिसलिअे हमें जीते-जी मनुष्यके कन्धे पर बैठना पडता है।" दूसरी कोटिके लोग अिस शानमें रहते हैं कि "क्या हम कंगले हैं, जो पैदल चलेंगे?" अपने चेहरों पर अिस शानका भाव दिखाकर वे अपना कल्पना-दारिद्र्य ही प्रकट करते हैं।

हमारा प्रवासी साथी अिस दूसरी श्रेणीका था। वह झम्पानमें मुर्गेकी तरह अकड़कर बैठा था, और अूटकी तरह अिधर-अुधर देखता था। अुसकी स्त्री पैर बढ़ाये अुसके पीछे-पीछे चलती थी। अुस भले आदमीसे यह सहा न गया। बादशाह-जैसी आवाजमें अुसने हुक्म दिया — "जरा आगे चली जायगी, तो तेरा क्या बिगड़ जायगा? जा, चट्टी पर कुछ पहले पहुंचकर रसोअी बनाना शुरू कर दे; तब तक हम भी आते ही हैं।" अुस बेचारीका अुस समयका संभ्रम आज भी मेरी आंखोंके सामने आता है। कद कुछ छोटा, दोहरी हड्डी, फीकी हरी साड़ी, माथे पर पुराने ढबकी बड़ी बिन्दी, नाकमें बड़ी-सी नथ, घुंघराले बाल, जिनमें से कुछ अुड़ रहे हैं और कुछ पसीनेके कारण माथे पर चिपक गये हैं, अैसी अवस्थामें वह सती हिमालयके रास्ते पर, चाहे चढ़ाव हो या अुतार, हांफती हुअी चल रही है। घड़ीमें पीछे देखती है, घड़ीमें कहीं हमारी

नजरमें अुसकी फजीहत तो नहीं हो रही है, अिसकी जांच करती है; और फिर सिर झुकाकर आगे चलने लगती है, मानो हिन्दू समाजकी विडम्बना प्रायश्चित्त करने जा रही हो। अरबस्तान अथवा मध्य-अेशियाके जंगली पुरुष नारी-प्रतिष्ठा जानते ही नहीं। जब जोरोंका तूफान चलता होता है, तो पुरुष खीमोंमें बैठ जाते हैं और खीमोंको अुड़नेसे बचानेके लिअे अपनी स्त्रियोंसे कहते हैं कि वे अुनकी रस्सियां पकड़कर बाहर बैठें। अुनके अैसे वर्णन पढ़कर हम अुन लोगों पर तरस खाते हैं। परन्तु जब हमारे ही यहां नौजवान मर्द खुद आराम करते हैं, और स्त्रियोंसे मनमानी मेहनत-मशक्कतके काम लेते हैं, तो हम यह सब चुपचाप सह लेते हैं।

यह बहन अुस यात्रीकी पहली स्त्री थी। अिसे सन्तान न होने पर अिसके मर्दने दूसरी शादी की थी। अतः यह स्त्री तो अुसके प्रेमकी अपात्र मजदूरिन ही हुअी न? अुसे जल्दी पड़ाव पर पहुंचना ही चाहिये, अुस अपरिचित प्रदेशमें रसोअीके लिअे जगह प्राप्त करनी ही चाहिये, और चट्टीवालेसे बरतन-भांडे मांगकर रसोअीकी तैयारी भी कर लेनी चाहिये। अेक दिन न जाने क्या हुआ, चट्टीमें हम लोग भोजन कर रहे थे, अितनेमें वह नरपशु आपेसे बाहर हो गया — वह अपनी स्त्री पर बिगड़ पड़ा। स्त्री बेचारी हाथ जोड़ने लगी। किन्तु अुसने अुसके माथे पर प्रहार कर ही दिया। वह जमीन पर गिर पड़ी। फिर क्या पूछना था? अुसने अुस बेचारीकी पीठ पर अपने पैरोंकी खुजली मिटाओ। गांववाले आश्रित पत्तल पर बैठे-बैठे यह सारा दृश्य टुकुर-मुकुर देख रहे थे। आखिर वह नर-बैल मारते-मारते थका या भूखसे व्याकुल हो गया, कहना मुश्किल है। परन्तु अुस दिन अुसने खूब डटकर भोजन किया, और बादमें अुस स्त्रीकी तरफ देखकर बोला — "अब आरामसे बैठकर भोजन कर ले!" बेचारीने कहारोंके साथ भोजन किया, और सबके जूठे बरतन अुठाकर मांजने ले गयी।

आर्य परिवारके झगड़ेमें बाहरी आदमीका बीच-बचाव करना ठीक नहीं, अिस विचारसे हमने यह सब सह लिया। आज मुझे अपनी अुस कायरता पर घृणा आती है। अुस समय भी मनमें विचार अुठा था कि क्या यह हमारा आर्यधर्म है? जब मनूने 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते' लिखा था, क्या

अुस समय अुसने अिसी तरहकी 'पूजा' की कल्पना की होगी? माना कि पति पत्नीका देवता है, लेकिन क्या स्त्री पतिकी गुलाम है? या मवेशी है? किसी सनातनी शास्त्रीसे पूछा जाय तो वह अिसके लिअे भी शास्त्रसे कोअी-न-कोअी प्रमाण अवश्य निकाल देगा। अुपनिषद्में लिखा है कि मनुष्य देवोंका पशु है। पति देव है। अतः पत्नी अुसका पशु ही हुअी न? यदि अुपनिषत्कालीन ऋषि यह तर्कशास्त्र सुनें, तो बेचारे अपनी निर्दोष काव्य-रचना पर असंख्य बार पछतायें। पतिकी सेवा करना पत्नीका धर्म है। अैसा अेकांगी धर्म चाहे मान भी लिया जाय, परन्तु सेवा, और सो भी अिस तरहकी सेवा, लेनेका पतिको अधिकार है, अैसा तो कहीं भी लिखा नहीं है।

बात यह है कि हमारा धर्म आर्य आदर्शों और अनार्य वृत्तियोंका विचित्र मिश्रण बन गया है। और हीन वृत्तिके संस्कृतज्ञ तार्किकोंने धर्मको शुद्ध रखनेके बदले हर अेक रिवाजका बचाव करनेका बीड़ा अुठाया है। व्याकरणकार जिस प्रकार 'छन्दसि बहुलम्' कह कर काम चला लेते हैं, अुसी प्रकार हमारे ज्ञातिभिन्न समाजने यह तय किया है कि कोअी किसीके काममें दखल न दे। अिसका परिणाम यह हुआ कि आखिर नामर्द जबरदस्त शहजोर बन गये हैं। शास्त्रियोंके मनमें यह विचार नहीं आता कि अगर धर्मके शुद्ध स्वरूपकी रक्षा न की गयी, तो सारे धर्मकी दुर्दशा हो जाती है, जीवन विकृत बन जाता है, और परधर्मियोंकी जीत हो जाती है। जब-जब हिन्दू धर्म पर परधर्मियोंने विजय प्राप्त की है, तब-तब अुस विजयकी जड़में हमारे लोगोंका रूढ़ि-दास्य और असावधानी ही रही है। सामना करनेमें हम हमेशा कायर साबित हुअे हैं। अन्याय सहनेमें हम जिस धीरज और बहादुरीसे काम लेते हैं, अुसका अुपयोग अन्यायका मुकाबला करनेमें करें, तो हमारे सभी दुःख दूर हो जायं।

मन-ही-मन अिस तरहकी बातें सोचते हुअे हमने भोजन समाप्त किया, और बिना आराम किये ही आगे बढ़े। अेक-दो दिनके ही अनुभवसे हमें पता चल गया था कि चट्टी पर देरसे पहुंचनेमें लाभ नहीं। जिस प्रकार स्टीमर पर पहले पहुंचनेवाला मीर होता है, वह जितनी जगह रोक ले सब अुसीकी हो जाती है, अुसी तरह चट्टी पर भी होता था। यह चट्टी

है क्या चीज? यात्रियोंके लिअे जंगलमें दुकानदारोंकी बनाओी हुओी कामचलाअू दुकानें। यहां अैसा कोओी कानून नहीं कि घरकी फर्श गीली न रहे या दीवालें अूची हों। छप्पर पर घास-फूस या पत्ते छाये होते हैं। और यह सारी कारीगरी 'पब्लिक वर्क्स डिपार्टमेण्ट' की न होनेसे पहाड़में जैसा रास्ता वैसा दुकानका आकार होता है। अिस प्रकारका स्थापत्य शहरी आंखोंको शुरू-शुरूमें भले ही अच्छा न लगे, परन्तु जंगलकी संपूर्ण शोभासे मेल खानेकी दृष्टिसे वहां अिसकी अपेक्षा दूसरी कोओी पद्धति अुपयुक्त न होगी।

अिस चट्टीके अेक कोनेमें दुकानदार अपना माल जमाकर रखता है। मालमें क्या-क्या होता है? गेहूंका आटा, नमक, मिर्च, घी, आलू, और अगर दुकान बड़ी हो तो दाल और चावल भी। दुकान बड़ी हो या छोटी, अुसमें तमाकू तो होती ही है। परन्तु वह अुस किस्मकी नहीं होती, जो हमारे यहां मिलती है। हिमालयमें तमाकूका पौधा नहीं होता, अिसलिअे वहां गुड़में बनाया हुआ गुड़ाकू अधिकतासे बिकता है। फिर, अेक बोरेमें रसोओीके बरतन भरे होते हैं, जिनसे यात्रियोंको बहुत बड़ा सुभीता होता है। यदि यात्री अपने-अपने बरतन साथ लेकर यात्रा करने लगें, तो मनुष्यकी अपेक्षा बरतनोंका ही पुण्य बढ़ जाय, और अुनके बोझसे दबकर यात्री अगममें ही स्वर्ग पहुंच जाय!

हिमालयके ब्राह्मणोंकी रसोओीमें विलक्षण स्वावलम्बन होता है। अुनके पास बोहरोंकी टोपी-सी अेक मोटे लोहेकी पतीली या तसली होती है। पहले वे अुसमें आटा गूंध लेते हैं, फिर गूंधे आटेको पत्थर पर रख देते हैं। बादमें तीन पत्थरोंका अेक चूल्हा बनाकर अुसकी आंच पर अुसी तसलेमें रोटियां सेंक लेते हैं। फिर अुन सारी रोटियोंको गमछे पर रखकर अुसी तसलेमें शाक बना लेते हैं। चूंकि तसला लोहेका होता है, अिसलिअे अुसमें हर तरहके शाकका अेक ही रंग आता है। अिससे अधिक अुन्हें और क्या चाहिये? वे डटकर साग-रोटी खाते हैं, और तसला मांज लेते हैं। फिर वही तसला पानी पीनेके काम आता है। भोजनके बाद वे दोपहरमें जरा देर वामकुक्षी (आराम) कर लेते हैं, और फिर अुसी तसलेको सिर पर रखकर अुसके अूपर साफेकी तरह

पिछौरा बांध लेते हैं। अब यदि आकाशसे आमकी गुठलीके बराबर ओले गिरें, तो भी अुनका सिर सलामत समझिये। अिनमें अितनी सूझ और हिकमतके रहते भी शहरी यही कहते हैं कि पहाड़ी लोग जंगली होते हैं। जंगली नहीं तो और क्या? जो जंगलमें रहते हैं वे अपंग नहीं होते। और अपंगता तो सभ्यताकी नींव और शिखर भी है। असंख्य साधनोंके बिना जिनका निर्वाह नहीं हो सकता वे तो सभ्य, और जो थोड़े-से साधनोंसे गुजर करनेकी सिफत रखते हैं वे जंगली — क्या यह व्याख्या ठीक नहीं है?

हम जरा कदम बढाकर सबसे पहले मुकाम पर पहुंच जाते, अच्छी-से-अच्छी चट्टी खोज लेते, और साफ चूल्हा बनाकर रसोअी शुरू कर दिया करते। यहां 'हम' से मतलब स्वामीसे है, क्योंकि अुनकी चाल घोड़ेकी चाल थी। दूसरे नम्बर पर बाबाजी पहुंचते। मैं हमेशा आखिरमें पहुंचता। क्योंकि मेरे सिर पर सबसे ज्यादा भार था — रास्तेमें जितने भी पेड़-पौधे मिलते अुन सबकी कुशल पूछना मेरा काम था। जितने फल, फूल, पक्षी नजर आते वे सब मुझे बुलाते। जहां ये सब न होते वहां आकाशके बादल तो होते ही थे। फिर अुन दिनों मुझे हाथमें छोटी-सी माला लेकर जप करनेकी भी आदत पड़ गयी थी, अिसलिअे जगत और जगदम्बाके बीच मेरा ध्यान अितना बंट जाता था कि मैं बिना चूके तीसरे नम्बरसे ही पहुंचता था। पहुंचने पर मैं अुठता न था, बैठे-बैठे सारा काम करता था। सामान बांधना, खोलना, जमाना यह सब मेरा काम था। जब लकड़ियां गीली होती, तो बाबाजीका चूल्हा भी सुलगा देता था। भोजनके बाद बरतन भी मैं ही मांजता था। मेरे मांजे हुअे बरतन देखकर पहाड़ी दुकानदार खुश-खुश हो जाते थे। स्वामीके पैरोंमें और वाणीमें असाधारण बल था। अिसलिअे वे सर्वत्र पहुंच जाते थे। अिस प्रकार हमारा संघ चलता था। जल्दी-जल्दी चलनेका निश्चय करनेके कारण हमने अुस दो गायोंवाले बलीवर्दकी संगतिसे भी छुटकारा पाया।

ज्यों-ज्यों हमारी यात्रा बढ़ती गयी, त्यों-त्यों हमारी भूख भी बढ़ती गयी। अेक पतीली भरकर दाल बनाते थे, और अुसे तीनों अेक-

दूसरेका मुंह देखते-देखते खा जाते थे। बादमें रातकी दो-चार रोटियां रख छोड़ते, और अुन्हें सवेरे गुड़के साथ खा लेते। देखते-ही-देखते हमारे गाल गाजरकी तरह लाल दीखने लगे। वजन तो बेचारा बढ़ता ही कैसे? रोजाना बीस-तीस मीलकी रपटके साथ वजनका मेल नहीं बैठता। वह बेचारा राह देखता बैठा होगा कि कब अवकाश मिले और कब बढ़ूं। हमने जो कुछ आराम लिया, वह अिस तरह हमारे लिअे बहुत लाभकारी सिद्ध हुआ।

२५
देवप्रयाग

रेलकी यात्रामें जब गाड़ी किसी सुरंगमें डुबकी लगाती है, तो पांच-दस मिनट तक अंधेरेके सिवा और कुछ दिखाअी ही नहीं देता। अिसी प्रकार पुरानी स्मरण-यात्रामें विस्मरणकी सुरंगें आ जाती हैं। बम्बअीसे पूना जाते समय खंडाला घाटकी या बेलगामसे गोआ जाते समय तिनअी घाटकी लम्बी-लम्बी सुरंगोंके बीच-बीचमें कुछ झरोखे आते हैं, जिनमें प्रकाश जरा-सी झांकी दिखाकर लुप्त हो जाता है। विस्मरणमें भी अिस तरह स्मृतिकी अेक किरण — केवल अेक ही किरण — चमककर विस्मृतिको और भी घनी बना देनेका काम करती है।

जिस दिनका वर्णन आज लिख रहा हूं, वह दिन अिसी प्रकार विस्मृतिमें डूब गया है। महादेव चट्टीका रूप जरा भी याद नहीं आ रहा है। संसार नाम-रूपका बना है। अुसमें से यदि रूप जाता रहे, तो नाम ही शेष रह जाता है। मेरे लिअे महादेव चट्टी 'नामशेष' हो गयी है।

मुकाम पर पहुंचते ही मैं आरामसे बैठ गया; नहीं, मैं बिलकुल पैर फैलाकर लेट गया। यह अेक मेरी खुशीकी आदत थी। मौका पाते ही मैं यथेष्ट आराम कर लिया करता था। अिसलिअे सारी शक्तिका अुपयोग चलनेके काममें होता रहता था। स्वामीको आगे जाना था। मुझे लेटे देखकर पूछा — "क्या थक गये हो? मैं आगे जाना चाहता

था।" मैंने कहा — "अुठकर फिजूल अिधर-अुधर टहलना ही हो, तो यह मुझसे न होगा; लेकिन अगर पांच-दस मील चलकर नयी चट्टी पर पहुंचना हो, तो मैं जरा भी थका नहीं हूं। यह देखो, मैं चला।" कहकर मैं अुठ खड़ा हुआ और चल पड़ा।

हम नयी चट्टी पर पहुंचे। पर वह बहुत ही छोटी निकली। रेलवे टाअिम-टेबल्में गोरे लोगोंके लिअे भोजनका स्टेशन, चायका स्टेशन, वगैरा स्टेशन मुकर्रर ही होते हैं। यात्रामें भी सोनेकी चट्टियां हमेशा बड़ी होती हैं। हर रोज अमुक मील चलनेका यात्रियोंका क्रम बंधा होता है। अुसके अनुसार सुविधायें प्रस्तुत हो जाती हैं। और बादमें फिर सुविधाके कारणसे भी यात्राके पड़ाव तय हो जाते हैं। दिनवाली चट्टीमें हमने रात बिताअी। दिनके दुकानदारको रातके यात्री बहुत कम मिलते हैं। अिसलिअे वे अैसे अवसर पर यात्रियोंका विशेष ध्यान रखते हैं।

यहांसे हम आगे चले। चलते-चलते देवप्रयाग नजदीक आया। मेरी अंटीमें घड़ी थी। वह मुझसे अुम्रमें बड़ी और समय-पालनमें वफादार थी। परन्तु मैंने ही अुसे कअी दिनोंका अुपवास कराया था। अिसलिअे समयकी बात तो सूर्यनारायणसे ही दरियाफ्त करनी पड़ती थी। रास्तेके किनारे अेक डाकघर मिला। अुसे देखते ही स्वामीको वहांसे समय लाकर मेरी घड़ीमें भरनेकी सूझी। घड़ीको जीवित और चालू करके हमने देवप्रयागमें प्रवेश किया। अगर मेरी स्मृति ठीक है, तो यहां माधवानन्द नामके बंगाली साधु हमें पहले-पहल ही मिले। अिनके विषयमें बहुत कुछ लिखने योग्य है। अुसमें से थोड़ा-बहुत यथास्थान लिखा जायगा।

देवप्रयाग पंच-प्रयागोंमें से अेक है। वह अेक पहाड़ी चट्टान पर बना पक्षियोंका अेक घोंसला-सा लगता है। अुसके दो हिस्से पड़ते हैं। नदीके अिस तरफ अंग्रेजी (खालसा) है, और अुस पार टेहरी राज्य है। बीचमें केदारनाथसे आनेवाली अलकनन्दा पीली मिट्टी लिये बहती है। और नीचे मोहलकी बिलकुल महीन रेतसे चमकती हुअी भागीरथी गंगोत्रीसे आकर अलकनन्दासे मिलती है। बाबाजी कहने लगे — "यात्रामें अपने साथ अेक लोटा जरूर होना चाहिये। चौड़े मुंहका हो तो हाथ डालकर अन्दरसे साफ किया जा सके। किसी दिन दूध मिल जाय, तो

वह भी गरम किया जा सके।" स्वामी बाजारमें गये और अेक लोटा लेकर मुकाम पर लौटे। क्योंकि अब जैसे-जैसे हम आगे बढ़ेंगे, वैसे-वैसे हमें बाजार न मिलेंगे, और मिले भी तो वहां लोटे कहांसे आयेंगे? मैंने लोटेमें पानी भरकर देखा। लोटा फूटा निकला। बाबाजीने स्वामीसे कहा — "अिसे तुरन्त वापस करो, और दूसरा ले आओ।" लोटेमें पानी भरकर स्वामी दूसरी बार बाजार गये। दुकानदार भला आदमी था। जिस प्रकार हमारे यहां दुकानदार भोले ग्राहकको धमकाते हैं, अुस तरह धमकाना वह सीखा न था। अुसने दूसरा लोटा निकालकर दे दिया। बगैर देखे-दाखे लोटा लानेके लिअे हमने स्वामीको दोष दिया था, अिसलिअे अिस बार स्वामी वही भूल फिर कैसे करते? अुन्होंने नये लोटेमें पानी भरा। पानी चूने लगा। दुकानदारने तीसरा लोटा निकाला। अुसमें से भी गंगा बह निकली। चौथा, पांचवां, छठा, अिस प्रकार बेचारेने कितने ही लोटे निकाले। हरअेककी दशा पहले लोटे-जैसी ही थी। वामनावतारके दिनोंमें बहनेवाली झारीको बन्द करनेका सामर्थ्य अेक ब्राह्मणने दिखाया था, परन्तु कलियुगमें सभी लोटोंको चूनेवाला बना देनेकी अद्‌भुत शक्ति तो देवप्रयागमें स्वामी आनन्दने ही दिखलाओ। बेचारा दुकानदार हक्का-बक्का रह गया। अुसने समझा, हो-न-हो, स्वामी कोओ जादूगर है! वह गिड़गिड़ाकर स्वामीसे अपनी माया समेटनेके लिअे अनुनय-विनय करने लगा। स्वामी बड़े परेशान हुअे। निदान लोटेके दाम वापस लेकर वे मुकाम पर लौट आये। मध्यकालीन लोक-साहित्यमें अिन्द्रजालकी अनगिनत कहानियां प्रचलित हैं। अुनमें से अधिकांशकी तहमें कुछ अिसी तरहके किस्से तो न होंगे?

सवेरे अुठकर मैं अकेला ही अलकनन्दाके तीर पर जा बैठा। बहुत नीचे अुतरना पड़ता था। अलकनन्दाकी यह शान्त शोभा देख मैं तो सुध-बुध भूल गया, और न जाने कितनी देर तक वहीं बैठा रहा। आखिर जब बाबाजी या स्वामी बुलाने आये, तब सुध हुअी कि हम यहां यात्राके लिअे आये हैं, और तीन जने अेक साथ हैं।

शामको स्वामीने कहा — "चलो, हम संगम पर चलें।" पुल पार करके हम मन्दिरकी ओर गये। वहांसे अुतरकर संगम तक पहुंचे।

यहां चट्टानमें लोहेकी जंजीरे जड़ी गयी है; अुद्देश्य यह है कि यात्री गंगाजीमें नहाकर स्वर्गके अधिकारी तो बनें, पर तुरन्त स्वर्गको न जायं; क्योंकि भागीरथीका प्रवाह यहां बहुत वेगवान है। यहां 'गंगातरंगकणशीकर-शीतलानि' वाला श्लोक मैंने स्वामीको समझाया। शामका समय था। हम दोनों भागीरथीके किनारे बैठ गये। अेक छोटा-सा पक्षी अुस पारके किनारे पर बैठा था। बीचमें पानीकी धारा जोरसे बह रही थी। हम दोनों अुस पक्षीकी तरफ देखने लगे। शुरूमें वह पक्षी अपनी गरदन घुमाता था, सिर हिलाता था। पर थोड़े ही समयमें प्रकृतिने अुस पर अपनी मोहिनी डाली, और वह भी अेकटक देखने लगा। वह हमारी भाषा नहीं जानता था। अुसका हृदय हम नहीं जानते थे। फिर भी भागीरथीने हम तीनोंका हृदय अेक बना डाला था। अूपर मन्दिरका घंटा भक्तोंको दर्शनका निमन्त्रण दे रहा था। हमें तो यही आत्मौपम्य द्वारा भगवानके दर्शन हो रहे थे।

हम तो आदमी ठहरे; अंधेरेमें चिराग जलाकर भी चलेंगे, और रात घरके भीतर सोयेंगे। परन्तु अुस पार बैठा हुआ हमारा वह भाआी अंधेरा होने पर रात किस तरह बितायेगा? भारी पैरोंसे या भारी पंखोंसे वह अुठा और अनन्त आकाशमें न जाने कहां चला गया। हम हर रोज हजारों पक्षी देखते है। अुनकी दुनिया जुदी, हमारी जुदी। अुनके और हमारे बीच खेतोंके अनाज और पेड़के फलोंके बंटवारेकी तकरार होती है। अुनका हमारा अितना ही सम्बन्ध है। परन्तु देव-प्रयागका वह द्विजराज आज भी मेरे हृदयमें अपना स्थान बनाकर बैठा है। विषादके समय मनमें विचार आता है कि यदि वह पक्षी लौट आये, तो हम तीनोंके हृदय अेक हो जायं।

मन्दिरका जीर्णोद्धार अमुक व्यक्तिने अमुक समय किया था, अिस आशयका कोआी लेख स्वामीने वहां खोज निकाला। हम दर्शन करके लौटे। रातमें अुस पक्षीके ही सपने आये। वह पूर्वजन्मका कोआी साथी होगा, भाआी होगा, या प्रेमी होगा। वह फिर मिलनेवाला नहीं। किस कारण वह हमारी मानस-पूजाका अधिकारी बना, सो कौन बता सकता है? पर यदि मानस-पूजामें कोआी शक्ति है, तो वह अवश्य फिर

आयेगा। यदि अुसे मालूम हो जाय कि हम अुसे कितना चाहते हैं, तो जहां कहीं वह होगा वहांसे अुड़कर आये बिना न रहेगा।

सवेरे अुठकर हमने बदरीनारायणका रास्ता छोड़ दिया। और चूंकि हमें गंगोत्री जाना था, असलिअे हमने टेहरीका रास्ता लिया। जिधर पैर ले जायं अुसी तरफ जानेकी हमारी आदत थी। अलकनन्दाकी दोनों तरफसे दो रास्ते जाते थे। नदीकी बायीं तरफ, या अुद्‌गमकी ओर जानेवाले यात्रियोंकी दृष्टिसे देखा जाय, तो दाहिनी तरफ बदरीनारायणका रास्ता है। असलिअे बायीं तरफवाला रास्ता टेहरीका ही होना चाहिये, अैसा स्थिर करके हम आगे चले। हम काफी दूर निकल गये थे। अितनेमें नदीके अुस पारसे अेक दिनकी पहचानवाले कुछ मजदूर जोर-जोरसे चिल्लाकर अिशारे करने लगे। पहले स्वामीने अुनकी पुकार सुनी। अुनके अिशारोंका अर्थ भी स्वामी ही समझ सके। हम गलत रास्ते चल पड़े थे। भूल मालूम होने पर अुसे सुधारनेमें देर ही कितनी लगती है? हम जहां थे वहींसे, बगैर रास्तेके, सीधे अूपर ही अूपर चढ़ते चले गये, और आखिर टेहरीके रास्ते पर जा पहुंचे। रास्तेमें कुछ झुरमुटों पर नारंगी रंगके राअीके बराबर छोटे-छोटे फलोंके गुच्छे लगे थे। आठ-दस दानोंका अेक गुच्छा बड़े चनेके बराबर होता था। प्रत्येक दानेके बीचमें बाल-सा कुछ दिखाअी देता था। मैंने ये दाने तोड़कर चखे। ठीक नारंगीके रसका स्वाद था। फिर तो पूछना ही क्या था? मैं दोनों हाथसे फल आरोगने लगा। फिर विचार आया कि मैं कोअी जंगली लुटेरा नहीं हूं, जो अेक-अेक पेड़को बिलकुल निष्फल बनाकर छोड़ जाअूं। सच्चा राजा जो करभार लेता है, अुससे प्रजा नि:सत्त्व नहीं होती। मुझे भी अेक ही पेड़के पास खड़े न रहकर चलते जाना चाहिये, और चलते-चलते राहमें जितने फल हाथमें आयें अुतने अुदरस्थ करने चाहिये।

कअी दिनों तक वह स्वाद चखनेको मिलता रहा।

श्रीनगर नहीं गया

देवप्रयागसे हम टेहरी जा रहे थे। स्वामी, बाबाजी और मैं। हम हिमालयकी प्राणदायिनी वायुका मजा लूटते, आनन्द मनाते, जा रहे थे। परन्तु मेरे मनमें अेक गुप्त विषाद घर कर बैठा था। मैं घरसे जो चला था वह अिसलिअे नहीं कि हिमालयके सारे तीर्थोंकी यात्रा करता हुआ मारा-मारा फिरूं। मेरा विचार था कि अिस प्रदेशमें बसे हुअे पुराण-प्रसिद्ध श्रीनगरमें साधनाके लिअे बैठूं। काश्मीरका श्रीनगर अलग है, और केदारके रास्ते यह श्रीनगर अलग है। यह श्रीनगर सिद्धपीठ कहलाता है। यहां की हुअी साधना व्यर्थ नहीं जाती, और शीघ्र फलदायी होती है। देवीभागवतमें अिस स्थानका माहात्म्य बहुत बतलाया है।

पहले यहां अेक पत्थर पर श्रीचक्र खुदा हुआ था, जिसकी पूजा हुआ करती थी। कहते हैं, प्राचीन कालमें अिस जगह हर रोज अेक नरमेध होता था। आद्य शंकराचार्य जब श्रीनगर आये, तो मनुष्य-वधका यह अनाचार देखकर अुनकी धर्म-भावना अकुला अुठी। अुन्होंने अेक सब्बल लेकर श्रीचक्रवाले पत्थरको औंधा कर दिया और आज्ञा दी कि आजसे नरमेध बन्द!

प्रस्थानत्रयी पर भाष्य लिखकर और नितान्त रमणीय स्तोत्र बनाकर शंकराचार्यने हिन्दू धर्मकी जो सेवा की है, अुसकी अपेक्षा नरमेध बन्द करनेकी यह सेवा कहीं अुत्कृष्ट है। क्या अिसके विषयमें कोअी शंका हो सकती है? भाष्य लिखनेके लिअे बुद्धि-वैभव चाहिये। स्तोत्रोंके लिअे भक्ति न हो, और केवल कल्पनाका अुल्लास ही हो, तो भी काम चल सकता है। परन्तु धर्मान्ध समाजका विरोध सहकर परम्परागत घातक रूढ़िको बन्द करनेके लिअे तपस्तेज, धर्मनिष्ठा और हृदय-सिद्धिकी जरूरत होती है।

जबसे नरमेध-प्रतिबन्धका यह किस्सा सुना है, तबसे शंकराचार्यकी वह ठिंगनी और भरी हुअी मूर्ति — गेरुअे वस्त्र, रुद्राक्षकी माला और भस्मलेपसे मंडित तथा 'आगलान् मुंडित' — दृष्टिपथसे हटती ही नहीं। कर्मकांडी, निर्दय शाक्त चारों तरफ हाहाकार कर रहे हैं, और

सामने सब्बल लिये अुस संन्यासीकी तेजस्वी मूर्ति खड़ी है। अेक भी कर्मवीरकी ताब नहीं कि नजदीक आये। और यह तपस्वी, ज्ञानवीर फड़कते हुअे ओठोंसे अेक-अेकको अथवा अेक साथ सबको शास्त्रार्थके लिअे ललकार रहा है। लेकिन किसीकी बुद्धिप्रभा अुस धर्ममूर्ति, दिग्विजयी संन्यासीके आगे प्रकाश नहीं डाल सकती। अुपनिषत्कालीन याज्ञवल्क्यकी तरह श्री शंकराचार्यने भी शास्त्रार्थके लिअे ललकारा होगा — 'ब्राह्मणा भगवन्तो यो वः कामयते स मा पृच्छतु, सर्वे वा मा पृच्छत, यो वः कामयते तं वः पृच्छामि, सर्वान् वा वः पृच्छामीति।' परन्तु 'ते ह ब्राह्मणा न दधृषुः।'

श्रीनगर जानेसे पहले 'स्वामीसे मिल लेनेकी' अेक फुनगी मूल संकल्पमें फूटी और मैं अलमोड़ा चला गया। वहांसे लौटते समय हरद्वारमें गंगोत्री जानेका संकल्प पक्का हुआ। और देवप्रयागसे केवल अठारह मीलकी दूरी पर बसे हुअे श्रीनगरकी तरफ जाना छोड़कर मैं गंगोत्रीकी ओर चला। मनमें यह आनन्द तो था ही कि हिमालयके नये-नये पुण्यधाम देखनेको मिलेंगे। परन्तु मैं मूल संकल्पसे दूर जा रहा हूं, अिसका पछतावा कुछ भी किये दूर नहीं होता था।

टेहरीके रास्ते पर चीड़के वृक्षोंकी बहुतायत है। अिन वृक्षोंके लम्बी-लम्बी सलाअियों जैसे हरे-हरे पत्ते जब जमीन पर बिछ जाते हैं, तो अुन पर चलनेमें पैर सहज ही फिसल जाता है। यहां मैंने अेक सुन्दर आविष्कार किया। बहुत चलनेसे और ठंडकी वजहसे मेरे पैर फट जाते, और अुनमें नदीके पानीसे जमीनमें पड़नेवाली दरारों-जैसी दरारें पड़ जाती हैं। चिन्ता यह थी कि अगर अिनका कोअी अिलाज न मिला, तो यात्रा किस तरह पूरी होगी? कोकमका थोड़ा-सा मोम हमारे साथ था, परन्तु मैंने अुससे कोअी फायदा होते नहीं देखा। संकटमें पड़ने पर मनुष्य आविष्कार करता है। चीड़के पेड़से निकलनेवाला ताजा गोंद पैरोंकी बिवाअियोंमें भर दिया, और दूसरे ही दिन अुसका सुन्दर परिणाम अनुभव किया। चमड़ी अैसी भर गयी, मानो कभी फटी ही न हो। अुस दिनसे मैं दियासलाअीकी अेक डब्बी भरकर चीड़का गोंद अपने साथ रखने लगा। अिसी गोंदसे राल बनती है, और टरपेंटाअिन भी अिसी पेड़से निकलता है।

२७

श्रद्धा-भक्तिका स्पर्श

देवप्रयागसे हम कोअी सात मील आये होंगे। दोपहरका वक्त था। भूखने हकदारकी तरह पेटमें डेरा जमा लिया था। बाबाजीने रसोअी बनाअी। पास ही खड़े अेक पीपलके पेड़के पत्ते बटोरकर स्वामीने या मैंने पत्तलें बनाअीं। बस, अिस पर हममें शास्त्रार्थ छिड़ गया। बाबाजी कहने लगे — "पीपलके पत्तोंकी पत्तल नही बनाअी जाती। अिस पर भोजन करना पाप है।" मैं भी यह मर्यादा जानता था। पीपल प्रत्यक्ष परमात्माकी विभूति है — 'अश्वत्थ. सर्ववृक्षाणाम्'। बाबाजीने दलील दी कि पीपलके पत्तोंकी पत्तल बनाकर अुन्हें जूठा करना नास्तिकता है। मैंने कहा — "पीपलकी पत्तल पर गृहस्थाश्रमी भोजन न करे, अैसा प्राचीन दंडक है। पर जिसने घर-बार छोड़ दिया, जो विरक्त हो गया, वह पीपलकी पत्तलका अधिकारी है। अुसके लेखे तो सर्वत्र परमात्मा ही भरा हुआ है। अन्न भी ब्रह्म है, पत्तल भी ब्रह्म है, और खानेवाला भी ब्रह्म है। 'तत्र को मोहः कः शोक अेकत्वमनुपश्यत.।'"

'मतलब-सिन्धु' की पद्धतिसे दी हुअी यह दलील भूखकी मददसे गले अुतरी, और मैंने तथा स्वामीने 'ब्रह्मार्पणम् ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्' श्लोक पढ़कर भोजन शुरू कर दिया। रसोअी बनानेका काम बाबाजीका था, अिसलिअे आर्य-परिपाटीके अनुसार वे हमें भोजन करानेके बाद आप खाने बैठे। बाबाजी कट्टर कर्मकांडी सनातनी थे। पवित्र और अपवित्रका विवेक बहुत किया करते थे। स्वामी अिसे समझ नहीं पाते थे। मैं यह सब समझता तो था, लेकिन अिसका पालन नहीं करता था। अतअेव बाबाजीके लिअे यही सुरक्षित मार्ग था कि वे पवित्र वस्त्र पहनकर अलग स्वतंत्र रूपमे भोजन करें। वे हमारे लिअे परोसकर रखते, और हमें खानेके लिअे बुलाते। हमारे खा चुकनेके बाद आप निश्चिन्त होकर भोजन करते। अिस तरह बाबाजीका मातृ-हृदय भी सन्तुष्ट होता था। आज जब बाबाजी पीपलकी पत्तल पर भोजन कर रहे थे, तभी अगले दिन देवप्रयागमें जिन मारवाड़ी वणिक् यात्रीसे भेंट

हुआी थी वह वहां आया जहां हम बैठे हुअे थे। प्रेम-भक्तिकी अुमंगमें अुसने हम तीनोंका चरणस्पर्श किया। बाबाजी अेकाअेक चौंक अुठे। अुधर अुस मारवाड़ीकी आंखें भक्तिके आनन्दसे छलक रही थीं। बाबाजीकी वह लम्बी दाढ़ी, बड़ी-बड़ी जटायें, नहानेसे सुचिर्भूत काया, पास ही पड़ा हुआ दासबोध ग्रंथ और भजनकी माला, यह सब देखकर मारवाड़ीने सोचा — "मैं कितना बड़भागी हूं, जो अैसे पावन ब्राह्मणके फिर दर्शन पा रहा हूं!" और बाबाजीके जीमें क्या चल रहा था?

साधारणतः मैं बाबाजीकी रूढ़िनिष्ठ धार्मिकताका हमेशा आदर किया करता था। अुनके कारण मुझे कअी बार असुविधा सहनी पड़ती थी। लेकिन वह सब मैं सन्तोषपूर्वक सह लिया करता था। अेक बार जब हम गंगाजीमें नावसे यात्रा कर रहे थे, बाबाजीने मुझसे पूछा — "मेरे कारण तुम्हें कितनी असुविधा होती है! मैं पवित्रता-अपवित्रताके ये नियम छोड़ दूं? यात्रामें चाहे जिस तरह निबाह लूंगा।" अिस पर मैंने अुनसे कहा था — "नहीं, यह बात नहीं बनेगी। जब मुझे विश्वास हो गया कि यह पावित्र्यवाद निरर्थक है, तभी मैंने अिसका त्याग किया है। 'मार्गे शूद्रवदाचरेत्' अिस वचनके अनुसार आप भी पावित्र्यका विचार छोड़ सकते हैं, लेकिन मुझे यह अच्छा न लगेगा। जिस दिन आपकी अन्तरात्माको विश्वास हो जायगा, अुसी दिन ये विधि-निषेध अपने-आप छूट जायंगे। तब तक अुन्हें निबाहते रहनेमें ही आपका श्रेय है।"

मारवाड़ी यात्रीका स्पर्श होते ही बाबाजी मेरी ओर देखने लगे। अेकाध दिन भूखों रह लेना बाबाजीके लिअे कोअी आपत्ति न थी। अुन्हें वैसा अभ्यास भी था। बेचारा मारवाड़ी चौका बनानेके लिअे अिधर-अुधर जगह तलाशने लगा। अितनेमें मैंने बाबाजीसे कहा — "आज आप पत्तल परसे अुठ न सकेंगे। आप निश्चिन्त होकर खाअिये। आज आपको किसी मारवाड़ी वैश्यने नहीं, बल्कि मूर्तिमन्त श्रद्धा-भक्तिने स्पर्श किया है। भक्तिके आगे कर्मकांडकी क्या चलाअी? अुसे अेक ओर रखना ही चाहिये। जरा सोचिये कि अगर आप खाना छोड़ देंगे, तो अिस भक्त-हृदयको कितना आघात पहुंचेगा? और हिचकिचाते हुअे नहीं, बल्कि प्रसन्न मनसे खाअिये।" बाबाजीकी आंखें डबडबा आयीं;

संकोचसे नहीं, किन्तु भावनाके अुद्रेकसे। बाबाजीने भोजन अैसे भक्ति-भावसे पूरा किया, मानो मन्दिरका प्रसाद पा रहे हों।

यहां ज्यादा आराम किये बिना ही हम आगे चले। आसपासकी वनशोभा तो 'प्रतिपर्वं रसावहम्' न्यायसे बढ़ती ही जाती थी। चीडके पेड़ गये और बांझके आये। बांझ ओककी अेक जाति है। जिसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है। शामको हम चट्टी पर आ पहुंचे। दुकानके पास अेक सुन्दर छोटा-सा पेड़ था। मैं वहा जा बैठा। स्वामी जगहकी तलाशमें गये। दुकानदारने जगह नहीं दी। अिसलिअे पास ही झाड़ोंके अेक मंडपमें रात बितानेका निश्चय किया। अिस मंडपमें हम जरा बैठे ही थे कि अितनेमें हमारे दोनों कुली आ पहुचे। दो कुलियों और अुनके साथके सामान-असबाबके कारण दुकानदारकी दृष्टिमें हमारी प्रतिष्ठा बढ़ी, और अुसने हमें रातमें सोनेके लिअे ठंडसे सुरक्षित अेक जगह दे दी। स्वामीने स्टोव सुलगाया। अिस अद्भुत यन्त्रको देखनेके लिअे आसपासके लोग अिकट्ठा हो गये।

हम लोगोंके मंडपमें घड़ीभर बैठनेका मेरे यात्राक्रम पर भारी असर हुआ। अिस मंडपमें अेक दक्षिणी साधु बैठा था। अुसने काश्मीरके अमरनाथका जिक्र किया। कहा —"वहां निर्जन और निर्वन पर्वतमें अेक गुफा है। अुस गुफामें हर पूर्णिमाके दिन बर्फका अेक शिवलिंग अपने आप बन जाता है, और अमावस तक पिघल जाता है।" अुस साधुसे सृष्टि-चमत्कारकी यह बात सुनकर मेरे मनमें यह दृढ़ संकल्प हुआ कि किसी-न-किसी दिन अमरनाथ जाना चाहिये। अिस संकल्पके परिणाम-स्वरूप मैं बाबाजीको साथ लेकर अमरनाथ कैसे गया, अिसका अपना अेक स्वतंत्र अितिहास है।

मनमें काश्मीर जानेके संकल्पका सेवन करते-करते मैंने भोजन किया, और थकी हुअी हड्डियोंको चटाअी-कम्बलकी गरमी दी। परन्तु अुस रात हमारे दुकानदारके यहां कोअी जलसा था। शायद कोअी पहाड़ी चारण आया था। सारी रात पहाड़ी कानोंको आनन्द देनेवाला संगीत हमारी नींदमें खलल पहुंचाता रहा। अिस संगीतकी गति अितनी विलक्षण थी कि बीच-बीचमें जो सपने आते अुनमें भी वह प्रवेश कर जाता।

टेहरी

जब-जब हिमालयके पहाड़ी लोगोंका संगीत सुननेकी बात याद करता हूं, तब-तब वर्ड्सवर्थकी 'दि सॉलिटरी रीपर' कविता याद आती है। क्योंकि पहली ही बार मैंने पहाड़ी पोशाकवाली अेक भरे बदनकी कन्यकाको हाथमें हंसिया लिये घास काटते और गाते हुअे देखा। हिमालयकी शुद्ध, तेजस्वी हवा, गेहूंकी खुराक और कड़ी मेहनत; फिर भला मुंहकी लालीका पूछना ही क्या था? अुसकी वह विचित्र पहाड़ी पोशाक देखकर मेरे मुंहसे कालिदासका वचन निकल पड़ा — 'किमिव हि मधुराणां मंडनं नाकृतीनाम्।' मैं अेक अर्धचन्द्राकार घाटी पार कर रहा था, और नीचेसे अुसका गाना बराबर सुनाअी दे रहा था। मेरे मनमें वर्ड्सवर्थकी ये सतरें आयीं —

"Will no one tell me what she sings ?—
Perhaps the plaintive numbers flow
For old, unhappy, far off things,
And battles long ago :
Or is it some more humble lay,
Familiar matters of to-day ?
Some natural sorrow, loss, or pain
That has been, and may be again ?

मुझे भी लगा कि अिस कन्यकाके गीतका अन्त आयेगा ही नहीं। अेकका अेक सुर बराबर निकल रहा था; दूर-दूरके वृद्ध पर्वत अुसे प्रतिध्वनित करके अुसके साथ खेल रहे थे। वर्ड्सवर्थकी तरह मैं निश्चेष्ट खड़ा तो न रहा, फिर भी आज तक अुसकी वह झंकार हृदयमें सहेज रखी है।

पहाड़ी संगीतमें विशेष विविधता नहीं होती। अुत्तराखंडकी यात्रा समाप्त करके जब हम बदरीनारायणसे गणाअी पहुंचे, तो वहां भी सारी रात गीत सुने थे। अुनमें भी अैसा ही लगा मानो रातभर अेक ही पंक्ति चलती रही हो। लगता है, सामवेदके समयसे अिन पहाड़ी लोगोंने बहुत थोड़ी प्रगति की है, नहीं तो अिस अेकश्रुति संगीतमें अुन्हें अितना मजा न

आता। दूसरे दिन सोलह मीलकी यात्रा करके हम टेहरी पहुंचे। रास्तेमें वनश्रीकी शोभा कुछ अपूर्व थी। परन्तु अुसका वर्णन किस प्रकार किया जाय? सुललित शब्दोंके लम्बे-लम्बे वाक्य लिखनेसे न तो लेखकको सन्तोष होगा, और न पाठकको कोअी बोध होगा। अिसलिअे यह मिथ्या प्रयास छोड़ देनेमें ही औचित्य है। किसी अूंचे पहाड़की पगडंडीसे नीचे आनेवाले बन्दरोंकी तरह पहाड़ अुतरकर हम टेहरीमें दाखिल हुअे। पहाड़ी लोगोंकी दृष्टिमें टेहरी अेक बड़ी सौन्दर्य-नगरी है, और क्लॉक-टॉवर (घटिगोपुर) अुसका सबसे बड़ा आभूषण है। परन्तु 'टेहरीके रास्ते पर गाड़िया चलती हैं', यह कहनेमें अुसकी प्रशंसाकी परिसीमा है।

हमने कड़ी भूख लेकर टेहरीमें प्रवेश किया। जाते ही अेक सिक्ख धर्मशाला पर नजर पड़ी। धर्मशाला यानी मुसाफिरखाना नहीं, बल्कि धर्मग्रन्थ — ग्रन्थसाहब — रखने, पढ़ने और श्रवण करनेका स्थान। अिसमें मन्दिर और मसजिद दोनोंके गुणोंका समावेश होता है। अिसका प्रबन्ध करनेवालेको ग्रन्थी कहते हैं। टेहरीकी धर्मशालाका ग्रन्थी भला आदमी था। अुसने हमें सब प्रकारकी सुविधायें कर दीं। सीधा-सामग्री जुटानेका काम स्वामीने किया था। बाबाजीने रसोअी बनाअी। श्रम-विभागमें मेरे हिस्से तो अूचा घाट अुतरकर भागीरथीमें नहाने और फिर भोजन कर लेनेका परिश्रम ही आया। अुस दिन मैं बहुत थक गया था। टेहरीमें डाकखाना था। अिसलिअे स्वामीको बहुत-सी चिट्ठियां लिखनी पड़ी थीं। मुझे विश्वास है कि डाकखानेके अस्तित्वको कृतार्थ करनेके लिअे ही स्वामीने अुस दिन अनेक पत्र लिखे थे। मैं अुनके पत्र पढ़ता ही न था, अिसलिअे मुझे अपने विश्वास पर सन्देह करनेका कभी मौका ही न मिला। बाबाजीने धर्मशालाके ग्रन्थीके साथ सिक्ख धर्मकी चर्चा छेड़ दी। दोनोंने माना कि वे हिन्दीमें बातचीत कर रहे हैं। ग्रन्थीकी भाषा हिन्दी चाहे न हो, पर शुद्ध पंजाबी थी। बाबाजीने कुछ मराठी और गुजराती शब्द बटोरकर अुनमें दस-पांच हिन्दी प्रत्यय लगा दिये, और राष्ट्रीय अैक्य साध लिया। मेरे जैसा चुस्त साधु अैसी प्रवृत्तिमें क्यों पड़ने लगा? मैंने तो दोपहरकी धूपकी सहायतासे खासी अेक घंटेकी 'समाधि' लगाअी।

हिमालय आनेसे पहले मैं भारत-धर्म-महामंडलके स्वामी ज्ञानानन्दसे मिला था। अुन्होंने टेहरीके अेक हाकिम पंडितका नाम बतलाया था। हम लोग अुनसे मिलने गये। हमें यात्रा-सम्बन्धी जानकारी हासिल करनेका शौक था, और अुस पंडितको अपना पांडित्य प्रकट करनेकी अभिलाषा थी। स्वामी जबरदस्त अिश्तिहारबाज ठहरे। जब अुस पंडितको मालूम हुआ कि मैं ग्रेज्युअेट हूं, तो अुसने मुझे जमीनसे अुठाकर कुरसी पर बैठनेको कहा। स्वामीने छूटते ही कहा कि हमारे बाबाने सारे धर्मग्रन्थोंका अध्ययन किया है। पंडितने मुझसे सवाल किया कि समाधिमें से मनुष्यका व्युत्थान किस कारण होता है? मैं अपनी दोपहरकी समाधिमें से व्युत्थान करके ही अुनके यहां गया था। पर जानेका प्रयोजन तो गंगोत्रीके रास्तेकी जानकारी प्राप्त करना था। शास्त्रार्थकी अिस चुनौतीसे मैं काफी असमंजसमें पड़ गया। यदि कहता हूं कि मैंने कुछ पढ़ा-गुना नहीं है तो स्वामी झूठे पड़ते हैं, और यदि जवाब देता हूं तो शास्त्रार्थ छिड़ जाता है। अिसलिअे मैंने कलि-विडम्बना प्रकरणमें सूचित युक्तिका प्रयोग किया। मैंने कहा — "मैंने जो कुछ भी पढ़ा है, सो सब अंग्रेजीमें पढ़ा है। अगर आप अंग्रेजीमें प्रश्न करें, तो सारा विवरण भलीभांति कर दूंगा।" बेचारा पंडित निराश हो गया और मेरी जान बची; अन्यथा मेरा अदृष्ट मुझे अिस शास्त्रार्थमें से व्युत्थान न करने देता।

यहांसे हम स्वामी प्रज्ञानन्द नामक अेक दक्षिणी साधुके दर्शन करने गये। कहते हैं, ये दक्षिणी पंडित सन् सत्तावनके गदरमें ठीक-ठीक फंसे थे। वहांसे साधुके भेषमें हिमालयमें भटकते-भटकते आखिर यहां आ पहुंचे थे। जिन दिनों यहां टेहरीमें हैजेका जबरदस्त प्रकोप हुआ था, अुस वक्त अिन साधुने कोअी साधना करके और पंचमुखी हनुमानकी स्थापना करके विलक्षण रीतिसे अुसका निवारण किया था। फलस्वरूप राजाकी अुन पर बड़ी भक्ति हुअी, और स्वामीजी राजगुरु बने। अुनके प्रखर पांडित्यकी कीर्ति दूर-दूर तक फैली थी, अिसलिअे दूर-दूरके विद्यार्थी अुनके पास संशय-निवृत्तिके लिअे आते थे। हमें कोअी शंका तो थी ही नहीं, मुमुक्षुभर था। अिसलिअे हमने सांसारिक थोड़ा

समय अुनके पास बिताया। अुनकी कोअी विधवा शिष्या तांबेकी चद्दर पर खुदे हुअे श्रीचक्रकी पूजा करती थी। मेरा ध्यान अुस ओर गये बिना न रहा। अिस बहनने चिराग जलाकर हमें स्वामीजीके सामने बैठाया। हमने स्वामीजीसे खूब बातें की, बहुत-सी बातें जानीं और पंचमुखी हनुमानके व मुख्य मन्दिरके दर्शन करके लौट आये।

टेहरीकी मुख्य शोभा तो भागीरथी पर बना तारका झूलता पुल है। अिस पुलके अिस छोर पर बने बरगद और पीपलके चबूतरे विशेष रूपसे ध्यान आकर्षित करते हैं। यात्रियों और साधुओंके लिअे छांहकी यह जगह धर्मशालासे भी ज्यादा सुभीतेकी है। जहां बड़ और पीपलकी छांह अेकत्र पड़ती है, वह स्थान पवित्र समझा जाता है। वह जप वगैरा विशिष्ट साधनाके लिअे अुपयुक्त होता है।

वटवृक्ष हमारे गृहस्थाश्रमके आदर्शका सूचक है। अुसकी जटायें बार-बार जमीनमें प्रवेश करके अेक विशाल अविभक्त कुटुम्ब बनाती हैं, और पीपल हर साल अपने सब पत्ते झाड़ डालता है। वह अपनी छाल पर पपड़ी भी नहीं जमने देता। यह संन्यास-धर्मका सूचक है। अुसके पत्तोंकी अखंड जाग्रति भी संन्यास-धर्मको ही द्योतक है। जहां अिन दो आश्रमोंका मिलाप होता हो, वहां हिन्दू समाजको विशेष पावित्र्य दिखाओ दे तो आश्चर्य क्या?

टेहरी अेक प्रसिद्ध पहाडी रियासत है। किसी जमानेमें अिस राज्यका विस्तार और अिसकी प्रतिष्ठा अितिहास-प्रसिद्ध थी। हिमालयके अुस पार तक यहांके राजाओंकी हुकूमत चलती थी। आज तो यह सिर्फ जंगलोंकी अपनी आमदनीके लिअे विख्यात है। अिसकी दूसरी ख्याति यहांकी जनताका अज्ञान और भीरुता समझी जा सकती है। शिक्षाके लिअे यहांके राजाके मनमें तनिक भी अुत्साह नहीं। वह समझता है कि शिक्षासे प्रजामें असन्तोष जड़ पकड़ता है। अंग्रेजी पाठशालाके अेक शिक्षकसे हमें यह बात मालूम हुअी! मैंने सोचा, तो फिर यह शिक्षक यहां क्यों बेगार ढोता है?

हम राष्ट्रीय संस्थाओंके लिअे साधन और सुविधायें खोजते फिरते हैं। हम सोचते हैं कि अगर पैसोंकी अिफरात होती, तो यह करते और

वह करते। पर तनिक पराक्रमी पूर्वजोंके अिन राजवंशीय अुत्तराधिकारियों-को देखिये। अिनके पास सब प्रकारकी सुविधायें होने हुअे भी ये किसी बातका विचार ही नहीं करते, और करते भी हैं तो आड़ा-टेढ़ा। चूंकि सन् सत्तावनका प्रयत्न व्यर्थ हो गया, अिसलिअे अुपर्युक्त पंडित गेरुआ वस्त्र धारणकर घटत्व और पटत्वके अवच्छेदकावच्छिन्नत्वकी चर्चामें डूब गये। राजा लोग किन-किन बातोंमें मगन हो गये हैं, अिसकी तो गिनती करते भी जी अुकताने लगता है। अरे, अेक बार हार गये तो हुआ क्या? हरअेक हारको नये प्रयत्नके लिअे जल्दी याद समझना चाहिये। हारसे मिलनेवाली शिक्षा कम महत्त्वकी नहीं होती। विज्ञान-शास्त्रियोंके सफल प्रयत्नोंके वर्णन हम पढ़ते हैं, परन्तु हम यह क्यों भूल जाते हैं कि अिन सफल प्रयत्नोंसे सौगुने निष्फल प्रयोग अुन्होंने धैर्यपूर्वक किये होंगे? अेकके बाद अेक असंख्य पराजयोंको जो सह सकता है वही पुण्यवान है। सन् सत्तावनमें पराजित होनेके बाद बुद्धिमान और पुरुषार्थी लोगोंको तुरन्त अेकत्र होकर सोचना चाहिये था कि हम क्यों हारे? किन-किन राष्ट्रीय दुर्गुणोंकी बदौलत हमने अपनी जीत पर पानी फेर दिया? हमारी पद्धतिमें कौनसी त्रुटि थी? अब अपनी समाज-रचनामें क्या हेरफेर करने चाहिये? नये प्रयत्नमें सारी प्रजाको अेक दिलसे सम्मिलित करनेके लिअे क्या करना चाहिये? जिन लोगोंने हमें परास्त किया अुनका देश कैसा है? वहांकी प्रजाका स्वभाव कैसा है? अुस स्वभावकी सिद्धिके लिअे अुन लोगोंने क्या-क्या किया है? हममें भी अैसे तत्त्व भिन्न रूपमें गुप्त स्थितिमें हैं या नहीं? अिन तत्त्वोंको हम कैसे पहचानें, कैसे विकसित करें?

अिस प्रकारका सोच-विचार करनेके बदले राजाने संन्यासी पंडितके लिअे वृत्ति नियत कर दी, संन्यासी पंडितने राजाको आशीर्वाद दिया, और दोनोंने मिलकर प्रजाको पचमुखी हनुमान दिये! और राष्ट्रीय जीवनके पचास बरस यों ही बीत जाने दिये।

परन्तु जिस तरह पूर्वजोंकी कीर्ति पर ही निभनेवाला नामर्द है, अुसी तरह जो बैठे-बैठे पूर्वजोंके दोषोंको ही गिनते बैठते हैं वे भी नामर्द हैं। मैं हिमालय आया हूं। यहां आकर अन्तर्मुख बना हूं। न

कोअी बन्धन है, न जवाबदेही है। फिर मुझीको अिन सारी बातोंका विचार क्यों न करना चाहिये? मुझे अवश्य ही यह सब सोचना चाहिये। अैसे अनेक विचार मनमें चक्कर काट रहे थे और थके हुअे गात्रों पर निद्रादेवीकी सत्ता स्थापित हो रही थी।

सवेरे अुठकर हम धरासुकी ओर चल पडे।

२९

बादरूका गांव

हिमालयकी यात्रा खतम करनेके बाद फिर अेक बार मैं दूसरे रास्तेसे टेहरीकी तरफ आया था, और पासके मालदीवल नामक गांवमें स्वामी रामतीर्थके मठमें अेक नियत समय तक साधनाके लिअे रहा था। अुस समयका अनुभव केवल काव्यमय ही नहीं, अपितु दो-तीन बातोंमें मेरी मनोवृत्तिमें स्थायी परिवर्तन करनेवाला सिद्ध हुआ। जिस यात्राका वर्णन हो रहा है अुस मूल यात्राके समय अिस छोटे-से गांवके विषयमें हमने कुछ भी नहीं सुना था। परन्तु स्मरण-यात्रामें टेहरीके बाद मालदीवल और वहांका अत्यन्त भीडवाला अेकान्त यथाक्रम आता ही है। यदि अिस अनोखे अनुभवका संक्षेपमें वर्णन किया जा सकता, तो वह सारा-का-सारा यहीं दे दिया जाता। स्मरण-यात्रामें यही अुचित होता। परन्तु जिस तरह अित्रकी शीशी खोलते ही अुसकी सुगन्ध पूरे वेगसे बाहर निकलकर कमरेमें भर जाती है, अुसी तरह मालदीवलका नाम लेते ही कषाय-मधुर संस्मरणोंके अितने अधिक फुहारे छूटते हैं कि अुन्हें अेक-दो लेखोंके प्यालोंमें भर देना अशक्य नहीं, तो कठिन अवश्य है। अिसलिअे स्मृतिके किवाड़ बन्दकर धरासुका रास्ता लेनेके सिवा दूसरा चारा नहीं।

टेहरीके राजाकी तालीम पाये हुअे पंडित हाकिमने गंगोत्री-जमनोत्रीकी जानकारी देते-देते अेक प्रश्न छेड़ा। जमनोत्रीकी तरफके लोग शौच हो जाने पर पानीका अुपयोग नहीं करते। अुनकी अैसी धारणा

है कि गंगा-यमुना सरीखी पवित्र नदियोंका — माताओंका — जल अशचि कामके लिअे बरतनेमें अधर्म होगा। हम कभी-कभी अुन्हें स्वच्छताके बारेमें अुपदेश देते हैं। पर अकसर मनमें शंका होती है कि चाहे यह श्रद्धा अज्ञान-जन्य ही क्यों न हो, क्या अिसे नष्ट करनेका हमें कोओ अधिकार है? जमनोत्रीकी तरफके लोग झूठ क्वचित् ही बोलते हैं। वहां चोरी नहीं होती। अुन्हें झूठसे काम लेना आता ही नहीं। सब कहनेमें चाहे हिचकें, पर अुसके बदलेमें दूसरा कुछ कहा जा सकता है, यह बात अुनके स्वप्नमें भी नहीं आयेगी। अुस हाकिमके ठीक शब्द मुझे याद नहीं हैं, पर अुनका आशय और अत्युक्ति अैसी ही थी। अुन्होंने मुझसे पूछा — "तो बतलाअिये हम क्या करें? अुन लोगोंका यह घना अज्ञान दूर करें और अुन्हें अपने समान बनावें, या अुन्हें जैसे-के-तैसे निर्बुद्धि और निर्दोष रहने दें?" मैंने जवाब दिया — "मैं अैसी किसी स्थितिको ओर्ष्याकी चीज न मानूंगा। गाय अिसलिअे पवित्र नहीं है कि वह झूठ नहीं बोलती। चूंकि पत्थर बोलता ही नहीं अिसलिअे अुसकी गिनती मुनियोंमें नहीं होती। और ये मछलियां गंगाका अखंड स्नान करती रहती हैं, अिस कारण से स्वर्गको जानेवाली नहीं हैं।" वे सज्जन कुछ बोलना चाहते थे। पर अिससे पहले कि वे कुछ बोलें, मैंने फिर कहा — "हां, वह श्लोक मुझे याद है, लेकिन वह कविकी कल्पनामात्र है। मछलियां जिस दशामें रहती हैं, अुसे आप स्वर्ग भले ही कह दें। परन्तु गंगास्नानके पुण्य-प्रतापसे अुन्हें वह स्वर्ग नहीं मिलनेवाला है, जिसे आप सदाचार-पालनके बाद पर मरनेके बाद प्राप्त करना चाहते हैं। आपको चाहिये कि आप अिन लोगोंको ज्ञानसे कदापि वंचित न रखें। जिनकी जड़ता श्रद्धा नहीं है। मनुष्यमें झूठ बोलनेकी शक्ति है, अुस शक्तिका वह प्रयत्नपूर्वक त्याग करता है, और अन्तमें झूठ बोलनेकी शक्ति होने पर भी अपने लिअे झूठ बोलना असम्भव कर देता है, तब कहीं अुसे सत्य-पालनका आनन्द, अुससे होनेवाली वाक्सिद्धि और चित्त-स्वातन्त्र्य प्राप्त होता है। मनुष्यका स्वयं अज्ञान रहना बड़े ही दुर्भाग्य विषय है। अज्ञान-जन्य सुरक्षितता भयानक है, अनर्थकारी है। जो सुना सो सब मान लिया यह वृत्ति भली नहीं; भोलापन है, मूढ़ता है।"

टेहरीसे आगे चढ़ाव-अुतार बहुत कम था। अिसलिअे हम जरा फुर्तीसे चलने लगे। रास्ता कैसा ही क्यों न हो, अपने कुलियोंसे हमारी चाल तेज रहती थी। पर आज देखते क्या हैं कि हमारे कुली हमसे आगे-आगे चलते थे। अिस असाधारण घटनाकी तरफ मेरा ध्यान गया। मैंने स्वामीसे कहा — "मालूम होता है, बादरू और कैरासिंह आज कुछ विशेष जवान हो गये हैं। हमसे भी आगे चलते हैं।" स्वामी कहने लगे — "आज रास्तेमें अिन लोगोंका गांव पड़नेवाला है। घर जानेकी अुत्कंठासे ये लोग आज अितने तेज चल रहे हैं।" फिर स्वामीने अिन मुग्ध पहाड़ी लोगोंकी अिस गृहनिष्ठ वृत्तिका खूब बखान किया। "होम! स्वीट होम!" वाली अंग्रेजी कविता स्वामीको याद आयी। हमने यह भी चर्चा की कि हमारे यहां यह भाव क्यों नहीं है? मैंने कहा — "देशाभिमान शब्द नया है। हम अभिमानको दोष समझते हैं। देशभक्ति शब्द कुछ अच्छा है, पर हमारा पुराना शब्द तो है जन्मभूमिवात्सल्य। वह कितना सुन्दर लगता है! यह ठीक है कि अिस वात्सल्यका बयान कुछ कवियोंने दुर्बलताके रूपमें किया है। परन्तु श्रीकृष्णके जीवनमें गोकुल-वृन्दावन सम्बन्धी जो अुत्कट भावना प्रौढ वयमें भी दिखाअी देती है, वह अिस देशभक्तिका ही घरेलू संस्करण है।"

मैं सोचने लगा कि यदि पहलेसे मालूम होता कि बादरूका घर आज आनेवाला है, तो टेहरीसे ही अुसके बाल-बच्चोंके लिअे थोड़ी मिठाअी रख लेते। स्वामीको मेरी यह सूचना अच्छी लगी, पर जंगलमें मिठाअी कहांसे आती? अितनेमें हमें अेक धर्मशाला मिली। वहां मिठाअीकी अेक दुकान थी। बादरू वहां तक जाकर रुक गया था — वह सिर्फ यह विश्वास कर लेना चाहता था कि हम अुस धर्मशालामें नहीं ठहरेंगे। अुसने कहा — "अभी दिन बहुत बाकी है। जरा और तेज चलेंगे तो हमारा गांव आ जायगा। यात्राके रास्तेसे बहुत दूर भी नहीं है।" और वह गिड़गिड़ाने लगा। स्वामीने मिठाअी खरीदी और हंसते-हंसते अुसे आश्वासन दिया — "आज रातको हम तुम्हारे घर ही भोजन करेंगे।"

यात्राकी पगडंडी छोड़कर हम तेजीसे अपने कुलियोंके गांवकी ओर चले। शबरी या विदुरको जितना आनन्द हुआ होगा, अुतना आनन्द

हमारे जिन कुलियोंको हुआ। रास्तेमें अेक जगह मैंने सुना कि यहां अेक साल पहले अेक आदमीको घास काटते समय सांपने काटा था और वह आदमी मर गया था। सांपकी चर्चा छिड़ने ही अक्सर यह बड़ी देर तक चलती रहती है। कुछ विषय विशेष रूपसे मनुष्यको प्रिय होते हैं। चोरोंका अुपद्रव, अकालका अनुभव, भूत देखनेके प्रसंग आदि जैसे अक्षय विषय हैं, वैसे ही सांपकी दुनिया भी बहुत लम्बायमान है। सांपों-सी बलखातिने खेतके किनारे-किनारे जानेवाली अपनी पगडंडी हम काटते चले और बादरू हमें अपने घरकी बातें कहता चला। रास्तेमें खेतोंके बीच पत्थरोंके अूचे-अूचे बांध देखकर मैंने कुछ सवाल पूछे। मैं ज्यों-ज्यों सवाल पूछता था त्यों-त्यों बादरू खिलता था। यों करते-करते बादरूका गांव आ लगा। फिर अुसे हमसे बात करनेमें कोअी मजा न रहा। शाम हो चुकी थी। किसान खेतसे घर जा रहे थे। बादरू जिसे देखता अुसीसे अपने स्त्री-बच्चोंके बारेमें पूछता। सगे-सम्बन्धियोंकी याद करता। वह तो बिलकुल मतवाला हो गया था। आखिर हमने अुसके घरके सामने खलिहानमें ही बैठकर रसोअी बनाअी, भक्तिभावपूर्वक दिये हुअे घी-दूध-दहीका भोग लगाया, और वहां अेकत्रित लोगोंके साथ गपशप लड़ाने बैठे।

कैरासिंह और बादरू शहरी मजदूरोंकी तरह भुक्खड़ मजदूर नहीं थे। धन, बाड़ी, ढोर, खेती और सामाजिक प्रतिष्ठा अुनकी स्थितिके अनुरूप अुन्हें पर्याप्त मात्रामें प्राप्त थी। पर्वतीय लोगोंके पास दुविधा होता है पैसेका। असलिअे यदि यात्राके मौसिममें अेकाध महीने कुलीका काम करके पचास-पौनसौ रुपये जमा ले तो अुनका सारा साल सुखमें बीतता है, और हाथ पैसेसे तंग न होनेके कारण घरका माल भाड़े जिस भावसे बेचनेकी नौबत आनेका डर नहीं रहता।

हमने अुन्हें बताया कि हमारे प्रान्तमें अैसे बड़े-बड़े पहाड़ नहीं होते। रास्ते सीधे होते हैं। अुन पर गाड़ियां दौड़ती हैं। बादरूकी बूढ़ी औरतें पूछने लगीं — "अेकदम सीधा रास्ता? थोड़ा भी चढ़ाव-अुतार नहीं? अरूसोग, तब तो तुम्हारे पैर थक जाते होंगे। और वहां धूप भी कड़ी पड़ती होगी! तुम लोग कैसे काम करते होगे?" पर अब

मैंने कहा कि हमारे यहां ढाओी-तीन पैसोंमें नारियल मिल जाता है, तब तो अुस गांवके बालक-बूढ़े सभीका जी हमारे प्रदेशमें आनेके लिअे ललचाया। हिमालयमें छोटे-से-छोटा नारियल भी चार आनेसे कम दाममें नहीं मिलता। अुसे कोओी फोड़ता नहीं। लोग खरीदकर मन्दिरमें चढ़ा देते हैं। मन्दिरका पुजारी फिर वही नारियल बाजारमें लाकर बेचता है। अिस प्रकार अेक ही नारियलके नसीबमें सालमें असंख्य बार चढ़ाया जाना बदा होता है। अिसकी कोओी गारंटी नहीं कि फोड़ने पर अुसके भीतर खोपरा निकलेगा ही।

फिर घरमें पानी लानेका विषय छिड़ा। मैंने कहा—"हमारे देशमें दूरके किसी तालाब या झीलसे पानी नहीं लाना पड़ता। वहां घर-घर कुअें होते हैं।" अुस गांवकी मुग्ध कन्यायें तो अिस बातकी कल्पना भी न कर सकती थी कि कुआ कैसा होता होगा। सयानी औरतें दया खाती हुओी कहने लगी—"हाय-हाय, तुम्हारे यहां स्त्रियोंको यह कितना बड़ा कष्ट है? अितनी गहराओीसे पानी खींचकर निकालनेकी हिम्मत तो तुम्हारी स्त्रियां ही कर सकती है। हमारे यहां अैसी कोओी मुसीबत नहीं। तालाबमें गगरिया भरकर सिर पर धरी और चले।" लेकिन यह चलना कैसा होता है? कहीं-कहीं तो खासा आधा मील पहाड़ चढ़ना या अुतरना पड़ता है! अिन लोगोंके लेखे अुसकी कोओी बिसात नहीं, जब कि जमीनके अन्दरसे रस्सीके जरिये बीस-पचीस हाथ गहरे पानीको अूपर खींचना अुनके खयालमें अेक बड़ी झंझट या कड़ी सजा ही समझी जायगी।

दूसरे दिन बादरू बोला—"अब मैं यहीं रह जाअूंगा। मेरा लड़का आपके साथ जायगा। बहुत तगड़ा है। आपके खूब काम आयेगा।" वैसा सब प्रबन्ध भी हुआ। परन्तु अैन वक्त पर अुस बाओीस सालके बालक (!) की मां अुसे 'परदेस' भेजनेकी हिम्मत न कर पायी, और आखिर हमारा बादरू ही हमारे साथ झल्लाता और बकता-झकता लदा।

राढ़ीकी सीमा पर

बादरूके गावसे धरासु तकका रास्ता कुछ भी किये याद नहीं आता। जब तक हमने बादरू और फौंरासिंहकी पहुनाओीका स्वीकार नहीं किया था, तब तक अुनका हमारा सम्बन्ध सेठ-नौकरका-सा था। अुनके पक्का घी-दूध खानेके बाद और अुनके आगनमें अेक रात विश्राम करनेके बाद हमारे बीच समान भाव जाग्रत हुआ। विश्रामके दिनकी खिचड़ी और रोजके चने-चबैने याने गेहूँकी फूलीके लिअे चखचख करनेकी बात फिर अुन्हें कभी न सूझी। हम भी अुनसे अधिक बोलने-बतलाने लगे; और अिस बातकी चौकसी रखने लगे कि अुन्होंने क्या और कब खाया-पिया? यों हमारे हृदय कुछ अधिक निकट आने लगे। यह भी नहीं कि अिस परिचयके कारण अुन्होंने हमारी सेवा पहलेसे कुछ कम की हो। अुलटे अिस विश्वाससे कि हम नाराज न होंगे, अपनी बुद्धि चलाकर हमारी सुविधाका ध्यान रखनेकी ही वृत्ति अुनमें बढ़ती गअी। नौकरों और मजदूरोंसे काम सख्ती करके काम लेनेकी अपेक्षा प्रेम और सद्भावसे काम लेनेसे काम अधिक अच्छा होता है। सेवा अधिक मिलती है। पर अिससे भी बढ़कर लाभ तो यह होता है कि नौकरोंकी घबराअी हुअी बुद्धि आश्वासन पाकर विशेष खिलती है और नौकर भी बुद्धिमान जीव बन जाते हैं।

धरासुमें रातको मजदूरोंमें खूब चर्चा चल रही थी। बंगालका अेकाध कोअी बड़ा जमींदार वहां पड़ाव डालकर ठहरा था। अुस रातको मुनीम और मजदूरोंमें बहुत चखचख चला करती थी। घंटों शान्ति नामको भी न मिलती थी। मुझे कुछ-कुछ स्मरण है कि यहीं हमें कुछ गुजराती यात्री मिले थे। स्वामीने अुनके साथ बातें की थीं। आगे ये ही लोग हमें गंगोत्रीमें मिले थे, और वहां मुझे अिनके रसोअियोंको खाने-पीनेके धार्मिक नियमोंके सम्बन्धमें 'व्यवस्था' देनी पड़ी थी।

धरासुसे जमनोत्री जानेवाला रास्ता फूटता है। यहां पहुँचने तक हमने जमनोत्री जाने या न जानेके बारेमें कुछ भी निश्चय नहीं किया

था। आखिर तय हुआ कि जाना चाहिये। वहीं हमने अपने कुलियोंसे अधिक मजदूरीका करार किया और हम आगे चले। कैरसिंह बोला — "हम जमनोत्रीके प्रदेशमें शायद ही कभी जाते हैं। अिस राढ़ी पहाड़के अुस पारका मुल्क अच्छा नहीं है। वहां बहुत खतरा है।"

यह पहाड़ी लोगोंकी मनोदशाका द्योतक है। जब कोअी बड़ा पहाड़ सामने आ जाता है तो वे सोचते हैं कि संसारका अन्त आ गया। वैसे, पहाड़ लांघना अुनके लिअे खेल है। पर अुस पारकी दुनिया जुदी और अपनी जुदी। अुधरके लोग कुछ और, हम कुछ और; अैसी कोअी गांठ अुनके मनमें बंध जाती है। मैं हाअीस्कूलमें था तब कवि कूपरकी अेक कविता कंठ की थी। यहां अुसकी दो पंक्तियां याद आती हैं:

> Lands intersected by a narrow firth
> Abhor each other. Mountains interposed
> Make enemies of nations who had else
> Like kindred drops been mingled into one.

जमना मैयाका नाम लेकर हम चल पड़े। माधवानन्दजीने भी हमारा साथ देनेका निश्चय किया। यहांसे हमने अेक घने जंगलमें प्रवेश किया। जिधर देखिये, छाया ही छाया थी। न कोअी पेड़ हिलता था, न डोलता था; मानों ध्यानस्थ ऋषियोंका सम्मेलन हो। हम अुत्साहसे आगे बढ़े जा रहे थे। बेचारे माधवानन्द हमारी बराबरी कैसे करते? वे पिछड़-पिछड़ जाते थे। अुन्हें बंगालीके सिवा दूसरी कोअी भाषा भी नहीं आती थी। अिसलिअे स्वामी बोले — "यदि अिस जंगलमें ये कहीं रास्ता भूल गये, तो बाघ-बघेरुओंका भक्ष्य बन जायंगे। हम जरा ठहरें और अुनकी बाट जोहें।" भला, यात्रामें ठहरनेकी सूचना किसे नहीं भाती? पर मैं बैठनेसे अिनकार कर देता। नागबेतकी अपनी लकड़ी पर शरीरका सारा भार डालकर मैं खड़े-खड़े ही आराम ले लिया करता। अेक बार बैठे और पैरोंमें रक्तका अभिसरण होने लगा कि पैर फूल जाने और चलना मुश्किल हो जाता। अिसलिअे मैं मुकाम पर पहुंचकर ही बैठना श्रेयस्कर समझता था।

क्या किसी भी लड़ाअीके लिअे यही नियम सही नहीं है?

माधवानन्द धीरे-धीरे रास्ता काटते आ रहे थे। मुझे प्रणव-गर्जना सूझी। अेक अूंचे शिखर परसे अूंची आवाजमें मैं चिल्लाया — "ॐ शान्ऽऽऽतिः शान्ऽऽऽतिः शान्ऽऽऽतिः।" दूरसे माधवानन्दका जवाब आया — "ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।"

अिस तरह ठहरनेमें हमारा बहुत-सा वक्त बीत गया। रात हो गयी। और हम पहाड़ अुतरनेके बदले अभी पहाड़के माथे पर ही पहुंचे थे। घनघोर अंधेरा था। बीचमें अेक छोटी-सी पगडंडी पास ही घरवालोंके अेक गांवकी तरफ जाती थी। अुसने भी हमारा समय लिया। कौनसा रास्ता मोक्षकी ओर ले जानेवाला था और कौनसा गलत रास्ते से जाकर 'सिद्धि' के फेरमें डालनेवाला था? हमने आसपास देखा, अूपर देखा, नीचे देखा, और प्रवासीकी सहज बुद्धिसे अचूक निर्णय किया कि पगडंडीवाला रास्ता छोड़ देना चाहिये। अंधेरेमें तो भगवानके भरोसे ही चलना होता है। शान्तिकी गर्जना करते हुअे हम शिखर पर पहुंचे। अितनेमें रजनीकान्त प्रकट हुअे, और आसपासका अंधेरा कुछ-कुछ छटने लगा।

अंधेरेमें खानेको क्या मिलेगा? यह सवाल तो मनमें अुठता ही कैसे? तकदीरसे रहनेको जगह भी मिल जाय तो बड़ी बात हो। हमने सुन रखा था कि जंगल-विभागका अेक दफ्तर रास्तेमें पड़ता है। हम अुसीको लक्ष्य करके चले; वह दफ्तर तो आता ही न था। अितनेमें बाबाजीको अैसा लगा मानो यहीं कुछ निठल्ले लोग बैठे गपशप लड़ा रहे हैं। जिधरसे अुन्होंने यह आवाज सुनी थी अुस दिशामें जाकर स्वामी समाचार लाये कि जरा और अूंचे पर जंगलके सिपाहियोंका अेक थाना है और वहींसे यह आवाज आ रही है। हम वहां पहुंचे। पर जंगलके वे दोपाये बाघ भला हमें अपने पास क्यों फटकने देते? वे गुर्राये, डराये, हमारी तरफ झपटे, पर हम टससे-मस न हुअे। अंधेरेमें भी स्वामीकी वाणीकी मोहिनी काम कर गयी। और वे ढीले बाघ कुछ नरम पड़े। अुन्होंने हमें चबूतरे पर भी आने दिया। फिर बातें होने लगीं। पहले तो अुन्होंने जंगलके कानूनकी बड़ाअी और अुसका महत्त्व समझाया। कहा — "कोअी गलतीसे थोड़ी फेर दे, तो नमूना बंदा का जाय,

लोगोंकी जान जोखिममें पड़ जाय, और अिससे भी बढ़कर यह बात है कि सरकारका बेहद नुकसान हो जाय।"

अितनेमें माधवानन्द भी आ पहुंचे और अुनकी बंगाली वाग्धारा बहने लगी। मैंने अुनसे दो-तीन बार कहा कि मैं बंगालीका ब्रह्माक्षर भी नही जानता। हां, 'आनन्दमठ' के कुछ पन्ने पढ़े थे; लेकिन आखिर बंगाली अुच्चारण तो बंगाली अुच्चारण ही है। अुनका ज्ञान तो गुरुमुखसे ही हो सकता है। मैंने अुनसे मराठीमें कहा, हिन्दीमें निवेदन किया, निष्काम कर्मके रूपमें अंग्रेजीमें भी अनुनय किया, परन्तु माधवानन्दजीकी वाग्धारा किसी अुपायसे कुंठित न होती थी। किसी कविने कहा है—"आअि सिंग बिकॉज़ आअि मस्ट" (मैं गाता हूं, क्योंकि बिना गाये मैं रह नही सकता।) माधवानन्दकी प्रतिभा अिसी तरहकी थी। मैं समझूं या न समझूं अुनकी बलासे! अुनके लिअे यह काफी था कि मेरे कान मनुष्यके कान थे। अुन्होंने अपने श्रवणांजलिपुटपेय वाचामृतका पान मुझे बरबस कराया। मैं भी जी कड़ा करके निष्काम कर्म समझकर शान्तिसे सब सुनता रहा, मानो भैंसेकी पीठ पर वृष्टि हो रही हो।

चन्द्रमा अुगा तो, पर आकाश जितना चाहिये अुतना स्वच्छ न था। और हम थके-मांदे थे। अिसलिअे किसी प्रकारकी छेड़छाड किये बिना ही सो गये।

स्मृति धोखा दे रही है। परन्तु बहुत करके वह अद्भुत अनुभव धरासुमे रवाना होनेके दिन ही हुआ था। रास्ता चलते-चलते अेक स्थान आया जहा पहुंचते ही हृदयमें अैसा भाव पैदा हुआ कि यह तो कोअी पूर्व-परिचित स्थान है। मानो किसी समय मैं यहां रह चुका हूं। यह भाव कैसे और क्यों पैदा हुआ, कुछ समझमें नही आया। कअी बार कअी प्रकारसे अिस पर विचार किया, पर कोअी निर्णय न हो पाया। निश्चय ही अैसी किसी जगहमें पहले कभी मैं गया नहीं था। तो फिर हृदयमें अैसा भाव क्यों अुत्पन्न हुआ? क्या अिस रमणीय स्थानको देखकर कोअी अस्पष्ट कल्पना या वासना भूतकी तरह अिससे चिपट गयी? कालिदास होते तो तुरन्त कहते:

तच्चेतसा स्मरति नूनम् अबोधपूर्वम्
भावस्थिराणि जननान्तर-सौहृदानि।

जो भी हो, पर जी चाहने लगा कि आगे-पीछेका सारा विचार छोड़कर यहीं रह जाअूं। परन्तु क्या मनुष्य-निवाससे शून्य अुस महारण्यमें केवल काव्यमय कल्पनाके भरोसे रहना सम्भव होता?

३१

यामुन अृषि

सवेरे अुठकर हमने गंगाजीका रास्ता लिया। यमुनाके दर्शनसे चित्त प्रसन्न हुआ ही था। अुसे अप्रसन्न करनेवाली अेक भी चीज प्रकृतिके अिस प्रान्तमें न थी। हां, अेक मुश्किल जरूर थी। पहाड़ पर चढ़ते समय जितना सृष्टि-निरीक्षण हो सकता है, अुतना अुतरते समय नहीं हो सकता। चढ़नेमें हम धीरे-धीरे बढ़ते हैं। चारों तरफ देख सकते हैं। और, शरीरको कितना ही जोर क्यों न लगाना पड़े, तो भी अुसकी तरफ ध्यान नहीं देना पड़ता। पर अुतरते समय पहाड़का अुतार ही हमसे जल्दी कराता है। आसपास देखनेके बनिस्बत पैरके नीचेकी जमीन देखना बहुत जरूरी हो जाता है। हर कदमके साथ सारे शरीरका भार घुटनों और टखनों पर आ पड़ता है, और पैर संभालनेकी कसरत तो कभी प्रकारसे करनी पड़ती है। पर महादेवजीकी लाठी आगकी तरह हमारे पास लकड़ीका लाठा पैर था, अिसलिअे हम सुरक्षित थे।

जंगलमें देखने योग्य तो बहुत-कुछ होता है। तरह-तरहके वृक्ष और पत्ते, छोटी-बड़ी पहाड़ियोंकी व्यूहरचना, और अूंचे-अूंचे शिखरोंकी चढ़ा-अुतरी। परन्तु अिन सबकी अपेक्षा मेरा ध्यान तो वृक्षोंके तनोंकी तरफ ही अधिक जाता है। पुष्टतनमें मुझे पेड़ देखकर विश्वामित्र आदि अृषियोंका स्मरण होता है। अैसा लगता है, मानो आजानुबाहु वैरागी तपस्या कर रहे हों, और अुनके पैरोंमें अनेक प्रकारकी आदिया पड़ रही हों। पेड़ोंकी अैसी हालिया देख मुझे बड़ा आश्चर्य होता है। पेड़ोंके तने और टहनियोंके

आकार, अुनकी छाल और रंग देखकर मैं अुनमें से हरअेकके स्वभावकी कल्पना कर सकता हूं। कुछ पेड़ स्वयं अपने प्रति कठोर होनेमें जीवनकी सार्थकता मानते हैं। कुछ खा-पीकर सुखसे बैठनेवाले लोगोंकी तरह गोलमटोल होते हैं। कुछ बिलकुल झुकी हुअी शाखाओंवाले पेड़ अैसे लगते हैं, मानो मराठा अितिहासके राजाराम-कालीन वीरोंकी तरह विपत्तिके कारण असहाय होने पर भी अविचल भावसे लड रहे हों। और कुछ अैसे प्रतीत होते हैं, मानो सारे वनका अितिहास प्रस्तुत करने, सामग्री जुटाने और अुसे संभालनेका काम कर रहे हों! कुछ पेडोंकी त्वचा अितनी सुकुमार होती है कि अुन्हें देखकर शकुन्तलाको तपस्या करते देख जिस प्रकार दुष्यन्त बेचैन हो अुठा था अुसी प्रकार हमारा मन भी अस्वस्थ हो जाता है। और दूसरे कुछ पेड़ोंके कोटर देखकर अैसा मालूम होता है, मानो वे पेड़ मधुमक्खियोंको या तोतों-जैसे पक्षियोंको आश्रय देनेके लिअे अपना हृदय चीरकर खोल रहे हों। पेड़ोंकी असली शोभा देखनी हो तो वर्षाके बादकी धूपमें देखनी चाहिये, या फिर अुस समय कि जब पक्षियोंके झुण्डके झुण्ड फूलोंकी तरह पेड़ों पर आकर बैठे हों। चीड़के पेड़के तनेमें रस्सीके बलकी-सी रेखायें होती हैं। अिससे अैसा भास होता है, मानो अिस तनेको मजबूत बनानेके लिअे प्रकृतिने कुछ विशेष मेहनत की है।

अिस प्रकारकी विविध सुन्दरता देखता-देखता मैं नीचे अुतर रहा था, अितनेमें निगाह अूपरसे नीचे गयी और जमुनाजीके दर्शन हुअे। जमुनाजीको पहचाननेमें देर न लगी। हो न हो यही वह काली कालिन्दी है, जिसके जलमें मैं प्रयागराजमें नहाया था, जिसके कछुवोंको वृन्दावनमें बन्दरोंसे जूझते देखा था, जिसके दर्पणमें ताजमहलका प्रतिबिम्ब देख मैं आश्चर्य-चकित हुआ था, और जिसके नामके साथ छुटपनसे मेरे मनमें कालिया-मर्दनके चित्र संलग्न थे। अिस स्थान पर जमुनाजी अैसी लगती हैं, मानो कोअी दोहरे हाड़की मजबूत काठीवाली सोलह-सत्रह वर्षकी सुन्दर, निरागस बाला यौवनके भानके अभावमें दौड़ती, अुछलती-कूदती, पैंजनियों और घुंघरुओंके नादकी धुनमें सारी दुनियाको भूल रही हो। जब हम पहाड़ अुतरकर नीचे आये तो अुनके विविध रंगोंवाले निर्मल जलका दर्शन हुआ।

पानी वह नीली-काली स्याही सरीखा दिखाओ देता है, तो कभी जब पत्थरों परसे बहता है, नीलिभूयेके रंगका हो जाता है। जब लहरें पत्थर पर टूक-टूक होकर हुंम पड़ती हैं; तब वह बिलकुल शुभ्र बन जाता है, और तिस पर अुसे पुनः नील-गम्भीर होते भी देर नहीं लगती। निर्मल जलकी अिन अठखेलियोंसे तपोवृद्ध और महाकाय पत्थर मानो धन्य-धन्य हो रहे थे। पानी अपनी अेक तरहकी मस्तीमें नाच रहा था, और पत्थर दूसरी तरहकी मस्तीमें चूर थे। भला, अुनके मनमें क्या चल रहा होगा? और मेरे मनमें जो कुछ चल रहा था, अुसका अुन्हें पता होगा? कुछ दूर तक सफेद बालू पर चलकर हम जमुनाजीके किनारे जा बैठे। अितनेमें कुछ पर्वतीय लड़कियां अुधरसे गुजरीं। अुन्हें यह देखकर अचम्भा-सा हुआ कि हम यहां बैठे-बैठे क्या देख रहे हैं। जिधर हमारी दृष्टि दौड़ती अुधर ही वे यह जाननेके लिअे देखने लगतीं कि आखिर वहां अैसी कौनसी खास चीज है। जब कुछ न मिला तो अपनी आंखोंसे यह सवेदना करती हुओं कि यहां तो कोओ खास चीज नहीं दीखती, वे चली गओं। भला, वे भी कैसे जानतीं कि मेरे मनमें क्या अुधेड़-बुन चल रही है?

यह स्थान गंगाणी कहलाता है। गंगाणीका अर्थ क्या गंगा-आनी (लायी गयी) है?

अेक ऋषि था। वह गंगा और यमुना दोनों लोकमाताओंकी निर्विशेष भावसे भक्ति करता था। दोनोंके दर्शन किये बिना अुसका अेक भी दिन न जाता था। वह जमुनाजीके तीर पर रहता और नहाता, पर रोज नहाने गंगाजी पर जाता। बीचमें रास्तेके समान कोओ पर्वत खड़ा था। अुसने कभी अेक क्षणके लिअे भी अुसकी परवाह न की। पन्द्रह-बीस मीलका अन्तर काटना अुसके लिअे खेल था। जब तक शरीरने साथ दिया, अुस वतनिष्ठ ऋषिने अिस नियमका बराबर पालन किया। पर जब शरीर नितान्त क्षीण हो गया, तो अुसने गंगाजीकी स्तुति की। गंगाजीको अुस पर दया आयी। फल यह हुआ कि जमुनाजीके तीर पर अुसके आश्रमके निकट स्वेत जलके झरनेके रूपमें गंगाजी प्रकट हुओं। ऋषि कृतार्थ हुआ। अिस नूतन गंगामें नहानेके लिअे ऋषि जितने दिन

जिया, 'माहात्म्य' में अिसका कहीं अुल्लेख नहीं है। हम अुस झरनेको देख आये। मेरे मनमें ॠषिके लिअे अैसी भक्ति पैदा हुअी, मानो वह मेरे ही गोत्रका कोअी पूर्वज रहा हो। वह जितना बडा तपस्वी था अुससे भी बढ़कर कवि था। कविकी यह व्याख्या कि 'जो काव्य लिखता है वह कवि है' अव्याप्त भी है और अतिव्याप्त भी। पर यथार्थ व्याख्या यह है कि 'जिसका जीवन ही काव्य है, वही कवि है।' अुस ॠषिने अधिक नहीं, तो कम-से-कम तीस-चालीस वर्षों तक गंगा और यमुनाकी अुपासना अवश्य की होगी। अिसे अपने जीवनका अेक नियम बनाते समय अुसके हृदयमें कैसे-कैसे भाव अुद्‌भूत हुअे होंगे? और अुस नियमके पालनमें प्रतिदिन अुसे कितना आनन्द आया होगा? चारों धामोंकी यात्रा करते हुअे प्रतिदिन नये-नये अनुभव करनेमें अेक प्रकारकी संस्कारिता निहित है, परन्तु प्रतिदिन दो बार अुसी रास्तेका चक्कर लगाने पर भी अुससे रोज नये-नये आनन्दका अनुभव करनेमें अेक दूसरे प्रकारकी, निश्चित स्वरूपकी और गहरी संस्कारिता निहित है। प्रतिदिनके अिस क्रमके कारण अिस ॠषिका अुस पहाड़के पेड़ोंसे ही नहीं बल्कि अेक-अेक बादलसे भी परिचय हो गया होगा। अुसके सामने न जाने कितने पौधे पेड़ बन गये होंगे। अुसने न जाने कितनी बार जमुनाका जल घटते और बढ़ते देखा होगा। और कुतूहलके योग्य कुछ भी न रह जानेके कारण अुसकी रोजकी यात्रा अुसे अपने चित्तको अन्तर्मुख बनानेमें सहायक हुअी होगी। यह अेकाग्रताका फल है। संसारका अनुभव है कि बड़ी-से-बड़ी व्यावहारिक और आध्यात्मिक समस्या हल करनेमें अैसी अेकाग्रता पत्थर फोड़नेवाली सुरंगसे भी अधिक परिणामकारी सिद्ध होती है।

अुन यामुन ॠषिका ध्यान विसर्जन कर ज्यों ही मैं अपने आसपास देखने लगा, तो न स्वामी दिखाअी दिये और न बाबाजी ही। वे कुछ दूर अेक झोंपड़ीमें ताजा मक्खन खरीदनेमें मशगूल थे। मैं भी वहीं पहुंच गया। अुस गोरसको हमने अुन ॠषिका ही प्रसाद समझा, और अुसी भावनासे अुसे 'पाकर' हम आगे बढ़े।

३२

राणागाँव

गंगोत्रीको छोड़ हम आगे चले। नियमकी तरह स्वामी तेज़ीसे सबसे आगे चल रहे थे। बाबाजी अुनके पीछे-पीछे अुनकी बराबरी पर आनेकी कोशिश करते हुअे चल रहे थे और स्पर्धामें विश्वास न होनेके कारण मैं अपनी चालसे धीरे-धीरे रास्ता तय कर रहा था। फुर्ती और थकावट दोनोंसे मेरी दोस्ती कम-से-कम थी। कुछ आगे जाने पर हमने विचित्र पोशाकवाले पहाड़ी स्त्री-पुरुषोंकी अेक छोटी-सी छावनी देखी। यह कोअी स्थायी गाँव न था। किसी खानाबदोश टोलीका कामचलाअू निवास था। अिन बनजारा जातियोंकी स्त्रियोंकी पोशाकमें, हाव-भावमें और बोलीमें अेक प्रकारकी अुग्रता और लुटेरापन होता है। 'अबला' या 'लज्जा' नाम अिनके लिअे होता ही नहीं। अिन जातिकी स्त्रियोंके पाससे होकर गुजरते समय मनमें अेक तरहका डर-सा बना रहता है। बनजारोंकी दूसरी विशेषता है अुनका आलस्य। जो कुछ करना होता है, सो अचूक कुशलतापूर्वक फौरन कर डालते हैं और फिर आलस्यमें मग्न हो जाते हैं। अुन्हें देखकर अैसा लगता है, मानो वे अिस चिन्तामें पड़े हों कि अीश्वरने अितना सारा फालतू समय क्यों पैदा किया है? आखिर अूबकर और जमुहाअियाँ ले-लेकर वे अुसकी पूर्ति करते पाये जाते हैं। अिस छावनीके पाससे रास्ता अेकाअेक दाहिनी तरफको मुड़ता था। अिसलिअे सही रास्तेका निश्चय करनेके लिअे हमें वहाँ ठहरना पड़ा, और जबरदस्ती अिन लोगोंका निरीक्षण करना पड़ा। आगे चलकर रास्ता बहुत विकट आया। स्वामी, बाबाजी और मैं तीनों अिकट्ठे होकर अिस विचारमें डूब गये कि आखिर रास्ता किस दिशामें हो सकता है। आगेका प्रदेश बड़े बड़े बिखरे हुअे, टूटकर पड़े हुअे पत्थरोंसे भरा हुआ था, मानो पाँच-दस पहाड़ोंके बीच घमासान युद्ध हो गया हो, और अब रणभूमि पर विनाशके अवशेषोंके

सिवा कुछ भी न बचा हो! जिधर नजर दौड़ाअिये पत्थर ही पत्थर! दूर नजर डालने पर अेक पहाड़की बाजू दीखती थी, मगर वह भी पत्थरोंके ढेरोंकी ही बनी थी। हम सहज ही अनुमान कर सके कि पृथ्वीके पेटमें कोअी अुत्पात हुआ होगा और किसी पहाड़के चूरचूर हो जानेसे पत्थरोंकी बाढ़ आ गयी होगी।

अब अिस पहाड़ी रणक्षेत्रमें से रास्ता किस तरह निकालें? रण-नदी-सी जमुना बीच-बीचमें 'मत जाओ' कहती थी। आखिर स्वामीने अेक जगह अेक कामचलाअू पुल खोज निकाला। हरअेक पहाड़ी मनुष्यको पुल बांधना आना ही चाहिये। फौजमें कामचलाअू पुल बांधनेमें कुशल लोगोंकी अेक अलग टुकड़ी ही होती है। पहाड़ी लोगोंके लिअे पुल बांधनेकी कला अेक जीवन-कला है। अुस पुल परसे अपने शरीरको भलीभांति साधते हुअे हम आगे गये। आगे चलकर अेक पत्थरके नीचे दबा हुआ कागजका अेक टुकड़ा मुझे मिला। अुस पर अंग्रेजीमें जो कुछ छपा था अुसे ध्यानसे देखा, तो त्रिकोणमितिके कुछ अंक अेक कोष्ठकमें लिखे हुअे दिखाअी दिये। मैंने अुस कागजसे अुसकी जीवन-कथा बार बार पूछी, परन्तु त्रिकोणमितिके अंकोंके कोष्ठकोंकी पुनरावृत्तिके सिवा और कुछ बतलानेसे अुसने अिनकार किया। अुसने सोचा होगा, 'जो गणित नहीं जानता, अुससे बात क्या करें?' कोअी सरकारी अधिकारी अथवा साहसी यात्री अिस रास्ते गया होगा। वह बर्फमें दब गया होगा, या बाघ-भेड़ियेका शिकार बना होगा — कौन जाने क्या हुआ होगा? अुसका सामान आंधी और पानीसे तितर-बितर हो गया होगा या गल गया होगा। अथवा यहां जो पहाड़ ढह गया था अुसके नीचे कोअी यात्री दब गया होगा, और अुसके कागजोंमें से यह अेक अवशेष अुड़ता-अुड़ता आकाशमें विहार करता रहा होगा, और अन्तमें कुछ न सूझनेके कारण यहां आकर गिरा होगा। 'यों बार-बार क्यों अुड़ता फिरता है? चुपचाप बैठा रह न भाअी!' असा कह कर कोअी पत्थर अुसकी छाती पर सवार हो गया होगा, और अब यह कागज किसी अुद्धारकके आगमनकी राह देखता यहां पड़ा होगा। यहांके 'लेण्डस्लिप' के स्मृतिचिह्नके रूपमें कअी दिनों तक मैंने कागजके अुस टुकड़ेको संभालकर रखा था।

परन्तु बादमें अुसका क्या हुआ, कुछ पता नहीं। अगर कागज़का वह टुकड़ा मुझसे खोया होता, तो कदाचित् मैंने अुसे किसी पदार्थ-संग्रहालयमें रख दिया होता। घनघोर जंगलमें, जहां मनुष्यकी बस्तीका नाम-निशान नहीं, जहां पर्वतके अुत्पात और जल-प्रवाहके प्रपातकी ही लीला छायी हो, वहां मनुष्यके दिमागसे पैदा हुआी त्रिकोणमितिके कागज़का टुकड़ा मिल जाय, तो किसे अिसका विस्मय न होगा?

यहां मुसीबतसे रास्ता निकालते-निकालते हम आगे चले। अितनेमें दो पहाड़ोंके बीचसे निकलकर गूढ़ भावसे आती हुआी जमुना हमें दिखाओी दी। पानीका रंग और अुसकी स्थिरता देखकर मनमें निश्चय हुआ कि यहां गहरा दह है। आगे जानेका कोओी रास्ता न था। दाहिनी तरफ खड़ा पहाड़ था और बायीं तरफ पर्वतके पैर पखारनेवाला पानी। अब निश्चय हो गया कि पानीमें पैर डाले बिना आगे बढ़ा ही नहीं जा सकता, तो पहाड़ी पगडंडी पकड़कर हम पानीके किनारे-किनारे पानी काटते हुओ आगे बढ़े। अिस तरह पानी ही पानीमें बहुत दूर तक जानेकी बात नहीं थी, फिर भी पानीने हमारी काफी खातिरदारी की। पानीकी ठण्डक घुटनों और कमरसे अूपर चढ़कर कलेजे तक पहुंच गयी।

अब चढ़ाव लगा। अंधेरा बढ़ चला। ज्यों-त्यों करके रानागांव पहुंचे। यहां शनैश्चर महाराज ग्रामदेवताके रूपमें पूजे जाते हैं। हम अुनके काठके मंदिरमें जा पहुंचे। थकावट अितनी आ गयी थी कि जाड़ेकी सरदी होने पर भी पैर धोना करते ही सोनेकी अिच्छा होती थी। गांवके लड़के कुतूहलपूर्ण नजरसे हमारा स्वागत करते थे। अगर लड़के शहरके हैं, तो वे यात्रीसे अेकाध कहानी सुनानेका आग्रह जरूर करेंगे। और अगर शहरसे लगे हुओ किसी गांवके लड़के हैं तो वे सलाम करके पैसा मांगेंगे। हमारी तरफके देहाती बालक नम्र-भावसे सवाल पूछते हैं — "आप कहांसे आये हैं? आपके गांवमें अमुक क्या है? अमुक क्या?" अिस तरफके लड़के यात्रीसे अेक ही चीज मांगा करते हैं — "सूओी दो, धागा दो, बिन्दी दो!" पहाड़ी स्त्रियां और लड़कियां कपाल पर रोरीका तिलक लगाकर अुस पर अबरक या 'सेंदुर' की टिकिया अथवा काचकी गोल टिकुली लगा लेती हैं। अिसे अुधरके लोग 'बिन्दी' कहते हैं।

पहाड़ी लड़कियां अिस बिन्दी पर निछावर हो जाती हैं। हिन्दुस्तानका कोअी यात्री पहाड़ोंमें जाये और अपने साथ सुअी, धागा और बिन्दी ले जाये, तो हर किसी गांवमें अुसका सत्कार जरूर होगा। मन्दिरके सामनेवाले कमरेमें अेक गड्ढा था — ठीक वैसा जैसा हमारे यहांके अखाड़ोंमें कुश्तीका होता है। हम अुसीमें सो गये। अेक पहाड़ी कुत्ता गुर्राता हुआ सारी रात हमारी रखवाली करता रहा। आम तौर पर यह कहा जा सकता है कि पहाड़की गायें भेड़-बकरियोंके बराबर छोटी-छोटी होती हैं; जब कि पहाड़ी कुत्ते बाघकी तरह बड़े होते हैं।

आधी रातको थकान अुतरी और मैं लघुशंका करने बाहर गया। सामने पहाड़का अेक प्रचण्ड शिखर अनन्तकालसे बर्फ ओढ़कर सो रहा था और अुस पर चन्द्रमाका शीतल प्रकाश सोनेके पानीकी तरह चमक रहा था। आधी रातकी बे-सिर-पैरकी कल्पनाने अुस पहाड़में महादेवजीका माथा देखा। सामने विशाल भाल प्रदेश था, अुसके नीचे दो आंखों-सी वे दो घाटियां, अुनके बीचमें वह चपटी नाक, अुसके नीचे मुंहके साथ अेकाकार बनी हुअी विचित्र-सी ठोड़ी, और दोनों कान तो अैसे लगते थे मानो रूठकर दूर जा बैठे हों; और महादेवजीका वह माथा तना हुआ न था, बल्कि अैसा मालूम होता था, मानो थकनेके बाद आराम लेनेके लिअे अेक ओर ढल पड़ा हो। आसपासकी ठंड फौजी कानूनकी तरह मन्दिरके अन्दर जानेका हुक्म दे रही थी, फिर भी पहाड़का वह विशाल दृश्य किसी भी तरह पैरोंको अुठाने नहीं देता था। जब कि चारों तरफका पानी जमकर बर्फ बन चुका था, अैसे समय काव्यकी प्यासी कल्पना अुस दृश्यका पान करनेमें लीन थी। आकाशमें बृहस्पतिका तारा वृश्चिक राशि पर विराजमान था।

सवेरा हुआ और गांवके भक्त लोग लम्बे-लम्बे और मोटे चोगे पहनकर मन्दिरमें आने लगे। यह सोचकर कि अब यहां और अधिक रहनेकी जरूरत नहीं, हम आगे बढ़ गये।

परन्तु बादमें अुसका क्या हुआ, कुछ पता नहीं। अगर कागजका वह टुकड़ा मुझसे बोला होता, तो कदाचित् मैंने अुसे किसी पदार्थ-संग्रहालयमें रख दिया होता। घनघोर जंगलमें, जहां मनुष्यकी बस्तीका नाम-निशान नहीं, जहां पर्वतके अुत्पात और जल-प्रवाहके प्रपातकी ही लीला छाअी हो, वहां मनुष्यके दिमागसे पैदा हुअी त्रिकोणमितिके कागजका टुकड़ा मिल जाय, तो किसे अिसका विस्मय न होगा?

बड़ी मुसीबतसे रास्ता निकालते-निकालते हम आगे चले। अितनेमें दो पहाड़ोंके बीचमें निकलकर गूढ़ भावसे आती हुअी जमुना हमें दिखाअी दी। पानीका रंग और अुसकी स्थिरता देखकर मनमें निश्चय हुआ कि यहां गहरा दह है। आगे जानेका कोअी रास्ता न था। दाहिनी तरफ खड़ा पहाड़ था और बायीं तरफ पर्वतके पैर पखारनेवाला पानी। जब निश्चय हो गया कि पानीमें पैर डाले बिना आगे बढ़ा ही नहीं जा सकता, तो पहाड़ी पगडंडी पकड़कर हम पानीके किनारे-किनारे पानी काटते हुअे आगे बढ़े। अिस तरह पानी ही पानीमें बहुत दूर तक जानेकी बात नहीं थी, फिर भी पानीने हमारी खासी खातिरदारी की। पानीकी ठण्डक घुटनों और कमरसे अूपर चढ़कर कलेजे तक पहुंच गअी।

अब चढ़ाव लगा। अंधेरा बढ़ चला। ज्यों-त्यों करके राणागाव पहुंचे। यहां शनैश्चर महाराज ग्रामदेवताके रूपमें पूजे जाते हैं। हम अुनके काठके मंदिरमें जा पहुंचे। थकावट अितनी आ गअी थी कि कड़ाकेकी सरदी होने पर भी पैर फैला करके ही सोनेकी अिच्छा होती थी। गांवके लड़के कुतूहलपूर्ण नजरसे हमारा स्वागत करते थे। अगर लड़के शहरके हैं, तो वे यात्रीसे अेकाध कहानी सुनानेका आग्रह जरूर करेंगे। और अगर शहरसे लगे हुअे किसी गांवके लड़के हैं तो वे सलाम करके पैसा मांगेंगे। हमारी तरफके देहाती बालक तरह-तरहके सवाल पूछते हैं — "आप कहांसे आये हैं? आपके गांवमें अमुक क्या है? तमुक क्या?" अिस तरफके लड़के यात्रीसे अेक ही चीज मांगा करते हैं — "सूअी दो, धागा दो, बिन्दी दो!" पहाड़ी स्त्रियां और लड़कियां कपाल पर रोरीका तिलक लगाकर अुस पर अबरक या 'थेगड़' की टिकिया अथवा छोटी-सी टिकुली लगा लेती हैं। अुसे अुधरके लोग 'बिन्दी' कहते हैं।

पहाड़ी लड़कियां अिस बिन्दी पर निछावर हो जाती हैं। हिन्दुस्तानका कोअी यात्री पहाड़ोंमें जाये और अपने साथ सुअी, धागा और बिन्दी ले जाये, तो हर किसी गांवमें अुसका सत्कार जरूर होगा। मन्दिरके सामनेवाले कमरेमें अेक गड्ढा था — ठीक वैसा जैसा हमारे यहांके असाड़ोंमें कुन्तीका होता है। हम अुसीमें सो गये। अेक पहाडी कुत्ता गुर्राता हुआ सारी रात हमारी रखवाली करता रहा। आम तौर पर यह कहा जा सकता है कि पहाड़की गायें भेड़-बकरियोंके बराबर छोटी-छोटी होती हैं; जब कि पहाड़ी कुत्ते बाघकी तरह बड़े होते हैं।

आधी रातको थकान अुतरी और मैं लघुशंका करने बाहर गया। सामने पहाड़का अेक प्रचण्ड शिखर अनन्तकालसे बर्फ ओढ़कर सो रहा था और अुस पर चन्द्रमाका शीतल प्रकाश सोनेके पानीकी तरह चमक रहा था। आधी रातकी बे-सिर-पैरकी कल्पनाने अुस पहाड़में महादेवजीका माथा देखा। सामने विशाल भाल प्रदेश था, अुसके नीचे दो आंखों-सी वे दो घाटियां, अुनके बीचमें वह चपटी नाक, अुसके नीचे मुंहके साथ अेकाकार बनी हुअी विचित्र-सी ठोड़ी, और दोनों कान तो अैसे लगते थे मानो रूठकर दूर जा बैठे हों; और महादेवजीका वह माथा तना हुआ न था, बल्कि अैसा मालूम होता था, मानो थकनेके बाद आराम लेनेके लिअे अेक ओर ढल पड़ा हो। आसपासकी ठंड फौजी कानूनकी तरह मन्दिरके अन्दर जानेका हुक्म दे रही थी, फिर भी पहाड़का वह विशाल दृश्य किसी भी तरह पैरोंको अुठाने नहीं देता था। जब कि चारों तरफका पानी जमकर बर्फ बन चुका था, अैसे समय काव्यकी प्यासी कल्पना अुस दृश्यका पान करनेमें लीन थी। आकाशमें बृहस्पतिका तारा वृश्चिक राशि पर विराजमान था।

सवेरा हुआ और गांवके भक्त लोग लम्बे-लम्बे और मोटे चोगे पहनकर मन्दिरमें आने लगे। यह सोचकर कि अब यहां और अधिक रहनेकी जरूरत नहीं, हम आगे बढ़ गये।

जमनोत्री

जब पहाड़ोंमें कुहरा छा जाता है, तब अक्सर यात्रियोंको अद्भुत दृश्य देखनेको मिलते हैं। चारों तरफ गाढ़े दही-सा कुहरा फैला होता है, जिससे आदमी अपने आगे-पीछे अेक हाथसे ज्यादा दूरकी कोओ चीज देख ही नहीं पाता। अगर आमने-सामनेसे लोग दौड़ते हुअे आयें तो आपसमें टकराये बिना न रहें। यदि अिस बीच बादल बिखर जायं और सूर्यकी किरणें अपना प्रताप प्रकट कर सकें, तो वही कुहरा बातकी बातमें गायब हो जाता है, और विशाल व व्यापक सृष्टि फिर यकायक प्रकट हो जाती है। आश्चर्यमग्न होकर हम अिधर-अुधर देखने लगते हैं कि अितनेमें ओर्पालु बादल फिर आकाशके कपाट अेकदम बन्द कर लेते हैं, और हम तुरन्त ही कुहरेके क्षीरसागरमें निमग्न हो जाते हैं, और फिर कहीं कुछ दिखाओ नहीं देता। अिस अिन्द्रजालको देखनेमें अेक अनोखा मजा आता है। जब स्मृतिके आकाशमें विस्मृतिके बादल छा जाते हैं, तो स्मरण-यात्राकी भी यही दशा होती है। यात्राके कुछ संस्मरण कुतूहल या निरीक्षणके कारण बरसोंके पटल भेदकर ताजेके ताजे दिखाओ देते हैं, जब कि कओ बड़े-बड़े भू-प्रदेश विस्मृतिके कुहरेमें अदृश्य हो जाते हैं। हमने राणागांव छोड़ा और हम जमनोत्री पहुंचे। पर अिन दोनोंके बीचका प्रदेश कैसा था, अुसमें क्या क्या देखा था, सो सब आज स्मृतिकी पहुंचसे बाहर हो गया है। वह सब गया। सफलतापूर्वक गया। सदाके लिअे गया। पांच-पांच, दस-दस कदम पर थकान अुतारनेके लिअे ठहरना पड़ता था। परन्तु आज तो अितना ही याद पड़ता है कि जरा देर ठहरते ही ठंडी हवा हमें सहलाकर फिर तरोताजा बना देती थी।

विस्मृतिके पटलसे बाहर निकलने पर दृष्टिके सामने यह चित्र खड़ा होता है कि हम जमनोत्रीकी घाटीमें नदीकी दाहिनी ओर वाले अूंचे पर्वत परसे जल्दी जल्दी नीचे अुतर रहे थे। और साथ ही यह भी याद आता है कि अुस समय मैं अपनी आत्मकथाके कुछ महत्त्वके प्रकरण बाबाजीके सामने खोल रहा था।

पहाड़ोंकी भयानक भूमिमें हरअेक नदीके दोनों किनारों पर अुसकी रखवाली करनेवाले पहाड़ होते ही हैं। पर जमुनाजीने जमनोत्रीके आसपास रखवालोंका जैसा साथ जमाया है, वैसा तो शायद ही कहीं दूसरी किसी नदीको नसीब हुआ होगा। हिमालयके असंख्य भव्य दृश्योंमें जमनोत्रीके निकटका दृश्य अपने शैत्य, पावनत्व और भीषण गाम्भीर्यके कारण कुछ निराला ही नजर आता है। 'लोकमाता' नामक अपनी अेक पुस्तकमें मैंने 'यमुनारानी' नामसे जो लेख लिखा है, अुसमें अिसका थोड़ा वर्णन किया है। जिस दृश्यने हृदयके अेक-अेक कोनेको झकझोर डाला हो, अुसका वर्णन अेक बार अेक प्रकारसे करनेके बाद फिर दूसरे प्रकारसे अुसका वर्णन करना हमें अच्छा ही नहीं लगता। फिर अेक ही बातको बार-बार अेक ही तरहसे कहते रहना भी अुचित नहीं।

परन्तु अुस शीत प्रदेशमें कालिन्दीके किनारे बसनेवाले असित ऋषिकी याद आये बिना रहती ही नहीं। चारों तरफ फैले हुअे बरफीले पहाड़ोंके बीच अुन दिनों वे असित ऋषि कैसे शोभते होंगे? जिसकी जीवन-भेदी कल्पनाओंके विकासके लिअे जमनोत्रीसे नीची कोअी जगह काम नहीं आयी, अुस ऋषिकी साधना कितनी अुग्र रही होगी? यहां रहकर अुस ऋषिने भूत और भविष्य कालके अितिहासमें कितनी सदियों तक नजर दौड़ायी होगी? अुसने यहां बैठकर मानव-कल्याणके अनेक संकल्प सेये होंगे। अगर अुसीका प्रभाव हमारी आजकलकी राष्ट्रीय प्रवृत्तिमें सूक्ष्म रूपसे काम कर रहा हो, तो भी हम अुसे जानें कैसे? यह माननेके बजाय कि यहां गरम पानीके कुंड देखकर ऋषिने अिस स्थानको चुना होगा, मेरा झुकाव यह माननेकी तरफ है कि ऋषिके यहां रहनेका निश्चय करने पर अुसके संकल्प-बलसे विवश होकर प्रकृतिने अपने निश्वासके रूपमें यहां अुष्ण झरने प्रकट किये होंगे। यहांके पानीमें गन्धककी गन्ध तक नहीं है। किसी बड़े अिंजनकी चालकी तरह छक्-छक् फक्-फक् का अुसका गाना निरन्तर चलता ही रहता है।

हमने वहां रात अितने आनन्दसे बिताअी, मानो किसी लम्बे सफरके बाद घर पहुंचे हों। गरमी और ठंडके बीच करवटें बदलते हुअे हम रातके अेक-अेक क्षणका माधुर्य चख सके। हमने अपना अेक घंटा

भी गहरी नींदमें नहीं खोया। क्या प्रकृतिने अैसे स्थान किसी अुद्देश्यके बिना ही निर्मित किये होंगे ? आज न तो कोअी बड़ा संकल्प करता है और न अुसकी साधना ही। आज तो अैसे स्थान भक्तिकी तृप्ति और काव्यके अुन्मादके लिअे ही अुपयोगी है। हमारे जीवनमें से साधना जाती रही है, अिसलिअे अैसे स्थानोंमें साधक कहीं ढूंढे भी नहीं मिलते।

३४

अूपरीकोटकी चढ़ाअी

अनविंधे मोतीकी कीमत ज्यादा समझी जाती है। शकुन्तलाको देखकर दुष्यन्तको भी 'अनाविद्धं रत्नम्!' का स्मरण हो आया था। जमनोत्रीका तीर्थस्थान कुछ-कुछ अिसी कोटिका है। साधारण यात्रियोंको बदरीनारायणकी अपेक्षा केदारनाथका आकर्षण कम होता है, और गंगोत्रीकी अपेक्षा जमनोत्रीका। तिस पर जमनोत्रीका रास्ता आते-जाते बड़ा विकट है। अिसलिअे शरीर-प्रेमी यात्री अिस तरफ आते ही नहीं। फलतः अिधरकी जनता भी कम धूर्त होती है—बल्कि यों कहिये कि बिलकुल भोली होती है। यहांके पण्डोंमें आप अपनी गरीबी और भिखमंगेपनको छिपानेका लुच्चापन जरा भी न पायेंगे। अुनका आहार नितान्त सादा होता है। जब कभी कोअी बीमार पड़ता है तो कालीमिर्च, जीरा, तेजपात, लौंग और सोंठ जैसी दवा लेते ही चंगा हो जाता है। यहां मैं पहली बार यह अनुमान कर सका कि अपना स्वाद बिगाड़नेके लिअे और अंतड़ियोंको अुम्रभर कष्ट देनेके लिअे मसालेके रूपमें जो चीजें हम खाते हैं, असलमें वे गम्भीर बीमारीके समय बतौर दवाके ही बरती जाती थीं। मनुष्यने देखा कि अपचन हो जाने पर अिस प्रकारकी गरम वनस्पतिसे वह दूर किया जा सकता है। अितना ज्ञान हो जाने पर मनुष्य खानेमें संयम पालने लगे, तो फिर वह मनुष्य ही क्या? मनुष्य यह बात भूल गया कि अजीर्ण या अपचनसे अुसकी आबरू जाती है, प्रतिष्ठा कम होती है। वह कोअी पशु थोड़े ही है जो प्रकृतिके प्रति सच्चा रहे? जब अुमे

पतनकी स्वतंत्रता है तो पतित हुअे बिना अुसे सन्तोष कहां ? मनुष्यने ज्यादा खाना शुरू किया और साथ ही अपचनकी दवा खानेका नित्य-नियम बना लिया, और यों प्रकृतिसे बैर ठान लिया। अुसे दवाका चसका लग गया। फलतः दवा दवा न रहकर मसाला बन गयी। और जब मसाला खाने पर भी अपचन रहने लगा, तो आज मनुष्य-जाति अिस सोचमें पड़ी है कि आगे क्या करे? अिधरके पहाड़ी लोग अभी भी आधुनिक सभ्यताकी बदौलत अितने बिगडे नहीं हैं। कालीमिर्च, तेजपान और लौंग आज भी अुनके लिअे दवाका काम देते हैं। अितना लिखनेके बाद याद आया कि मेरी यात्रा तो पिछली पीढ़ीमें हुअी। क्या यह संभव है कि आज जमनोत्रीके निकटवर्ती समाजमें सभ्यता और प्रगतिका प्रवेश ही न हुआ हो?

जमनोत्रीसे हम वापस राणागांव आये, और वहासे हमने अूपरीकोटकी चढ़ाअी चढ़कर अुत्तरकाशीकी ओर जानेका संकल्प किया। वातावरण अूपरीकोटकी बातोंसे भर गया, और अूपरीकोटका माहात्म्य या दौरात्म्य हरअेकके मुंहसे सुनाअी देने लगा। अेक बोला — 'अरे भाअी, तुम यहां कहां आ गये? अूपरीकोटको लाघना क्या कोअी आसान बात है? जो काबुलकी लड़ाअी और अूपरीकोटकी चढ़ाअी जीतता है वही बहादुर है।' आगे चलकर अनुभव भी अैसा ही हुआ।

यहा रास्तेमें हमने पहाड़ी लोगोंका धार्मिक नृत्य देखा। अिन लोगोंके चेहरेकी बनावटमें हिन्दुस्तानी और चीनी ढबका मिश्रण होता है। अुनके चेहरे पर स्वास्थ्य नामकी कोअी चीज नजर ही नहीं आती। अुनका मुंह कुछ अैसा लगता है, मानो अेक साथ रोने और हंसनेकी तैयारी करके बैठे हों! ठंडी हवाके कारण अुन्हें मोटे अूनी कपड़े पहनने पड़ते हैं। पैरोंमें मोटे-मोटे जूते होते हैं। अुन पर अूपरकी तरफ अूनी बेलबूटे बने रहते हैं। सारा स्वांग बड़ा मजेदार मालूम होता है। वे लोग अेक मन्दिरके सामने नाच रहे थे। अुनमें बूढ़े भी थे और नौजवान भी। कुछ लोगोंने पहाड़ी पत्थरकी पतली तख्तिया पीठ पर बांध ली थीं और वे अुसी हालतमें नाच रहे थे। अुनके अुग्र नाचमें न तो लास्य था और न ताण्डव ही। फिर भी जब कोअी क्रिया किसी निश्चित नियमके

अनुसार बार-बार की जाती है, तो अुसमें से कोअी-न-कोअी भाव अुत्पन्न होता ही है। जब घबराअी हुअी भैंसें अेकके पीछे अेक दौड़ने लगती हैं, तो अुन्हें देखनेमें जो मजा आता है, कुछ वैसा ही मजा अिस नाचमें भी आ रहा था। पर मैं तो अुस समय यही सोच रहा था कि अिस नृत्यके मूलमें कौनसी धार्मिक भावना निहित है। और अिन पत्थरोंका प्रयोजन क्या है? मैंने सोचा कि दूर-दूरसे अैसे पत्थर लाकर अुनके साथ नाचने और फिर अुन्हें मन्दिरमें चढ़ा देनेमें कोअी खास पुण्य लगता होगा; क्योंकि अुस मन्दिरका छप्पर पत्थरकी अैसी तख्तियोंका ही बना हुआ था। ये लोग पत्थरोंको चौकोन या लम्ब-चौकोन बनानेका जरा भी यत्न नहीं करते — जैसे-तैसे अुन्हें छप्पर पर बिछा देते हैं। पर अुनमें अितनी कला जरूर होती है कि छप्पर किसी जगह जरूरतसे ज्यादा मोटा या बेडौल नहीं होने पाता। और भीतर पानी या बरफका डर बिलकुल नहीं रहता।

अूपरीकोटकी चढ़ाअीके आरम्भमें ही पैर फिसलने लगे। कहीं कहीं हमें अिस बातका सबूत भी देना पड़ा कि असलमें मनुष्य चौपगा जानवर है। गीली जमीनमें से बाहर निकली हुअी जड़ें पकड़-पकड़कर हम अूपर चढ़ पाये। यह जानकर कि आजकी चढ़ाअी मुश्किल होगी, बावाजीने सवेरे हमें अच्छा खासा नाश्ता करा दिया था। नाश्ता कर चुकने पर हमने चलना शुरू किया। चलना शुरू किया कहनेकी अपेक्षा यह कहना अधिक सच होगा कि हम रूठे हुअे पहाड़से अनुनय करने लगे। हम कुछ आगे बढ़ गये और हमारे कुली बदस्तूर कुछ पीछे रह गये। अूपर कहीं भी मनुष्यकी बस्तीका नाम-निशान न था। जंगलमें कहीं-कहीं अितने सुन्दर फूल खिले थे कि अुन्हें देखकर सहज ही मनमें यह आशा पैदा हो जाती कि पास ही कहीं किसी ऋषिका कोअी आश्रम होगा। केवल जंगल ही जंगल होता तो अेक ही किस्मके फूल चारों ओर दिखाअी देते। परन्तु यहां तो यत्र-तत्र भांति-भांतिके फूलोंकी सजावट नजर आती थी। कौन सोच सकता था कि यहां प्रकृतिमें अुड़ाअूपनके साथ-साथ खिलाड़ीपन भी होगा? मीलों चलने पर भी मनुष्योंकी बस्ती तो ठीक, मनुष्य-प्राणीका भी दर्शन नहीं होता था। हम तीनोंमें अेक

बावाजी ही अैसे थे, जिन्हें रास्ता भूलनेकी कला हस्तगत हो गअी थी। जहां हमें बिना चूके ठीक रास्ता मिल जाता, तहा बावाजी अचूक गलत रास्ते जाकर कहीं भटकते रहते। जंगलमें से गुजरते वक्त भी अक्सर अुन्हींके घुटने या कुहनी पेड़ोंसे टकरा जाती।

आखिर हम अूपरीकोटके शिखर पर पहुंचे। जिधर देखिये, बरफ ही बरफ। पानीके अभावमें हम अिस बरफको ही थोड़ा तोड़-तोड़कर खाते थे। जिस तरह गुलकन्दमें शकरके दाने या रवे होते हैं, अिस पहाड़ी बरफमें भी बरफके वैसे ही दाने पाये जाते हैं। अिस बरफको खानेमें मजा तो बहुत आता है, पर प्यास बुझाना अिसका काम नहीं।

अैसी जबरदस्त चढ़ाअी चढ़नेके बाद भूख लग आये, तो अुसमें बेचारी भूखका कसूर क्या? लेकिन वहा खानेका प्रबन्ध भी क्या था? पहाड़की चोटी परसे चाहे जिस दिशामें निगाह दौड़ाअिये, बादरू या कैरासिंह कहीं दीखते ही न थे। धीरजका मेरा बांध टूट गया। मैंने कहना शुरू किया, 'ये कुली कहा गये? क्या हुअे? कहीं फिसलकर ढेर तो नहीं हो गये?' वगैरा-वगैरा। अुनके भाग जानेकी शंका तो हममें से किसीको अेक क्षणके लिअे भी न हुअी। ये पहाड़ी लोग स्वभावसे भगेड़ू नहीं होते। और जब सरकारी अधिकारीके सामने कोअी अिकरार हो जाता है, तो कोअी भागनेकी हिम्मत भी नहीं करता। अिन लोगों पर सरकारकी निगरानी लगभग गुलामोंकी-सी होती है।

शिखर पर अेक बड़ी किन्तु कुछ ढलती-सी चट्टान है। अिसलिअे अुसकी आड़में वर्षासे बचनेके लिअे थोड़ा सहारा-सा मिल सकता है। अिधरके लोग अुसे गुफा कहते हैं। गिरने-गिरनेको हुअी कोअी दीवाल जरा अेक तरफ झुक जाय तो क्या हम अुसे गुफा कह सकते हैं? पर अिस पहाड़ पर यही अेक गुफा है, जिसके सहारे मनुष्य आकाशके तोप-खानेसे बच जानेकी कुछ आशा रख सकता है।

अिस प्रदेशमें अिस ॠतुमें बादलोंका कार्यक्रम बड़ा नियमित होता है। रातको बादल जहां तहां घाटियोंमें सोते रहते हैं। आठ-नौ बजे जमुहाइयां लेते हुअे अुठते हैं। धीरे-धीरे फिसलते फिसलते — पर फिसल-कर नीचे जानेके बदले वे अूपर अुठते हैं, अिसलिअे अुन्हें तो अुछलते-

अुछलते कहना चाहिये न? — घाटीकी चोटी पर पहुंचते हैं। फि मन-ही-मन अुड़ने या न अुड़नेकी अुधेड़-बुनमें अपना बहुत-सा वक्त बितानेके बाद अन्तमें पंख फड़फड़ानेकी आवाज किये बिना ही अुत्तरकी तरफ चले जाते हैं। सभी अुत्तरकी तरफ जाते हैं, मानो सेना अेक करनेका 'समय' वही हो। वहां सब मिलकर लगभग तीन बजे तक रणनीतिकी मंत्रणा करते रहते हैं। जहां तीन सवा तीनका वक्त हुआ कि दक्षिण पर अुनकी चढ़ाओी शुरू हो जाती है। जहां जरूरत मालूम होती है वहां बीच-बीचमें थोड़े-थोड़े बादल बरस पड़ते हैं, और नीचेकी सृष्टिको चित कर देते हैं। अूपरवाले बादल विजयके आनन्दमें आगे बढ़ते हैं। अूपरीकोट-जैसे बड़े पहाड़ पर बरफके छोटे-छोटे कन या ओले गिरानेसे काम कैसे चले? वहां तो नीबू और आमके बराबर बड़े-बड़े ओलोंका ही तोपखाना चलना चाहिये। ओलोंका नाम सुनते ही यहांके पहाड़ी लोग भी कांप अुठते हैं। क्योंकि अेक भी बड़ा-सा ओला कनपटी पर बैठ जाय, तो आदमी वहींका वहीं ढेर हो जाय। हम अपने छाते कुलियोंको दे रखते थे। सारा दिन भीगते रहना तो अेक अिष्टापत्ति ही थी। यों चलनेसे शरीरमें आओी हुअी गरमी कुछ कम हो जाती थी। जो कमकर अितना चले और जमकर खाये, वह बीमार ही क्यों पड़े? अलबत्ता रातको ओढ़ने-बिछानेके कपड़े सूखे होने चाहिये, नहीं तो अलावकी शरण लेनी पड़ जाय।

और फिर अिस पहाड़ पर कुली भी छाता खोलनेकी हिम्मत क्यों कर करें? ओलोंसे छातोंकी छलनी तो हमें बनवानी नहीं थी!

हम गुफाके पास पहुंचे और टकटकी लगाकर चारों तरफ देखने लगे। हमारी चर्चाका अन्त हो गया; लेकिन हमारे कुलियोंको हम पर दया न आओी। अुनमें से अेकने भी हमें दर्शन न दिये। तीन बजनेमें थे। अिसलिअे यहां रहनेमें भी खैरियत न थी। अितनेमें दूरसे कुछ यात्री आते दिखाओी दिये। थोड़ी देरमें वे नजदीक आ पहुंचे। हमें अितनी खुशी हुअी मानो भगवान मिल गये हों। हमारी परेशानी जानकर अुन बेचारोंने हमें आटा, नमक, तवा, लकड़ियां आदि थोड़ा-थोड़ा सब सामान दिया और कहा — "देखो, पकानेमें ज्यादा देर न लगाना।

सभी ओले गिरेंगे। हमारी तो यहां रुकनेकी हिम्मत नहीं। हमारे बरतन-भांडे आप लोग हमें नीचेके गांवमें लौटा देंगे तो भी काम चलेगा।" वे हमारे जवाबके लिअे भी न रुके। बाबाजीने रोटियां बनाओीं। मैंने या स्वामीने बरफ कूटकर पानी तैयार किया। नमककी मददसे या सच पूछिये तो भेड़िये-जैसी भूखकी मददसे रोटियां जैसे-तैसे निगलीं, और हम पहाड़ अुतरने लगे। हमें देर हो गओी थी, अिसलिअे जल्दी अुतरना पड़ा। यह तो मैं कह ही चुका हूं कि पहाड़से अुतरते समय हम बिपाये हो जाते थे। अुतारमें अेक पैरका अुतरना पुसा सकता है, मगर हाथकी लाठीका टूटना या अुसे भूल जाना पुसा नहीं सकता। ज्यों ही हम नीचेवाले गांवके नजदीक पहुंचे, हमें हमारे हितकर्ता यात्री मिले। हमारी फुर्ती देखकर अुन्हें ताज्जुब हुआ। अुनमें से अेकने कहा— "हमारे साथकी अेक बुढ़िया पैर फिसलनेसे गिरी और अितनी जोरसे लुढ़की कि हमने अुसकी आशा ही छोड़ दी थी। लेकिन सौभाग्यसे नीचेकी तरफ अेक यात्री खड़ा था। अुसने बुढ़ियाको लुढ़कते देखा और अपनी लम्बी लाठीसे अुसकी महायात्राको रोका।" वह सांझ सब लोगोंने अिसी अेक चर्चामें बिताओी।

जिन लोगोंने पहाड़में अड़चनके मौके पर हमारी मदद की थी और हम पर अितना विश्वास किया था, वे अमीर नहीं थे बल्कि अुन लोगोंमें थे, जो अुम्रभर मेहनत-मजदूरी करनेके बाद मुश्किलसे अेक यात्राके लायक पैसा बचा पाते हैं। अिन लोगोंके लिअे यह यात्रा प्रकृतिका सौंदर्य देखनेकी सैर नहीं, बल्कि सारे जीवनको सार्थक करनेका अेक सुयोग-मात्र थी। बहुतेरे गरीब बारह-बारह बरसकी कड़ी मजदूरीके बाद अपनी शादी कर पाते हैं। कओी अैसे हैं जो तीस-तीस चालीस-चालीस बरस तक आधापेट खाकर अपने लिअे रहनेका घर बना पाते हैं। अिसी तरह परमार्थको परम अर्थ माननेवाले ये भक्त सारे जन्मकी कमाओी अिकट्ठी करके अैसी यात्रा करने निकलते हैं। सही-सलामत घर लौटे तो भी क्या, और रास्तेमें ही स्वर्गवासी बन गये तो भी क्या? सार्थकता दोनों ओर सरीखी है। अैसे लोग निःसंकोच दूसरे यात्रियोंकी मदद करते हैं। अुनके अिस त्याग पर किसीको कोओी अचरज नहीं होता।

अुछलते कहना चाहिये न?—घाटीकी चोटी पर पहुंचते हैं। फिर मन-ही-मन अुड़ने या न अुड़नेकी अुधेड़-बुनमें अपना बहुत-सा वक्त बितानेके बाद अन्तमें पंख फड़फड़ानेकी आवाज किये बिना ही अुत्तरकी तरफ चले जाते हैं। सभी अुत्तरकी तरफ जाते हैं, मानो सेना अेकत्र करनेका 'समय' वही हो। वहां सब मिलकर लगभग तीन बजे तक रणनीतिकी मंत्रणा करते रहते हैं। जहां तीन सवा तीनका वक्त हुआ कि दक्षिण पर अुनकी चढ़ाअी शुरू हो जाती है। जहां जरूरत मालूम होती है वहां बीच-बीचमें थोड़े-थोड़े बादल बरस पड़ते हैं, और नीचेकी सृष्टिको चित कर देते हैं। अूपरवाले बादल विजयके आनन्दमें आगे बढ़ते हैं। अूपरीकोट-जैसे बडे पहाड़ पर बरफके छोटे-छोटे कन या ओले गिरानेसे काम कैसे चले? वहां तो नीबू और आमके बराबर बड़े-बड़े ओलोंका ही तोपखाना चलना चाहिये। ओलोंका नाम सुनते ही यहाके पहाड़ी लोग भी कांप अुठते हैं। क्योंकि अेक भी बड़ा-सा ओला कनपटी पर बैठ जाय, तो आदमी वहीका वहीं ढेर हो जाय। हम अपने छाते कुलियोंको दे रखते थे। सारा दिन भीगते रहना तो अेक अिष्टापत्ति ही थी। यों चलनेसे शरीरमें आअी हुअी गरमी कुछ कम हो जाती थी। जो कसकर अितना चले और जमकर खाये, वह बीमार ही क्यों पड़े? अलबत्ता रातको ओढ़ने-बिछानेके कपड़े सूखे होने चाहिये, नहीं तो अलावकी शरण लेनी पड़ जाय।

और फिर अिस पहाड़ पर कुली भी छाता खोलनेकी हिम्मत क्यों कर करें? ओलोंसे छातोंकी छलनी तो हमें बनवानी नहीं थी!

हम गुफाके पास पहुंचे और टकटकी लगाकर चारों तरफ देखने लगे। हमारी चर्चाका अन्त हो गया; लेकिन हमारे कुलियोंको हम पर दया न आअी। अुनमें से अेकने भी हमें दर्शन न दिये। तीन बजनेमें थे। अिसलिअे वहां रहनेमें भी खैरियत न थी। अितनेमें दूसरे कुछ यात्री आते दिखाअी दिये। थोड़ी देरमें वे नजदीक आ पहुंचे। हमें अितनी खुशी हुअी मानो भगवान मिल गये हों। हमारी परेशानी जानकर अुन बेचारोंने हमें आटा, नमक, तवा, लकड़ियां आदि थोड़ा-थोड़ा सब सामान दिया और कहा—"देखो, पकानेमें ज्यादा देर न लगाना।

अभी ओले गिरेंगे। हमारी तो यहां रुकनेकी हिम्मत नहीं। हमारे बरतन-भांडे आप लोग हमें नीचेके गांवमें लौटा देंगे तो भी काम चलेगा।" वे हमारे जवाबके लिअे भी न रुके। बाबाजीने रोटियां बनाअीं। मैंने या स्वामीने बरफ कूटकर पानी तैयार किया। नमककी मददसे या सच पूछिये तो भेड़िये-जैसी भूखकी मददसे रोटियां जैसे-तैसे निगलीं, और हम पहाड़ अुतरने लगे। हमें देर हो गअी थी, अिसलिअे जल्दी अुतरना पड़ा। यह तो मैं कह ही चुका हूं कि पहाड़से अुतरते समय हम तिपाये हो जाते थे। अुतारमें अेक पैरका अुतरना पुसा सकता है, मगर हाथकी लाठीका टूटना या अुसे भूल जाना पुसा नहीं सकता। ज्यों ही हम नीचेवाले गांवके नजदीक पहुंचे, हमें हमारे हितकर्ता यात्री मिले। हमारी फुर्ती देखकर अुन्हें ताज्जुब हुआ। अुनमें से अेकने कहा — "हमारे साथकी अेक बुढ़िया पैर फिसलनेसे गिरी और अितनी जोरसे लुढ़की कि हमने अुसकी आशा ही छोड़ दी थी। लेकिन सौभाग्यसे नीचेकी तरफ अेक यात्री खड़ा था। अुसने बुढियाको लुढ़कते देखा और अपनी लम्बी लाठीसे अुसकी महायात्राको रोका।" वह सांझ सब लोगोंने अिसी अेक चर्चामें बिताअी।

जिन लोगोंने पहाड़में अड़चनके मौके पर हमारी मदद की थी और हम पर अितना विश्वास किया था, वे अमीर नहीं थे बल्कि अुन लोगोंमें थे, जो अुम्रभर मेहनत-मजदूरी करनेके बाद मुश्किलसे अेक यात्राके लायक पैसा बचा पाते हैं। अिन लोगोंके लिअे यह यात्रा प्रकृतिका सौंदर्य देखनेकी सैर नहीं, बल्कि सारे जीवनको सार्थक करनेका अेक सुयोग-मात्र थी। बहुतेरे गरीब बारह-बारह बरसकी कड़ी मजदूरीके बाद अपनी शादी कर पाते हैं। कअी अैसे हैं जो तीस-तीस चालीस-चालीस बरस तक आधापेट खाकर अपने लिअे रहनेका घर बना पाते हैं। अिसी तरह परमार्थको परम अर्थ माननेवाले ये भक्त सारे जन्मकी कमाअी अिकट्ठी करके अैसी यात्रा करने निकलते हैं। सही-सलामत घर लौटे तो भी क्या, और रास्तेमें ही स्वर्गवासी बन गये तो भी क्या? सार्थकता दोनों ओर सरीखी है। अैसे लोग नि.संकोच दूसरे यात्रियोंकी मदद करते हैं। अुनके अिस त्याग पर किसीको कोअी अचरज नहीं होता।

मनुष्यके हृदयमें मानव-प्रेम, प्राणिप्रेम विद्यमान है, अिसीलिअे आज मानवोंका अस्तित्व बना हुआ है। पुलिस या फौजमें या अुनके हाथों अमलमें आनेवाले कायदे-कानूनसे मानव-समाज न कभी टिका है, न टिक सकता है।

जब हम नीचेके गांवमें पहुंचे तो वहांका मन्दिर और धर्मशाला दोनों खचाखच भर चुके थे। आंगनमें भी लोग पड़े हुअे थे। आंगनके आसपास दीवाल थी। दीवालसे लगा हुआ अेक चबूतरा था। अुस चबूतरेको खाली देखकर बाबाजीने बड़ी फुर्तीसे अपना बिछौना वहां बिछा दिया। परन्तु अितनेमें वहां अेक विघ्न अुपस्थित हो गया। गांवके लोग अेकदम बाबाजी पर बरस पड़े। हम समझ न सके कि वे क्या कह रहे हैं। कारण ध्यानमें आता न था और धीरजसे कोअी बात न करता था। बाबाजी जहांके तहां हक्के-बक्के-से रह गये। बाबाजीके बरतावमें वांछित परिवर्तन न देखकर गांववाले और भी झल्लाये। यात्री बैठे सारा हाल देख रहे थे। आखिर अैसा मालूम होने लगा कि बात मारपीट तक पहुंचेगी। सारे दिनकी थकावटके बाद थोड़ेसे मुष्टि-मोदक अुपयोगी तो होते, परन्तु वे हमारे नसीबमें बदे न थे। अिसलिअे अेक सज्जनने हमें समझाया कि यह चबूतरा महज चबूतरा नहीं है, बल्कि पांडवोंके बैठनेकी जगह है! मैंने अपने ढंगसे लोगोंको समझाया कि अगर बाबाजीको अिसका पता होता तो वे अुन आदमियोंमें हैं, जो चबूतरेका तो ठीक हस्तिनापुरके राजपाटका भी लोभ नहीं करते। प्रसंग जानकर मैंने तुरन्त धर्मात्माका अवतार धारण किया-और लोगोंको खूब फटकार सुनाअी — "जहां पांडव निवास करते हैं, वहां न तुलसीका क्यारा है, न फूल चढ़े हैं, और न छोटे-छोटे पौधोंकी कोअी बाड़ ही है, यह कैसी लापरवाही!" हमला करने आये हुअे ग्रामीण गरीब गाय-से बनकर अपने बचावमें कहने लगे — "हम गांवके गंवअी ठहरे, हम यह सब क्या जानें?"

अुस रात मैंने भोजन नहीं किया। सारी यात्रामें मेरे भूखे रहनेका यही अेक अुदाहरण था। मुझे याद पड़ा कि अुस दिन मेरी माताका श्राद्ध था। स्वामीने कहा — "सुबह अुठकर बहुत चलना है, अभी न खाओगे

तो काम कैसे चलेगा ?" मैंने जवाब दिया —"कल भी अुत्तरकाशी पहुंचकर ही खाअूंगा !" यहां मंत्रयुक्त श्राद्ध करनेकी सुविधा न थी, न मेरी वैसी श्रद्धा ही थी। सवेरे जल्दी अुठकर हम चले और कोअी दस मील चलकर अुत्तरकाशी पहुंचे।

३५
अुत्तरकाशी

हिन्दुस्तानके नक्शे पर सरसरी निगाह दौड़ाने पर भी सहज ही यह ध्यानमें आ सकता है कि गंगा नदीका प्रवाह आरम्भमें अुत्तरसे दक्षिणकी तरफ और फिर अधिकांशमें पूर्व और दक्षिण दिशामें ही बहता है। अिस अितने लम्बे प्रवाहमें यदि किसी स्थान पर अिस नदीकी धारा दक्षिणसे अुत्तरकी ओर बहती है, तो वह अेक आश्चर्यका ही विषय है। अिस प्रकारकी अुत्तरवाहिनी गंगा तीन स्थानोंमें है। यह तो हम सब जानते ही हैं कि काशी वाराणसीका माहात्म्य अिसलिअे है कि वहां गंगा अुत्तरवाहिनी है। अुसी प्रकार हिमालय पर्वतमें गंगाजीके प्रवाहको दक्षिणसे अुत्तरकी तरफ जाता देखकर हमारे पूर्वजोंको वह नितान्त अद्‌भुत दृश्य काव्यमय प्रतीत हुआ होगा, अिसीलिअे अुन्होंने अुस स्थानका नाम अुत्तरकाशी रख दिया। अेक बार काशीक्षेत्रके रूपमें अुसे स्वीकार करनेके बाद तो काशीमें जितने मुख्य-मुख्य देवता हैं, अुन सबकी वहां भी स्थापना करना क्रमप्राप्त ही था। अुत्तरकाशीमें काशी-विश्वनाथ हैं, बिन्दुमाधव हैं, मणिकर्णिका है, दत्तात्रेय और परशुराम हैं। जो कुछ काशीमें है वह सब छोटे पैमाने पर अुत्तरकाशीमें मिलना ही चाहिये। (लाचारी है कि अुत्तरकाशीमें बन्दर नहीं हैं। पर वहां जंगली गायें बहुत हैं।) अुत्तरकाशी दो पहाड़ोंके बीच अेक विशाल घाटीमें बसी हुअी है। गरमियोंमें वहां बहुतसे साधु रहते हैं। और क्यों न रहें ? जो गृहस्थ है, घरसे बंधा हुआ है, वह मनुष्य होते हुअे भी स्थावर बन जाता है। गरमी हो या जाड़ा, वर्षाऋतु हो या पतझड़ हो, वह अपना

स्थान छोड़ नहीं सकता। आजीविकाके कारण भी असे अेक ही स्थानमें घिरे रहना पड़ता है। पर साधु तो अनिकेत, अनागरिक ठहरे। वे भला क्यों बारहों महीने अेक ही जगह पड़े रहने लगे? दीवालीके अुत्सव पर साधु लोग अमृतसर जाते हैं। जाड़ा हृषीकेशकी गरम घाटीमें बिताते हैं। और ग्रीष्मऋतु आते ही गिरि-आरोहण करके अुत्तरकाशी पहुंच जाते हैं। दुनियाका अधिक-से-अधिक आनन्द अमीर और फकीरके लिअे ही है — फर्क अितना ही है कि फकीरको फिकर नहीं होती। गरमियोंमें अुत्तरकाशीकी हवा अत्यन्त आह्लाददायक होती है। हिमालयकी प्राणदायक वायु, पहाड़ी गेहूंका पौष्टिक आहार, और गंगाजीका अमृत जल। यहांके साधु चार महीनोंमें अितने लालसुर्ख और मस्त बन जाते हैं कि अेक-अेकका शरीर देखते ही बनता है। ये लोग अन्नसत्रकी बनी-बनाअी रसोअी खाते हैं, आपसमें विभिन्न विषयोंकी चर्चा करते हैं, पहाड़ोंमें यथेच्छ घूमते हैं, और आने-जानेवाले यात्रियोंको आशीर्वाद देते हैं। कभी कोअी चटपटी चीज खानेकी अिच्छा हुअी, तो आसपासकी भली पर्वतीय स्त्रियोंसे असकी भिक्षा भी मिले बिना रहती नहीं।

अुत्तरकाशीमें कअी साधु चार-पांच महीनोंके लिअे अपना अेक कॉलेज भी खोल देते हैं। प्रकाण्ड-से-प्रकांड विद्वान संन्यासी यहां आकर रहते हैं, विरक्त भावसे वेदान्तकी चर्चा करते हैं, श्रद्धालुको परिश्रमपूर्वक सिखाते हैं, और चिरन्तन शांतिमें जीवन व्यतीत करते हैं। अजायबघरके साथ जो प्राणि-संग्रह होता है, असके बाघों और सिंहोंको जिस प्रकार दर्शकोंका अुपद्रव सहना पड़ता है, अुसी प्रकार यहांके साधुओंको यात्रियोंका अुपद्रव विवशभावसे सहना पड़ता है। 'स्वामीजी महाराज, दर्शन दो'; 'स्वामीजी महाराज, कुछ अुपदेश सुनाओ'; 'स्वामीजी महाराज, अितना सूखा मेवा खाओ'; 'स्वामीजी महाराज, मेरी अिस बहूको आशीर्वाद दो'; 'स्वामीजी महाराज, नजदीककी अिस धर्मशाला तक चलकर थोड़ी-सी भिक्षा ग्रहण करो, भोजन करनेवाले बाट हेरते बैठे हैं'। अिस तरहकी कोअी-न-कोअी हैरानी अुनके पीछे लगी ही रहती है।

हमने काली-कमलीवालेकी बड़ी धर्मशालामें दो दिन मुकाम किया। धर्मशाला ठीक गंगाजीके किनारे है। पानीमें अुतरनेके लिअे सुन्दर घाट

बना हुआ है। बाजार, डाकघर सब तरहका सुभीता है। नदीमें खूब अच्छी तरह नहाकर मैं कुछ संन्यासियोंसे बातें करने लगा। बाबाजीने यात्राके लिअे कुछ आवश्यक चीजें खरीदनेकी व्यवस्था की और स्वामीको यहां डाकघर होनेके कारण अितना आनन्द हुआ कि वे खत-पर-खत लिखते बैठे। सांझको हम अेक मन्दिरमें अेक साधुके दर्शनोंको गये। वे अेक विद्वान और योगीके नाते विख्यात थे। वहीं महाराष्ट्रके अेक दंडी संन्यासीसे थोड़ी जान-पहचान हुअी। वे पंढरपुरकी तरफके थे। अुन्होंने हम लोगोंसे मराठी बोलनेका यथेच्छ आनन्द लूटा। यहां स्थायी रूपसे रहनेवाले संन्यासी कैसे होते हैं, अिसकी विस्तृत जानकारी देना भी वे न चूके। अुन्होने हमें वहांकी पहाड़ी भाषाके कुछ चुनिन्दा शब्दोंसे परिचित कराया। अिन संन्यासीका शरीर दुबला-पतला था। मुंहसे दांतोंने स्तीफा दे रखा था। फिर भी वे अपने विनोदी, मसखरे और बातूनी स्वभावका और अपनी हास्यरस-पटुताका परिचय देनेमें जरा भी न चूके।

अुत्तरकाशीमें विश्राम करनेके बाद हम भटवाड़ी गये। भटवाड़ीका पुराना नाम भास्करपुरी है। भास्करसे भट कैसे हो गया, सो हमें कोअी समझा न सका। अेक पहियेके रथमें सात घोड़े जोतकर निरन्तर दौड़ लगानेवाले सूर्यनारायण भट अर्थात् बहादुर हैं, वीर हैं, अिसमें शक ही क्या? भटवाड़ीमें देखने लायक कुछ नहीं था। लेकिन चूंकि हमने अपना गैरजरूरी सामान यहांकी अेक दुकानमें रखकर गंगोत्रीके लिअे प्रस्थान किया था, अिसलिअे यह स्थान ध्यानमें रह गया। गंगोत्रीसे लौटकर भटवाड़ीके रास्ते ही केदारनाथ जाना होता है।

जैसे ही हम भटवाड़ी छोड़कर आगे बढ़े, सृष्टिने अेकाअेक नितान्त रमणीय स्वरूप धारण कर लिया। अूंचे-अूंचे पेड़ और लम्बी-लम्बी परन्तु नीचेको झुकी हुअी अुनकी डालियां; नदीका पाट और अुसमें निरन्तर स्नान करनेवाले ऋषितुल्य गोलमटोल पत्थर; सुगन्धित हवा — सभी चीजें सुहावनी और मनभावनी थीं। मुझे कुछ-कुछ याद है कि यहांसे सत्यनारायण जाते समय हमें अेक बार गंगाजी पार करनी पड़ी थी। यहां पास ही अेक बड़ा प्रपात है। स्वामी और बाबाजीने अुसका

सविस्तर वर्णन सुनाया। जाते समय मेरा ध्यान जाने कहां चरने चला गया था कि मैं अुसे देख न पाया। लौटते समय भी अुसे देखनेकी बात याद नहीं पड़ती। स्वामीने अुसका वर्णन अितने अुत्साहके साथ किया कि मुझे वैसे सुन्दर दृश्य देखनेका मौका खो देनेके लिअे मुंह लटकाकर बैठना पड़ा।

सत्यनारायणमें अेक पंडेसे थोड़ी बातचीत हुआी। अुसने पूछा — "आप लोग कहांसे आते हैं?" हमने कहा — "बम्बअीसे।" अितनी दूर आनेके बाद अिससे अधिक सूक्ष्म स्थल-निर्देश करनेमें कोअी सार न था। अुसके लिअे बम्बअी और बेलगाम दोनों अेक-से थे। बम्बअीका नाम सुनते ही अुसने पूछा — "*वहींसे जहां व्यंकटेश्वर छापाखाना है?*" मैंने कहा — "जी हां, वहींसे।" बम्बअीमें दूसरा अैसा है ही क्या, जिसकी कीर्ति यहां पहाड़ तक पहुंचे? मैं व्यंकटेश्वर छापाखानेवाले शहरसे आया हूं, यह सुनकर अुसने तुरन्त नम्रतापूर्वक कहा — "वहांसे मेरे लिअे अेक 'शनि-माहात्म्य' भेजेंगे?" मैंने मंजूर कर लिया। अुसका नाम और गांव अपनी नोट बुकमें लिख लिया, और जहां तक मुझे याद है, छह या आठ महीने बाद शनि-माहात्म्यकी अेक प्रति कहींसे अुसके पते पर भेज दी। मेरा खयाल है कि अुस पुस्तकके पहुंचनेके बाद फिर शनि महाराजने अुस पंडेको किसी प्रकारकी पीड़ा न पहुंचाअी होगी!

सत्यनारायणसे जरा आगे बढ़ने पर '*गंगानाणी*' नामक अेक चट्टी आअी। यहां हमने अेक वृद्ध साधुकी कीर्ति सुनी। अिसलिअे गंगाजीके अुस पार हम वहां पहुंचे जहां गरम पानीका अेक कुंड था। झरनेमें से धूनेके जो सूक्ष्मकण निकलते हैं अुनके अेक-दूसरे पर जम जानेसे वहां अेक सुन्दर-सा बमीठा बना हुआ देखा। हिमालयके कुछ प्रवाहोंकी यह अेक खासियत है। अगर पानीमें जड़ों और पत्तोंवाली अेकाध डाली गिर जाय, तो धीरे धीरे पानी अुस पर असर करना शुरू कर देता है। पत्ते ज्यों-ज्यों गलते जाते हैं, त्यों-त्यों अुन पर पानीका असर बढ़ता जाता है। पत्ते और अुनके साथ जुड़े काठके सूक्ष्म कण जैसे-जैसे घुलते जाते हैं, वैसे-वैसे चूनेके सूक्ष्म कण वहां अुसी आकारमें जमते जाते हैं। कोअी छह महीनोंमें अुस सारी डालका पुनर्जन्म-सा हो जाता है, और वनस्पतिकी जगह देखनेमें

संगमरमर-जैसी नाजुक लेकिन काफी मजबूत अेक डाली तैयार हो जाती है। अुसकी कारीगरी देखकर तो ग्रीसके शिल्पकार भी अवाक् ही रह जायं। सिवा अुसकी शकलके असल डालीका और कोअी रूप बाकी नहीं रहता। यदि आत्माके अस्तित्वको न मानकर भी पुनर्जन्ममें विश्वासवाले बुद्ध भगवानका ध्यान अिस पर्वतीय चमत्कारकी ओर गया होता, तो दीपकका दृष्टान्त देनेके बदले अुन्होंने अिस खनिज, जलज, डालीका ही दृष्टान्त दिया होता। (अेक बार लाहौरमें अेक सज्जनके घर अिसी तरहसे बना हुआ अखरोटका अेक फल मैंने देखा था। परन्तु अुसमें चूनेके बदले लोहेका चूरा था और अिसलिअे वह वजनमें काफी भारी मालूम होता था।)

यहांके वृद्ध साधुने स्वामीका ध्यान विशेष रूपसे आकर्षित किया। जब तक स्वामी अुसके साथ बातें करनेमें लगे रहे, मैं चूनेके अुस वमीठेको देखनेमें गर्क रहा। लौटने पर स्वामीने कहा — "यह साधु यहां तीस सालसे रहता है।" मुझे अुनकी अिस बात पर सन्देह करनेका कोअी कारण न मिला। फिर भी मनमें विचार आया कि हिमालयमें यात्राके रास्ते पर कअी साधु अिसी तरफ झोंपडिया बांधकर रहते हैं। वे आसपासके पहाड़ी लोगोंसे अपने विषयमें बड़ी बड़ी बातें फैला देनेको कहते हैं, और अिस मेहनतके बदले अपनी कमाअीमें अुनका भी कुछ हिस्सा रख लेते हैं। यह भी अैसा ही अेक साधु न होगा, अिसका प्रमाण क्या? अगर बात अैसी न थी तो ये लोग हमसे आग्रहपूर्वक यह क्यों कहते थे कि पुलके अुस पार अुष्ण कुडके समीप अेक बडे भारी साधु रहते हैं? आप अुनके दर्शनोंके लिअे जरूर चलिये। अेकने तो यहां तक कह डाला कि अुसके दादा कहा करते थे कि अुन्होंने अपने छुटपनमें भी अिन साधुको यहीं रहते देखा था। साधु महाराजकी अुम्र जितनी अुन दिनों लगती थी अुतनी ही आज भी लगती है। जिस प्रकार समाचार-पत्रोंमें छपनेवाली कुछ घटनाओंके वर्णन सदा अेकसे होते हैं, अुसी प्रकार जंगलमें रहनेवाले योगियोंके विषयमें अिस तरहकी बातें सब जगह अेक ही रूपमें सुनी जाती हैं। कोअी कहेगा कि रोज नअी-नअी बातें सुननेकी अपेक्षा अेक सर्वमान्य वर्णन सुननेमें अधिक सुविधा नहीं है? जिस तरह रेलवे

लाअिन पर तमाम स्टेशनोंकी बनावट अेक-सी होती है, अुसी तरह साधुओंके चमत्कार भी प्रायः अेक-से होते हैं।

नीचेवाली गंगानाणीसे लगा हुआ अेक छोटा-सा प्रपात है। वहां पानी वेगसे गिर रहा था, फिर भी हम अुसमें नहानेके अपने लोभको रोक न सके। हिम्मत करके ज्यों ही हम प्रपातके नीचे पहुंचे, त्यों ही पानीकी टांकियोंकी चोटें सिर पर तड़ातड़ बरसने लगीं। स्वामीको पाठशालाके अपने दिन याद आ गये। "नही गुरुजी, मारिये नहीं, फिर अैसा कभी न करूंगा।" अिस तरह वे हंसते-हंसते चिरौरी करने लगे। अुस समयसे हमने अपनी बातचीतमें अुस प्रपातका नाम 'नही गुरुजी प्रपात' रख दिया।

वहांसे आगेका प्रदेश खास गंगोत्रीके आसपासका प्रदेश कहा जा सकता है। रास्तेमें लकड़ीका बना हुआ अेक घर देखा। अिस तरफ सरकारी बंगले और निजी घर काठके पटियोंके बने होते हैं। अुनमें चीड़के गोंदकी धूपकी-सी सुगन्ध सर्वत्र फैली रहती है; क्योंकि ये पटिये चीड या देवदारके बड़े-से-बड़े तने चीरकर ही तैयार किये जाते हैं।

अिसी प्रदेशमें मैंने पहले-पहल बनगाय देखी। बनगायको यहां याक अथवा झब्बू कहते हैं। अिस बनगायका मालिक भोटिया अपनी गायको अपेक्षा जरा भी सभ्य नहीं दिखाओ देता। अन्तर केवल अितना ही है कि गायें आगे-आगे चलती हैं और ये भोटिये अनुयायी बनकर अुनके पीछे-पीछे चलते हैं। बनगायें देखनेमें बहुत भली होती हैं। अुनके सींग कुछ आगेको निकले होते हैं। सींगोंके बीचसे होकर माथे पर बालोंका अेक गुच्छा-सा लटकता रहता है। अिनका अैसा ही चित्र मेरी दृष्टिमें रमा गया है। यहां अिन बनगायोंका घी बहुत सस्ता मिलता है। परन्तु कभी-कभी अुसमें बनगायोंके बाल मिले होते हैं। अिसलिअे गरम करके छाने बिना अुसे अुपयोगमें लानेकी अिच्छा नहीं होती। अिस प्रदेशके आलू भी काफी बड़े और स्वादिष्ठ होते हैं। अिधर गेहूंकी रोटी और आलूकी तरकारी ही कअी दिनों तक हमारी खुराक रही।

३६

गंगोत्री

बदरीनाथ, केदारनाथ, गंगोत्री और जमनोत्री अिन चार धामोंमें हरअेकको अपनी अपनी विशेषता है। बदरीनारायण अपने वैभवसे हमें आकर्षित करते हैं। केदारनाथके वातावरणमें वैराग्य विशेष रूपसे पाया जाता है। जमनोत्रीकी भव्यता हमारे हृदय पर अमिट छाप डालती है। और गंगोत्री तो हमें अपनी पवित्रतामें बिलकुल ही डुबो देती है।

गंगोत्री जाते हुअे स्वामीने रास्तेमें पड़े अेक सापको अपनी लम्बी लकड़ीसे अुठाकर नीचेकी घाटीमें फेंक दिया। वह घबराया हुआ साप हवामें अपने शरीरको अैंठता हुआ नीचेको गिर रहा था। अुस वक्त वह छुटपनमें बाजारसे खरीदे हुअे हरे सांप-सा दिखाअी देता था। अुस समय मेरे मनमें कुछ अैसे ही विचार आये। परन्तु गंगोत्री पहुंचते ही अिस तरहके सारे विचार काफूर हो गये। अब विचार-क्षेत्रमें प्राचीन राजर्षि और महर्षि प्रविष्ट होने लगे। भारत-सम्राट भगीरथ और धर्म-सम्राट श्री शंकराचार्यका स्मरण तो बिना हुअे कैसे रहता? महाराज भगीरथको अुत्तराधिकारमें यह अेक संकल्प प्राप्त हुआ था कि पूर्वभारतके अंग-वंगादि समतल प्रदेश पर पानीकी विपुलता पैदा करके करोड़ों मनुष्योंको करोड़ों वर्षों तक अन्नदान किस प्रकार कराया जाय। अिसी संकल्पका सेवन करता हुआ राजा भगीरथ अिस पहाड़ी पर मारा-मारा फिरता था और हिमालयके प्रवाहोंकी पैमाअिश करता था। आज अिनमें से कअी पहाड़ियां माताके सिद्धपीठके रूपमें प्रख्यात हैं। अिन सिद्धपीठों पर की हुअी किसीकी भी तपस्या आज तक व्यर्थ नहीं हुअी।

और जब शंकराचार्यने चारों तरफ दिग्विजय करके दक्षिणके धर्मनिष्ट, संस्कार-सम्पन्न, ब्राह्मण कुटुम्बोंको यहां लाकर बसाया, अुस समय अुनके मनमें क्या-क्या संकल्प रहे होंगे? हिमालयके अिन शिखरों पर दक्षिण और अुत्तर दोनों दिशाओंमें, और भारत व तिब्बत दोनों देशोंमें, धर्म-

प्रवाह प्रवाहित करके अद्वैतके जीवन-सिद्धान्तकी और सर्वैक्यके हृदय-धर्मकी लहर फैला देनेका संकल्प अुन्होंने भी यहां रहकर किया होगा। अुन्हींके पूर्व अवतारस्वरूप गौतम बुद्धने जो धर्म-प्रेरणा प्रचारित की थी, अुसकी लहरें हिमालयके अुस पार शंकराचार्यके समयसे पहले ही पहुंच चुकी थीं। शंकराचार्यने बुद्धके अुपदेश पर आस्तिक्यका पुट देकर अुसे राष्ट्रीय बनाया था। शंकराचार्यको प्रच्छन्न बौद्ध कहकर अुनके विरोधियोंने अुनकी निन्दा करनेके बदले वास्तवमें अुनके कार्यकी परम्परा और महत्ता ही बतलाअी है। गंगोत्रीमें गंगामैयाका मन्दिर अितना छोटा है, मानो किसी तप:पूत ऋषिकी आद्य-प्रेरणा या धर्म-स्फुरणा हो!

मुझे हिमालयमें शक्तिरूपिणी जगन्माताकी अुपासना करनी थी। वहां रहनेवाले अेक बंगाली साधुसे मैंने अुपासनाकी विधि पूछी। जहां तक मुझे स्मरण है, अुस साधुका नाम श्यामभारती या श्यामाभारती अैसा कुछ था। अुसने मुझसे मेरा अुद्देश्य पूछ लिया, और तुरन्त जवाब दिया — "भाअी, तुम मेरे शिष्य नहीं हो। भला, मैं तुम्हें वह विधि कैसे बतलाअू? तुम अपने गुरुसे ही पूछो।" कुछ लोगोंको अिस जवाबमें साम्प्रदायिक संकीर्णताकी बू आयेगी। मुझे वैसा न लगा। मुझे मालूम था कि हमारे धर्ममें गुरु-परम्पराके द्वारा ही निष्ठा और अेकाग्रताका परिपोष हुआ है। विविधता जिसका सनातन स्वरूप है, अैसे अिस संसारमें स्वधर्म-निष्ठाका तत्त्व न हो, तो अेक भी कार्य सिद्ध नहीं हो पाये। जिस प्रकार कौटुम्बिक जीवनमें निष्ठा ही प्राणरूप है, अुसी प्रकार धार्मिक जीवनमें निष्ठाका अपना खास महत्त्व है। मुझे अिस बातका ध्यान था, अिसलिअे अुस संन्यासीके जवाबसे संतोष ही हुआ।

तीर्थक्षेत्रका नियम है कि वहां खाली पेट जाओ और वहांसे भरे पेट निकलो। हम भी अिस नियमका विधिवत् पालन करते थे।

धधकते हुअे अंगारों परसे चलनेमें मनुष्यकी जैसी कसौटी होती है, वैसी ही यहां पिघली हुअी बरफके पानीमें नहाते समय होती है। फिर भी गंगोत्री पहुंचकर वहां बिना नहाये रहना सम्भव कैसे था? कॉलिजके अेक साथीने 'बाथ' अर्थात् स्नानकी अेक विनोदी परिभाषा बतलाअी थी : 'सकलगात्रार्द्रीकरणं बाथः'। नहानेका शरीर-शुद्धिसे अथवा

मलापहरणसे कोअी सम्बन्ध नहीं है। समूचा शरीर भिगो लेनेसे स्नान सम्पन्न हो जाता है। हम वहां अिस परिभाषाके अनुसार ही नहाये और पानीमें से जीवित बाहर निकले। अबरक और अत्यन्त महीन बालूके कारण पानी गंदला था। जिस जगह मैं नहाया वहां पानी बहुत गहरा नहीं था, अिसलिअे मुझे सिर डुबानेके लिअे पानीमें डुबकी लगानी पड़ी। मुझे क्या पता कि मेरे सिरके पास ही पानीमें अेक प्राचीन गोल पत्थर ध्यानस्थ बैठा है! हम दोनोंके माथे प्रेमसे और सख्तीसे अेक-दूसरेके साथ टकराये। आवाज भी हुअी, लेकिन सिरके भीतर वेदना पहुंचनेके लायक चैतन्य कहां रह गया था? मेरा शरीर बधिर हो गया था। मैं अुसी अवस्थामें दौड़ता हुआ पानीसे बाहर निकला और धूनीके पास जाकर हाथ तपानेके बाद ही गीले कपड़े निचोड़ सका। दूसरे दिन जब माथे पर अुस ध्यानस्थ मित्रकी छोटी-सी प्रतिकृति अुठी हुअी दिखाअी दी, तभी अिस बातका प्रदर्शन हुआ कि मेरा और अुसका मिलन कितना प्रेमपूर्ण हुआ था!

यहां हम तीन दिन ठहरे। दुर्गा-सप्तशती, गीता, तुकारामके अभंग, रामदासका मनोबोध और अीश, कठ आदि अुपनिषदोंके पठनमें ही हमारा समय बीता। यहांसे गोमुख सिर्फ बारह या अठारह मील है। वहां जाने न-जानेके बारेमें हमारे बीच बहुत-कुछ चर्चा हुअी। कुछ पहले आये होते तो गंगाजीके जमे हुअे पाट परसे ही सुगमतापूर्वक गोमुख पहुंच जाते। जनश्रुति तो अैसी है कि गोमुखमें आज भी आकाशसे गंगाजी गिरती है। शायद वहां नित्य होनेवाली रिम-झिम रिम-झिम वर्षाको ही यात्री अिस रूपमें समझ लेते होंगे। अन्यथा वहां तो अखण्ड बरफका खजाना ही है, और कुछ नहीं। पण्डे लोग कहने लगे, "यदि कुछ कुलियोंको कुल्हाड़ी और लकड़ियोंके साथ ले लिया जाय, तो नदीके किनारे-किनारे गोमुख तक जाया जा सकता है। अिधर अुधरसे आकर गंगाजीमें मिलनेवाले छोटे-छोटे प्रवाह रास्ता काटें, तो लकड़ीके कामचलाअू पुल बनाकर आगे जा सकते हैं। लौटते समय ये पुल अपनी जगह पर होंगे ही, अिसका कोअी ठिकाना नहीं। अिसलिअे दोहरी तैयारी रखनी पड़ती है।" पण्डोंने हमें बतलाया कि गंगोत्रीसे गोमुख तककी भूमि अितनी

पवित्र है कि यात्रीको वहां मल-मूत्र विसर्जन किये बिना ही हो आना चाहिये। शंकराचार्यकी अैसी ही आज्ञा है। हम अपने साथ टेहरीके हाकिमकी सिफारिश ले गये थे। अुसका अेक विचित्र परिणाम हुआ। हमें नाराज करते पण्डोंको डर लगता था, लेकिन साथ ही वे हमसे विशेष द्रव्य पानेकी आशा भी नहीं रख सकते थे। अिसलिअे अूपर अूपरसे तो वे यह जतलाते थे कि अुनमें पूरा अुत्साह है, वे खुद हमारे लिअे सारी सुविधायें कर देनेको तैयार हैं; पर साथ ही सारी बातें अिस तरह हमारे सामने रखते थे कि आगे जानेकी हमें अिच्छा न हो। मुझे शाकुन्तलका वह प्रसंग याद आया, जहां मृगया-प्रेमी दुष्यन्तके विरुद्ध सेनापति और विदूषकने आपसमें सलाह की थी। बहुत सोच-विचारके बाद स्वामीने आगे जानेका विचार छोड़ देनेका सुझाव रखा। मुझे यह अखरा नहीं। अुस समय तक जो कुछ देख लिया था, वही अितना अधिक भव्य, विविध और विशाल था कि और नये दृश्य देखनेकी खास अुत्सुकता रही नहीं थी। जानेका फैसला होता तो हर तरहके कष्ट और संकट झेलनेके लिअे मैं तत्पर था। परंतु अैसा न लगा कि जाना न हुआ तो जीवनके किसी बड़े भारी लाभसे वंचित रह जाना होगा। चित्तमें कोअी विषाद न रहा। यदि मनुष्य शास्त्रशुद्ध अुदासीनताका विकास कर ले, तो वह गीताकी 'नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन' स्थितिको स्थूल रूपसे अवश्य दिखा सकता है।

गोमुख न गया, अिसका तो मुझे जरा भी दुःख न हुआ। परन्तु गंगोत्रीको छोड़ते समय चित्तवृत्ति स्वस्थ कैसे रहती? जिस तरह घरसे कॉलेजके लिअे बिदा होते समय हृदय भर आता था, वैसा ही गंगोत्री छोड़ते समय हुआ। न जाने कितने — शायद अनगिनत — हिन्दू पूर्वज भक्तिभावसे यहां आये होंगे, और गंगामैयासे स्थायी शान्ति तथा पवित्रताका प्रसाद पाकर लौटे होंगे! और अुनमें से कअियोंने तो यहां आने पर फिर वापस जानेका विचार ही छोड़ दिया होगा। सचमुच गंगाजी भारतवासियोंकी मैया ही है, और अुनकी गोदमें हरअेकको जीवनकी शान्ति मिलती ही है।

वृद्ध केदार

गंगोत्रीसे हमने गंगाजलका अेक लोटा भर लिया। पण्डोंने अुसे चपड़ेकी मुहर लगाकर हमें यात्राका सुफल दिया। हम लौटे। रास्तेमें प्रत्येक यात्रीके हाथमें गंगाजलका अेक अेक लोटा था ही। यह पवित्र जल अनेक प्रान्तोंके अनेक घरों और झोपडोंमें पहुंचेगा। पश्चात्तापसे जलते हुअे कअी पापियोंको यह जल परमात्माकी क्षमाका आश्वासन देगा। मृत्युशय्या पर पड़े हुअे कअी वृद्धोंको यह जल मरण-कालकी शान्ति प्रदान करेगा।

और कुछ साधु तो यहांके गंगाजलको सेतुबन्ध रामेश्वर तक पहुंचाकर और रामेश्वरकी बालू गंगोत्रीमें डालकर सारे भारतवर्षको धर्म-बन्धनसे अुसी प्रकार बुन डालते हैं, जिस प्रकार हम निवारसे खाट बुनते हैं। चार धामोंकी यात्रा हमारी धार्मिक बुनावट है। अिस प्रकार देश और समाज अेक-दूसरेमें ओतप्रोत हो जाते हैं।

वापस भटवाड़ी आकर हमने केदारका रास्ता लिया। यह रास्ता हिमालयमें भी अत्यन्त जंगली और भयानक माना जाता है। बीस-बीस मील तक किसी गांव या मनुष्यके दर्शन नहीं होते। वृक्ष अितने घने और अूंचे हैं कि दोपहरमें भी वहां करीब करीब अंधेरा-सा रहता है। बारिशके कारण नीचेकी जमीन कुछ भीगी हुअी होती है। अिसलिअे जमीन पर पेडोंकी जड़ोंका अेक जाल-सा बिछा हुआ दिखाअी देता है। रातके समय ये जड़ें जानकी गाहक सिद्ध होती हैं, क्योंकि अिनमें पैर अुलझते ही मनुष्य ठोकर खा जाता है। परन्तु अैसे अरण्यमें रातके समय कोअी जायेगा ही क्यों? अगर पहाड़की बेंडी चढ़ाअीमें अिन जड़ोंका सहारा न मिलता, तो कहीं-कहीं तो आगे चढ़ना ही असम्भव हो जाता। बीच-बीचमें पड़े हुअे सूखे पत्तोंके ढेर अिस जंगलको और भी भयावना बना देते हैं। किसी-किसी स्थान पर, जहां चढ़ाअी सख्त नहीं होती और झाड़-झंखाड़ भी अुतने ज्यादा नहीं होते, बड़े रमणीय दृश्य देखनेको मिलते हैं।

जहां तक नजर दौड़ाअिये रंग-बिरंगे फूल ही फूल दिखा देते थे। अैसा मालूम होता था, मानो किसी शौकीन मनुष्यके बंगले बगीचेमें घूम रहे हों; और जरा आगे बढ़ने पर अुसका बंगला नजर आयेगा। पर सवेरेसे शाम तक सारे दिनमें कहीं न तो गां मिलता था, न मकान, और न मनुष्य या जानवर ही। निर्जनत कितनी भीषण हो सकती है, अिसकी कुछ कल्पना यहीं आअी। निर्ज प्रदेशमें विविध रंगवाले फूलोंका यह भूमिभाग किसी अलौकिक परिस्तान जैसा मालूम होता था।

जहां मनुष्यका मुंह तक देखना दूभर था, वहां ठीक रास्ता किस पूछते? संकटमें सूझ पैदा होती है। हमने देखा कि जिस रास्तेसे जा हुअे यात्रियोंने अपने फटे हुअे जूते अिधर-अुधर फेंके हैं। अगर पा घंटे या आध घंटे तक बीचमें कहीं फटे हुअे जूते न मिले, तो तुरन् शक होता था कि जरूर रास्ता भूल गये! जंगलके यात्री हाथमें कुल्हाड़ लेकर पेड़ोंके तनों पर अुनके निशान बनाते चलते हैं, ताकि वे फिर अुर रास्ते लौट सकें। हमारी युक्ति अिससे भी बढ़कर थी। क्योंकि ह अुसी रास्तेका अनुसरण करना था, जिससे हमसे पहलेके यात्री गये थे आगे चलकर जब हमारे जूते बिलकुल घिस गये, तो स्वामीने अेक दि अपने अेक जूतेको रास्तेमें रुखसत दी और अुसकी जगह किसी दूसरे अच्छे-से लावारिस जूतेसे काम लिया। दो-चार दिनके बाद जब वह दूसरा जूता भी अपने साथीके विरहसे व्याकुल हो अुठा, तो अुसे भी हिमालयमें रहनेका पुण्य प्रदान करके स्वामीने अुनके बदलेमें रास्तेसे दूसरा अेक बेजोड़ जोड़ा अुठाकर पहन लिया। ये दोनों जूते अेक ही बनावट या अेक ही प्रान्तके तो कैसे हो सकते थे?

यथा काष्ठं च काष्ठं च समेयातां महोदधौ।
समेत्य च व्यपेयातां तद्वद् भूतसमागमः॥

शामको हम छुआचट्टीमें पहुंचे। अिसी रास्ते पर, मगर याद नहीं पड़ता कि कहांसे, स्वामी और बाबाजी आगे निकल गये। मैं अकेला पीछे रह गया। अंधेरा होने लगा। मैं अिस चिन्तामें था कि अब

रास्ता कैसे मिलेगा, अितनेमें कुछ यात्री पीछेसे आये। अैसे स्थानमें यों अचानक मनुष्यके दर्शन पाकर कितना आनन्द होता है, अिसकी कल्पना बिना अनुभवके सम्भव नहीं। हम अपनी तत्काल गढ़ी हुअी राष्ट्रभाषामें बातें करते जा रहे थे। अितनेमें अेकाअेक अेक आदमी चिल्ला अुठा — "अरे भालू, भालू, भालू!" मैं चकित-सा होकर यह देखने लगा कि अैसे जंगलमें रीछ कहांसे आया? परन्तु सब लोग चिल्ला-चिल्लाकर भालूके पीछे दौड़ने लगे। फलतः मैं अुस 'भालू' के दर्शनसे वंचित ही रहा। जब हम अपनी चट्टीमें पहुंचे, तो बाबाने हमारे लिअे हल्दी डालकर गरम दूध तैयार रखा था, क्योंकि अुस दिन मेरा गला साफ नहीं था, मुझे सरदी होनेका डर था। यात्रामें अिस तरहके सादे अुपाय काफी गुणकारी सिद्ध होते हैं।

गंगोत्रीसे केदार जानेवाले रास्ते पर वृद्ध केदार अथवा बूढ्ढा केदार पड़ता है। अेक बड़ा-सा अुतार अुतरकर सांझको हम वहां पहुंचे। रास्ता अितना खराब था और बारिशने हमको अिस कदर हैरान किया था कि मुकाम पर पहुंचनेके बाद मैंने तो मन्दिर जानेसे अिनकार कर दिया। अपने मनको यह कह कर समझा लिया कि साथियोंका भगवानके दर्शन कर लेना काफी है। यहांकी धर्मशालामें अुत्तरकी तरफके कुछ महाराष्ट्रीय हमें मिले। अेक वृद्धा बोलनेमें बड़ी संस्कारी मालूम हुअी। अुसने हमसे कअी प्रश्न पूछे। स्वामी-जैसा जवान छोकरा मां-बापको छोड़कर और सगे-सम्बंधियोंको भूलकर, अिस तरह जंगल-जंगल भटकता है, यह देख वृद्धाका हृदय भर आया, और अुसने मुक्तकंठसे रुदन किया। 'अरे, तुम लोग कैसे निष्ठुर हो! तुम्हारे मां-बाप पर क्या गुजरती होगी? तुम्हारे भाअी-बहनको कैसी अुदासी-सी लगती होगी? अैसे जंगलोंमें अपनी कायाको निचोड़कर आखिर तुम्हें मिलेगा क्या?' अैसे अनेक सवाल अुस बेचारीने पूछे।

अपना अेक हमेशाका अनुभव भी यहीं सुना दूं। हमारे देशमें व्यर्थकी कुतूहल-वृत्ति बहुत है। चाहे पैदल चलते हों या रेलगाड़ीमें, ज्यों ही किसीका साथ हुआ, अेक-दूसरेकी सारी कुल-कथा पूछे बिना हमें चैन नहीं पड़ता। और, कहनेवाला भी विस्तारपूर्वक कहते नहीं थकता,

मानो जनम-जनमका कोअी साथी मिल गया हो! मेरे चश्मेसे लोगोंको सहज ही यह अनुमान होना कि मैं कोअी पढ़ा-लिखा आदमी हूं। अिसलिअे लोग प्रायः पूछते — "कहां तक पढ़े हो?" अगर कह दूं कि "कॉलिजकी पढ़ाअी खतम कर चुका हूं", तो फिर क्या पूछना था? "तुमने नौकरी क्यों नहीं की? वकील होनेकी तैयारी क्यों नहीं की? अंग्रेजी पढ़ने पर भी तीर्थयात्रामें श्रद्धा कैसे बनी रही?" आदि-आदि सारी बातें पूछ ली जातीं। बादमें सवाल होता — "घरमें कौन-कौन है?" भाअियोंकी बात करूं, तो फिर हरअेक क्या करता है, अिसकी तफसील पेश करनी होती। "ब्याह हुआ है या नहीं?" यह तो कुतूहलका मुख्य प्रश्न होता। यदि 'नहीं' कहूं, तो पूछते — "यह वैराग्य छुटपनसे ही था या अिसका कोअी खास कारण हुआ?" और यदि कहूं कि "विवाहित हूं," तो जरूर सवाल होता कि — "स्त्री जीवित है या नहीं?" अगर सही अुत्तर देकर कहता हूं कि "जीवित है", तो अनेक असुविधाजनक प्रश्नोंकी झड़ी लग जाती, और स्त्रीके जीते-जी पुरुषको साधु होनेका अधिकार है या नहीं, अिस पर अेक लम्बा शास्त्रार्थ छिड़ जाता। हर रोज अिस तरहका अिकरार करते रहनेकी मेरी तैयारी न थी। और अपने रूखे व्यवहारसे मनुष्यका दिल तोड़ देना यात्रामें अच्छा नहीं लगता। अिसलिअे मैंने हिम्मत करके झूठ बोलनेका निश्चय किया। किसीके ज्यादा कुछ पूछनेसे पहले ही मैं ठंडी सांस लेकर कह देता — "स्त्री बड़ी अच्छी थी, लेकिन वह जाती रही। अिसलिअे बच्चे भाअीको सौंपकर मैं अिस वनवासका सेवन कर रहा हूं।" मैं जानता हूं कि अैसे असत्य कथनके लिअे कानूनमें कोअी सजा नहीं है। लेकिन धर्मशास्त्र अितनी आसानीसे माफ करेगा ही, अिसका मुझे विश्वास नहीं है।

लोगोंकी अैसी अतिरिक्त जिज्ञासासे अकुलानेके कारण मैं स्वयं भी किसीसे अधिक प्रश्न पूछनेसे डरता हूं। क्योंकि मैं सोचता हूं, कहीं यह भी मेरी तरह तंग आकर झूठ बोलने लगे तो अुसका पाप मेरे सर पड़ेगा। कभी-कभी जब कोअी बहुत सारे प्रश्न पूछने लगता है, तो मैं दिक आकर कह देता हूं — "भाअी, अब बहुत हो गया। अगर अधिक पूछोगे, तो फिर झूठा जवाब दे दूंगा।" झूठ बोलनेकी अपेक्षा

झूठ बोलनेका डर दिखाना अधिक अच्छा अुपाय है। बादमें सच्चा जवाब देने पर भी पूछनेवालेको विश्वास तो होगा ही नहीं।

यदि कोअी मुझसे पूछे कि मार्गमें मिलनेवाला बेचारा अेकाध यात्री निःस्वार्थ भावसे और मानव-सहज समभावसे कुछ सवाल पूछता है तो अुसमें बुराअी क्या है? तो मेरे पास अिसका कोअी जवाब नहीं। यात्रियोंके दस-पांच सवालोंका जवाब देते देते तंग आ जानेवाला मैं आज सारी यात्राका अितना लम्बा-चौड़ा वर्णन कैसे लिखने लगा, यह प्रश्न मेरे मनमें अुठता है। लेकिन अिसका भी कोअी जवाब मेरे पास नहीं।

मालूम होता है कि साहित्य और जीवनमें कट्टर वैर है। सेकण्ड क्लासमें बैठा हुआ अंग्रेज अपने पास बैठे दूसरे यात्रीसे बातचीत करके अुसकी जीवन-कथा जाननेके बदले रुपया-दो-रुपया खर्च करके अेकाध अुपन्यास या कहानी पढ़नेमें समय बिताना पसन्द करता है। आखिर अुपन्यासमें भी तो कोअी काल्पनिक जीवन-कथा ही होती है। यात्राका वर्णन मैं अपनी सुविधासे लिखता हूं। पर जब कोअी सवाल पूछता है, तो मुझे बन्धनमें पड़ना होता है। और, जब अेक ही सवाल कअी लोग बार-बार पूछते हैं, तब तो धीरजका बांध टूट जाता है। फिर भी, हमें भूलना न चाहिये कि निरक्षर समाजमें साहित्य और शिक्षाकी बहुत-सी आवश्यकता सम्भाषणसे ही पूरी होती है।

अुसी धर्मशालामें दूसरे दिन बूढ़े केदारका अेक ब्राह्मण हमसे मिलने आया। हमें पढ़ा-लिखा पाकर वह हमसे अपने लड़केकी परीक्षा लिवानेके लिअे अुसे अपने साथ ले आया। लड़का कोअी चौदह-पन्द्रह सालका था। पिताने कहा — "आजकल यह तर्क-संग्रह पढ़ रहा है।" कॉलेजमें मैंने अिण्टरमें तर्कशास्त्र पढ़ा था। अिसलिअे अिस चौदह-पन्द्रह वर्षके लड़केको तर्क सीखते देख मुझे आश्चर्य हुआ। मैंने अुससे अेक सहज प्रश्न पूछा। प्रश्न सुनते ही लड़केने अुस प्रश्नसे सम्बन्ध रखनेवाला समूचा प्रकरण मुखाग्र सुना दिया। बादमें अुसी प्रकरणकी टीका भी वह चटसे बोल गया। जिस तरह कोअी शास्त्री समझाता है, अुसी तरह अुचित स्थान पर रुककर, शब्दोंका सम्बन्ध-सा बतलाते हुअे, वैसे ही लहजेमें अुसने अपनी बात कही। लेकिन बेचारा अुसमें से अेक

'ब्रह्माक्षर' भी समझता न था। मैंने अुस पितासे कहा — "तर्क तो बुद्धिका विषय है। व्याकरणसे भी कठिन है। व्याकरणका सम्बन्ध भाषासे है, जब कि तर्क तो विचार-शुद्धिका विषय है। अिसमें कोरे रटनेसे कैसे काम चलेगा?" पिताने भोले भावसे जवाब दिया — "यदि अिस अुम्रमें रट लिया जाय, तो बड़ेपनमें तकलीफ कम होगी; और भूल होनेका अंदेशा तो जरा भी न रहेगा!"

शिक्षणशास्त्र पर बहुत-कुछ सोचने पर भी यह निर्णय नहीं हो पाया कि रटनेकी प्रथा बिलकुल अुठा देने लायक है। हां, यह सच है कि रटन्त विद्याका दुरुपयोग बहुत होता है। लेकिन यदि अुसका अुचित रूपसे अुपयोग हो, तो अुसके कारण बुद्धिके विकासमें रुकावट नहीं होनी चाहिये। जब छापाखाने नहीं थे, और सब-कुछ लिखकर अुसकी रक्षा करनेकी मेहनतसे बचनेका सवाल अेक भारी सवाल था, अुस समय यदि स्वावलम्बी मनुष्य अपने अध्ययनकी पूंजीको नित्य ताजा और तैयार रखनेके लिअे बहुत-कुछ कण्ठाग्र कर लेता था, तो अिसमें आश्चर्यकी कोअी बात न थी, बल्कि अिसीमें शक्तिका संग्रह था। आज भी यह लाभ छोड़ देने योग्य नहीं है।

दूसरे दिन हम अेकाध मील ही गये होंगे कि पहले दिनकी बारिशके कारण लथपथ मेरे जूतेने हड़ताल कर दी। हड़ताल ही नहीं, अिस्तीफा तक दे दिया। मैंने अपने साथ अहमदाबादी जूतोंकी अेक जोड़ी ज्यादा रख ली थी। अब तककी यात्रामें वह मुझ पर सवार होकर चलती रही। अब मैं अुस पर सवार हुआ। लेकिन वे जूते मेरे छोटे पैरोंके लिअे भी ओछे निकले। अुन्हें पहनकर चलनेमें मेरे पैरोंकी वैसी ही दुर्दशा होनी शुरू हुआी, जैसी चीन देशमें वहांकी ललनाओंके पैरोंकी होती है। अिसलिअे मैं अुन जूतोंको पहले पानीमें अच्छी तरह भिगो लेता और फिर पहनता। भीगा हुआ चमड़ा दीन बनकर मेरे पैरका आकार ग्रहण कर लिया करता। लेकिन जरा सूखते ही वह दुगना बैर भंजाने लगता। सौ-सवा-सौ मील तक अैसी ही हैरानी व परेशानी रही। मेरा दुःख जानकर स्वामीने अपने पासके दक्षिणी जूते मुझे दिये। वे लाल जूते जंगलमें शोभा देते, और यात्रियोंका ध्यान आकर्षित करते थे। अुनकी सामनेवाली गोल बाजू तो

ठोकरके लिअे अेक अकसीर दवा ही थी। परन्तु हिमालयके रास्ते पर ये जूते पैरमें ठहरें कैसे! अथवा अधिक ठीक भाषामें कहूं, तब तो कहना होगा कि जूतोंमें पैर कैसे ठहरें! पैर घिसता गया, और तलुअेमें छाले पड़ गये। अेक भी जूता पहना नहीं जाता था। अगर नंगे पैर चलता, तो रास्ते पर नहा-धोकर तैयार पड़े हुअे कंकर-पत्थर बिच्छूके डंककी तरह अपना प्रताप दिखलाये बिना मानते न थे।

रास्तेभर पैरके दर्दका ही ध्यान रहता था। अैसे जंगलमें आरामके लिअे कहीं ठहरनेका खयाल आता तो कैसे आता? जैसे-तैसे आगे बढ़ते रहे। परन्तु रास्तेमें क्या क्या देखा, अिसका कोअी होश न रहा।

३८

भोटचट्टी

अेक जगह सवेरे ज्यों ही आगेके लिअे रवाना हुअे, सामने शामके मुकामकी चट्टी नजर आयी। मनमें शंका अुठी, अितनी-सी दूरीके लिअे अेक पूरा दिन कैसे लग जायगा? मैंने कहा — "अरे, अिस सामनेवाले पहाड़के शिखर पर जो मचान-सा कुछ दिखाअी देता है, वहां तक पहुंचनेमें देर ही कितनी लगेगी! क्या अिस छोटी-सी चढ़ाअीसे घबराकर हम पूरा अेक दिन अिसमें बिता देंगे?" लेकिन मैं तो मनके लड्डू खा रहा था। चढ़ाअी सीधी होती, तो भी गनीमत थी। हांफते-हांफते वहां पहुच सकते थे। लेकिन यहां तो सारा रास्ता आरेकी धारकी तरह चढ़ाव और अुतारसे भरा था। चढ़ते-चढ़ते दम फूलने लगता, और अुतरते-अुतरते घुटने भर आते। अिसका दुःख तो था ही। लेकिन जब जितना चढ़ते अुतना ही फिर अुतरनेकी नौबत आती, तो अितनी सारी मेहनतके अकारथ जानेकी मानसिक वेदना यात्राके सारे मजेको किरकिरा कर देती थी। जहां तक मुझे स्मरण है, अुस दिन हमने नौ पहाड़ियां पादाक्रान्त कीं और अुतनी ही घाटियां लांघीं। अन्त-अन्तमें तो हमें यह सन्देह-सा होने लगा कि मुकाम आयेगा भी या नहीं। बड़ी मुसीबतोंके बाद अूपर पहुंचे। चट्टीवाली झोंपड़ीकी अूंचाअी अन्दर खड़े रहने लायक नहीं थी।

जिस तरह जानवर गुफामें प्रवेश करते हैं, अुसी तरह झोंपड़ीके भीतर जाना होता था। फर्श बिलकुल भीगी हुअी थी। हमारे साथ अेक मोमकपड़ था। मेरे पास घासकी अपनी चटाअी थी। अिन पर ज्यों-त्यों करके हमने रात काटी। यहांकी यात्रामें शाक तो आलूका ही हो सकता है। पर आज हमें वह भी न मिला। जंगलमें कुछ छोटे-छोटे ठूंठों पर पुष्पोंके डण्ठलों-जैसे डण्ठल अुग रहे थे। लेकिन अुनके छोर पर पत्ते न थे। बकरेके सींगकी तरह छोर शंखाकृति हो जाते थे। मैंने कुछ पहाड़ियोंको अिन डण्ठलोंका साग बनाकर खाते देखा था। अिसलिअे मैं आसपास घूम-घामकर अेक-दो मुट्ठी डण्ठल बीन लाया। मुझे विश्वास था कि बाबा खुश होंगे; लेकिन अुन्होंने अुन्हें पकानेसे अिनकार कर दिया। बाबा रामदासी सम्प्रदायके 'दासबोध' की सिखावनके अनुसार चलनेवाले जो ठहरे! अुन्होंने कहा — "अनजाना फल या साग-पात कदापि न खाना चाहिये।" और अपने अिस कथनके समर्थनमें 'दासबोध' की अेक अुक्ति जोड़ दी। अब भला मेरा क्या चल सकता था! मैंने अुन डण्ठलोंको जमीन पर चमत्कार जमाकर अुनसे कअी तरहकी आकृतियां बनायीं, और अिस प्रकार जीभसे नहीं तो आंखसे ही अपने पुरुषार्थका रस चखा।

अेक रातको हम भोटचट्टी पहुंचे। वहां बेहद भीड़ थी। डर था कि कहीं रातको बगैर आसरेके मैदानमें न सोना पड़े। लेकिन आखिर हमें जगह मिल गयी। अिसी जगह दो पहाड़ी आदमियोंकी अेक साझेकी दुकान थी। अेक साथ व्यापार करनेकी विश्वासपूर्ण अुदारता तो अुनमें थी; लेकिन अुसके लिअे आवश्यक गणितका ज्ञान न था। अिसलिअे दुकानमें अेक साथी जितना माल लाता, दूसरा भी अुतना ही ला देता और किसी ग्राहकको माल देने ही जो दाम आते, अुन्हें दोनों अुसी क्षण बराबर-बराबर बांट लेते। और, जब तक बंटवारेका यह हिसाब न हो लेता, तब तक नये ग्राहककी सुध कोअी क्यों लेने लगा! अिन दोनोंमें से अेक कुछ होशियार था। हिसाबके सुभीतेके लिअे वह अपने ग्राहकसे थोड़ा ज्यादा या कम माल लेनेको कहता, और अगर ग्राहक न मानता तो अुसे सौदा ही न मिलता। यों, ढाअी दुकानोंवाली चट्टीमें जब अेक दुकानदार नाराज हो जाता, तो यात्रीकी असुविधाका पार न रहता।

रात हुअी, और आकाशमें तारे चमकने लगे। कअी दिनों बाद निरभ्र आकाशका आनन्द मिला। आजके आकाशकी नीलिमा कुछ और ही थी। अितना स्वच्छ और अितना गहरा नीला आकाश सहज ही देखनेको नहीं मिलता। आगे चलकर द्वाराहाटके रास्ते पर शामके वक्त अैसा ही आकाश देखनेको मिला था। लेकिन वहां तो बादमें मूसलधार वर्षाने सारा दृश्य बिगाड़ दिया था। यहा तारे सारी रात नीली जमीन पर हीरोंकी तरह चमकते रहे। यह आनन्द अकेले कैसे लूटा जाता! मैं स्वामी और बाबा दोनोंको बाहर निकाल लाया। देर तक हम आकाशकी ही बातें करते रहे। अिसी बीच चट्टीमें कुछ शोर सुनायी दिया। स्वामीने जाकर पूछताछ की। यात्रियोंमें से किसी मारवाड़ीकी बुढ़िया चिढ़कर और रूठकर चट्टीसे जंगलमें चली गयी थी। क्रोधके सामने विवेककी हार हमेशा होती है, परन्तु आज तो डरकी भी हार हुअी थी। अुस बेचारेको बुढ़ियाके जानेका दुःख था या अपनी अिज्जत जानेका, सो कौन कह सकता है! दो पीढ़ियोंके बीचके मतभेदकी भी कभी-कभी अैसी ही दुर्दशा हुआ करती है। बुढ़ियाकी खोज किये बिना ही हम दूसरे दिन बड़े सबेरे अुठकर आगे बढ़ गये।

केदारका रास्ता यानी पवालीकी चढाअी। रामचन्द्रजीके सैनिकों-जैसे पहाड़ी भी अिस चढ़ाअीके सामने हार जाते थे। 'काबुलकी लड़ाअी और पवालीकी चढाअी' नामक अेक कहावतमें यहांके लोगोंने अपना कष्ट प्रकट किया है। कहावतोंमें भी स्थानिक पाठान्तर होते ही हैं।

हमने सांस फुलाकर रोजकी तरह 'अथातो धर्मजिज्ञासा' का नित्य मंत्र पढ़कर चढ़ना शुरू किया।

३९

पवाली और त्रिजुगी नारायण

रास्तेमें अेक जगह बहुत बारिश हुअी थी। अिसलिअे हमने सूर्यास्तसे पहले ही अेक चट्टीमें ठहरनेका विचार किया। अिस चट्टीमें वेंतके जैसी बेलोंकी बड़ी-बड़ी टोकनियां बनाकर रखी थीं। ये नितान्त जंगली समझे जानेवाले लोग जब बरतन, टोकनियां या अिसी तरहकी और कोअी नित्यके अुपयोगकी चीजें बनाते हैं, तो यह सोचकर आश्चर्य हुअे बिना नहीं रहता कि ये अुनमें अितनी कला कहांसे ले आते हैं। हम अपने बिस्तर वगैरा लगाकर रसोअी बनानेके स्थानका विचार कर ही रहे थे कि अितनेमें बारिश रुक गयी, और सोने-सी सुहावनी धूप निकल आयी। जयद्रथ-वधके दिन जैसी हालत अर्जुनकी हुअी थी, वैसी ही अुस दिन हमारी भी हुअी। अितनी धूप — अितना दिन बाकी रहते भी यदि हम ठहर गये, तो हमारी शान ही क्या रही? तुरन्त सामान बटोरकर चलने लगे। कुली तो बेचारे हमेशा ही भुनभुनाते रहते हैं। अुनकी शिकायत कौन सुनने लगा?

शक्तिके समझे जानेवाले बहुतसे काम युक्तिके ही होते हैं। साण्ड सगड़े जवांमर्द जहां पीसते-पीसते थक जाते हैं, वहां बूढ़ी औरतें बरसों अुनसे दुगना काम करती रहती हैं। पानीमें तैरनेके लिअे शक्तिकी जरूरत तो होती ही है, परन्तु शक्तिसे भी अधिक तो युक्ति ही अुपयोगी ठहरती है। पहाड़ चढ़नेकी भी यही बात है। आदमी यदि जल्दी न करे, और सांसकी ताल संभालता रहे, तो वह आसानीसे नहीं थकेगा। अूंट पर बैठनेवाला यदि अपना शरीर ढीला रखकर अूंटकी चालके साथ ताल न जमाये, तो शाम तक अुसका शरीर दर्द करने लगेगा। पहाड़की चढ़ाअीमें भी शरीर कड़ा रखनेसे काम नहीं चलता। अगर यात्री घुटने, कमर और पीठ मुक्त स्थितिमें रख सके, और हरअेक कदममें लचीलापन रखना सीख ले, तो सुबहसे शाम तक चलकर भी अुसे ज्यादा थकावट

मालूम न होगी। यहां यह कह देना चाहिये कि यह फलश्रुति बहुत मोटे — चरबीवाले — लोगोंके लिअे नहीं है।

अिस तरह हिमालयकी कठिन-से-कठिन चढ़ाअी चढ़ जाने पर हमें विश्वास हो गया कि यह तपस्या व्यर्थ नहीं है। अूपर पहुंचकर जो दृश्य देखा, अुसे मैं अिस जीवनमें भूल नहीं सकता। अनगिनत हिमाच्छादित शिखरोंकी अेक महान परिषद् अर्ध-वर्तुलाकार रचनामें विराजित थी, मानो वेदकालीन ॠषियोंकी कोअी महासभा बैठी हो। यहांसे अधिक नहीं तो कम-से-कम पचास मीलका दृश्य तो दिखाअी ही देता था। और जिधर देखिये अुधर दूर-दूर तक श्वेत शिखर अनन्तताका सूचन करते नजर आते थे। यह सफेद बरफ अिस प्रकार बिछी थी, मानो त्रिकालातीत हो। बरफ ज्यों-ज्यों बासी होती जाती है, त्यों-त्यों अुस पर हाथी दांतके-से पीलेपनकी प्रतिष्ठा जमती जाती है, और जब अुस पर कहीं कहीं नयी कपूर-सी सफेद बरफ पड़ती है, तो वह अैसी शोभती है जैसे किसी वृद्धाकी गोदमें बैठा हुआ बालक।

मैं ज्यों-ज्यों टकटकी बांधकर यह सारा दृश्य देखने लगा, त्यों-त्यों अुसका अुन्माद मेरे मस्तिष्कमें पैठने लगा; और वह समूचा दृश्य पहाड़ियोंके हिलोरते हुअे महासागरके समान मालूम होने लगा। अगर अिस तरहकी अेक भी पहाड़ी हमारे समतल प्रदेशमें आकर बसे, तो चारण और कवि बड़े गर्वके साथ निरन्तर अुसकी प्रशंसा करते रहें। लेकिन अिन पहाड़ियोंको कोअी पूछता तक नहीं। जिस प्रकार हिन्दुस्तानके सन्तोंकी कोअी गिनती नहीं, अुसी प्रकार हिमालयकी अिन पहाड़ियोंकी भी कोअी गिनती नहीं।

अखंड हिमप्रदेशका अर्थ है, कालके परिवर्तनका पराभव। बारहों महीने यहांकी शोभा ज्यों-की-त्यों बनी रहती है। लेकिन अिस शोभामें भी प्रतिक्षण लावण्य पूरनेका कार्य सवितानारायणकी किरणें करती रहती हैं। किसी पुण्य-पुरुषके सहवासमें जिस तरह आसपासके सारे समाजके धर्मनिष्ठ बन जानेका भास होता है, अुसी तरह सुबहकी बालकिरणोंके फैलते ही समस्त शिखरोंके अनुरक्त होनेका दृश्य अुपस्थित हो ही जाता

है। कभी कभी सारे शिखर गेरुआ रंग धारण कर दसनामी * अखाड़ा जमाते हैं।

पवालीसे जल्दी-जल्दी अुतरकर हम त्रिजुगी नारायण पहुंचे। मानो स्वर्गसे अुतरकर मृत्युलोकमें आये। और, स्वर्गके सारे पुण्य धो डालनेके अुद्देश्यसे ही आअी हुअी वर्षाने रास्तेभर झड़ी-सी लगाकर हमारे सारे अुत्साहको धो डाला। अन्त अन्तमें तो हम रास्ता छोड़कर सीधे ही अुतरने लगे। लेकिन अिससे भी आखिर समयकी बचत तो नहीं हुअी।

त्रिजुगी नारायणमें नारायणका प्राचीन मन्दिर है। अिस मन्दिरकी अग्नि पारसियोंके आतिशबेहरामकी तरह सतजुगसे आज तक बराबर जलती आअी है। जब हिमालयकी पुत्री पार्वती देवाधिदेव महादेवसे व्याही गयी थी, तब विवाहके होमके लिअे अिस अग्निका आधान किया गया था। तबसे आज तक यह अग्नि बिलकुल बुझी नहीं है!

यहां रातको अेक साधु 'मेरा सब कुछ लुट गया' कहकर जोरसे रोने और चिल्लाने लगा। सारी धर्मशाला हैरान हो अुठी। जांच-पड़तालके बाद मालूम हुआ कि यह सब बहाना भर था। किसी दूसरे साधुको संकटमें डालनेके लिअे अुसने आधी रातकी शान्तिमें यह स्वांग रचा था। साधु ही जो ठहरे!

त्रिजुगी नारायणसे नीचे अुतर हम केदारकी मुख्य सड़क पर आये। वहांसे मन्दाकिनीके किनारे-किनारे चलते हुअे गौरीकुंड पहुंचे। यहां गरम पानीके झरने हैं।

जमनोत्री और बदरीनारायणके पास तो ठेठ तीर्थस्थानमें ही गरम पानीके झरने हैं, जब कि गंगोत्रीसे केदारनाथ जाते समय तीर्थस्थानके कुछ अिस ओर रास्ते पर गरम पानीके झरने पड़ते हैं। गंगोत्रीके लिअे गंगानाणी और केदारके लिअे गौरीकुंड। गौरीकुंडका पानी स्वच्छ नहीं था, अिसलिअे हमने अुसमें नहानेका विचार छोड़ दिया। गौरीकुंडसे आगेका रास्ता अपनी विकट चढ़ाअीके लिअे प्रख्यात है। वह चढ़ाअी चढ़कर हम केदारनाथके नजदीक पहुंचे। रास्तेमें अेक मोड़की

* संन्यासियोंमें गिरी, पुरी, भारती, सरस्वती, अरण्य, तीर्थ, आश्रम, सागर वगैरा कुल दस फिरके होते हैं, जिन्हें दसनामी कहते हैं।

पार करते ही दूर पर केदारनाथका शिखर दिखाओ देने लगा। हरअेक यात्रीने अपनी कायाको जमीन पर फैलाकर साष्टांग प्रणिपातपूर्वक जयघोष किया — 'जय केदारनाथकी जय; जय केदारप्रभुकी जय'।

मन्दिरकी मूर्तिके दर्शनोंकी अपेक्षा शिखरके दर्शनोंकी अुमंग ही विशेष होती है।

४०

केदारनाथ

केदारनाथके मन्दिरकी लोकप्रियता बदरीनारायणसे कुछ कम तो है ही। अिसीलिअे यहांका मन्दिर अधिक प्राचीन, अधिक भव्य और तपस्वी-सा मालूम होता है। मन्दिरके अग्रभागमें बना यूनानी शैलीके छप्परका त्रिकोण (जिसे अंग्रेजीमें 'गेबल' कहते हैं) ध्यान खींचता है। टेहरीके हेडमास्टरने कहा था कि यहांके पंडोंके पास शंकराचार्यकी जो वंशावली है, अुससे यह सिद्ध हो सकता है कि यहांका मन्दिर अत्यन्त प्राचीन है। लेकिन मन्दिरका स्वरूप ही अुसकी प्राचीनताका यथेष्ट प्रमाण है। फिर यहां यूनानी शैली कहांसे आओी? या कि यूनानी लोगोंने अपनी शैली यहांसे ली? अिस शैलीको अपनी तो कहा ही नहीं जा सकता। यदि यह हमारी होती तो अिसके अनेक प्राचीन नमूने अनेक रूपोंमें दिखाओ देते। काश्मीरमें पन्दरेथान नामकी अेक जगह है। अुसकी स्थापत्य-शैलीके विषयमें अैसी ही शंका अुठती है। यदि अशोकका राज-महल अीरानी शैलीका था, तो केदारनाथमें यूनानी शैलीके आने पर आश्चर्य क्यों हो? हम यह क्यों मानें कि हमारे समर्थ पूर्वज परायी कलासे घृणा करते थे? जब निर्बल लोग कहींसे कुछ अुधार लाकर पहनते हैं, तो अुससे अुनकी गरीबी ही ज्यादा स्पष्ट होती है; लेकिन जब बलवान कहींसे कुछ अुधार लेते है, तो अैसा मालूम होता है मानो वे खुद ही अुपकार कर रहे हों!

केदारनाथके मन्दिरके पास कुछ कुंडोंमें लम्बे-लम्बे लंगोटीनुमा कागज पड़े हुअे दिखाओ दिये। कुछ कागज कपड़ेकी चिन्दियों पर

चिपकाये हुअे थे। अुनमें से अेकको बाहर निकालकर देखा, तो वह किसीकी जन्मपत्री निकली। पूछताछ करने पर पता चला कि बहुतसे वृद्ध यात्री केदारकी यात्रा करके कृतकृत्य होने पर यहां अपनी जन्मपत्रिका विसर्जन कर देते हैं। जिन दर्शनोंकी अुत्कंठा चरमोमें लगी थी, केदारनाथके वे दर्शन हो चुके; जीवनका सारा पाप धुल गया, नवग्रहोंने अपना-अपना प्रभाव लौटा लिया। अब अिस जन्मपत्रीमें देखना क्या है, जो कागजका यह टुकड़ा अब सहेजा जाय?

केदारप्रभुके दर्शनोंके बाद भी मनुष्यको जीवनकी अभिलाषाने छोड़ा कहां है कि वह यहां अपने जीवनका ही विसर्जन कर सकता? जब जीवनका मोह नहीं छूटता, तो जीवनकी प्रतिनिधिभूत जन्मपत्रीको छोड़कर ही सन्तोष माना जाता है। पर्याय-धर्मकी भी बलिहारी है। अिब्राहीमने पुत्रकी बलिके बदले अेक बकरेकी बलि लेकर ही अुसके भगवानने सन्तोष माना था। गयाजी जाकर कामक्रोधादि षड्रिपुओंका त्याग करनेके बदले कोअी न रुचनेवाला शाक या फल छोड़कर ही यात्री अपनी यात्रा सफल करते हैं। नहानेकी अिल्लतसे बचनेके लिअे पहाड़ी ब्राह्मणोंने पानीकी पांच बूंदोंकी 'पंचस्नानी'का आविष्कार किया। और, आजकलके ग्रम्य राष्ट्र भी शत्रुके हाथमें न आने पर अुसके चित्रको चौराहे पर जलाकर अपनी क्रोधवृत्तिको सन्तुष्ट करते हैं। बेचारे मनु भगवानने आरम्भमें मानव-जातिसे कह रखा है कि मुख्य धर्मके पालनकी शक्ति होते हुअे भी जो मनुष्य पर्याय-धर्म अथवा आपद्-धर्मसे सन्तोष मानता है, अुसे परलोकमें अुस क्रियाका फल नहीं मिलता।

हिमालयमें स्थित हमारे ये सारे तीर्थस्थान दस-दस हजार फुटकी अूंचाअी पर होते हुअे भी चिर-हिमप्रदेशकी तलहटीमें ही बसे हुअे हैं। अिसलिअे यहां जिधर देखो, अूंचे-अूंचे पहाड़ नजर आते हैं। हम मानव अिन घाटियोंकी गोदमें अितने नन्हे दिखाअी देते हैं कि हमें बालककी अुपमा भी शोभा नहीं देती।

महाभारतमें केदारनाथका वर्णन सुन्दर ढंगसे हुआ है। जब पांडव वनवासमें थे, तब मध्यम पांडव अर्जुन अस्त्रप्राप्तिके लिअे घूमता-भटकता अिस तरफ आया था। और जब भीम दिव्य कमल लानेके लिअे

निकला, तो वह भी यहां तक आया था। रामदासस्वामीको हनुमानजीके दर्शन भी शायद अिसी प्रदेशमें हुअे होंगे। और जब अपनी जीवनयात्राकी समाप्ति पर पांडवोंने महाप्रस्थान किया था, तब भी वे यहीं आये थे। वे वृद्ध पांडव और अुनकी साथिन मानिनी द्रौपदी अिसी भूमि पर विपण्ण चित्तसे विचरे होंगे। यह विचार कि जिन पहाड़ोंको आज मैं देख रहा हूं, वही पहाड़ अुन्होंने भी देखे थे, हमें पांडव-कालके साथ जोड़ देता है। और महाप्रस्थानका स्मरण होते ही धर्मराजके अुस औमानदार कुत्तेका स्मरण हुअे बिना कैसे रह सकता है? अिन्द्रके स्वर्गमें आजकलके होटलोंकी तरह कुत्तोंके लिअे प्रवेश नहीं था। अिन्द्रने युधिष्ठिरसे कहा — "अिस मैले-कुचैले जानवरको निकाल दे; तुझे अब पुण्यलोक मिला है।" धर्मराज बोला — "आप कहें तो मैं लौट जाअूं, लेकिन अिस औमानदारका त्याग मुझसे न होगा। 'स्वर्गसुखार्थ अकार्या न करिन सोडूनि मी सुकार्यातें' — स्वर्गसुखके लिअे भी मैं सत्कार्य छोड़कर अकार्य नहीं करूंगा।"

जब हम केदारनाथके मन्दिरमें पहुंचे, तो वहां लगातार शंखध्वनि सुनकर हमारी चित्तवृत्ति सहसा अुत्तेजित हो गयी। दूसरे दिन सबेरे हमने देखा कि यहांकी मूर्ति तो अेक बड़ा खुरदरा पाषाणमात्र है। यह अेक अलग बात है कि कअी-कअी जमानोंके यात्रियोंकी अखंड धाराने अपने स्नेहसे अिस पाषाणको चिकना बना दिया है। जो आता है वही शिवलिंगसे अपनी देह भिड़ाकर अुसे छातीसे लगाता है।

केदारप्रभुके दर्शन कर चुकनेकी मस्ती न हो, तो कोअी यात्री अेक रातके लिअे भी यहांकी ठंडको सह न सके।

हजारों वर्षोंसे अेककी अेक श्रद्धा ही भारतवासियोंको प्रतिवर्ष यहां ले आती है। भारतवर्षके अितिहास और पुराणोंमें जितने पुरुष प्रख्यात हैं, अुनमें से कअी अिसी जगह आकर और अिस शिवलिंगको आलिंगन देकर धन्य-धन्य हुअे होंगे। साधारण कोटिके असंख्य लोगोंने अुन सबकी प्रणालिकामें अपना स्थान ग्रहण करके अपने तुच्छ जीवनको भी गौरवान्वित किया होगा। जिसने अिस स्थानको पसन्द किया और जिसने सबसे पहले अपनी भक्तिसे अिसे सींचा, अुस व्यक्तिकी विभूति कितनी

तक दौड़ती हैं, सो जाननेभरके लिअे अिन बातोंका अुपयोग होता है। कअी बार अिस तरहकी कल्पनाओंमें ही आगेके बहुतसे आविष्कारोंकी जड़ होती है। अिसलिअे मनुष्यकी मुरादके नाते अैसी मान्यताओंका लोप कभी होने ही न देना चाहिये।

अुखीमठमें अेक बड़ा बाजार है। याद नहीं क्यों यहां हमने चार या आठ आने देकर अेक नारियल खरीदा था। यहांके बाजारमें कअी नारियल दुकानसे मन्दिरमें और मन्दिरसे दुकानमें लगातार चक्कर काटा करते हैं। बाजारमें सिक्कोंके अैसे ही चक्करको बचानेके लिअे जिस तरह कागजके नोट चलाये जाते हैं, अुसी तरह यहां मन्दिरमें भी कागजके नारियल चलाये जायं तो क्या बुरा है? नारियलकी तरह वे भीतरसे सड़ेंगे तो नहीं!

जहां तक मुझे याद है, बंगाली साधु मायवानन्द अुखीमठ तक ही हमारे साथ था। यहां अुसे भंग पिलानेवाले कोअी दूसरे साधु मिल गये, अिसीलिअे वह गहरी छानकर अुसके नशेमें चूर हमसे मिलने आया था। अुसकी मुद्रा प्रसन्न नहीं मालूम होती थी। आंखें अैसी दिखाअी देती थीं, मानो पित्तप्रकोप हो गया हो। अब हम अपनी यात्राके राजमार्ग पर आ गये थे। गंगोत्री-जमनोत्रीके रास्ते पर सुविधाअें कम और जोखिम ज्यादा है। वहां मायवानन्दको हमारे संगकी बहुत जरूरत थी। अब वह नहीं रही। और फिर हमारे साथ पच्चीस-पच्चीस, तीस-तीस मील रोज चलकर वह थक गया था। अब अुससे और अधिक चला नहीं जा सकता था। अुसने कहा — "अब मैं थोड़ा आराम करूंगा। अगर आराम न किया, तो डर है कि यहीं ढेर हो जाअूं।" हमने सन्तोषपूर्वक अुसे विदा दी। यहांकी धर्मशालामें अेक डॉक्टरने हमें कुछ पत्ते दिखलाये। महाराष्ट्रमें जिसे 'घोड़ेके पैर' कहते हैं, अुसी किस्मकी अेक बेलके वे सूखे पत्ते थे। अुन्हें हाथमें लेते ही अुनकी बुकनी बन जाती थी। लेकिन अुन्हींको जब पानीमें डाला गया, तो थोड़े ही समयमें वे फिर ताजा पत्तोंकी तरह हरे हो गये। डॉक्टरने हमसे आग्रहपूर्वक कहा कि यहांसे थोड़ी दूर पर अेक साधु रहता है। जो भी कोअी अुससे मिलने जाता है, अुसे वह पत्थर मारता है और गालियां देता है। लेकिन दर्शन करके आने-

वालेको चमत्कार दिखे बिना नही रहता। कोअी न कोअी लाभ तो होता ही है। हमें न तो गालियोंकी चाह थी, और न पत्थरोंकी, और न चमत्कार और लाभकी लालसा थी। अिसलिअे हमने दर्शनोंकी अिच्छा नही की। हम आगे बढ़ गये।

अब हमें तुंगनाथकी चढाअी चढ़नी थी। अब तक हम कअी चढ़ाअियां चढ़ चुके थे। अिसलिअे तुंगनाथकी चढाअीके लिअे हम तैयार न हों, सो बात नही। परन्तु अुस दिन हवामें जो कुहरा छाया हुआ था, अुसके लिअे हम सचमुच तैयार न थे। सबेरे हम बहुत बढ़िया चले, पर मार्गमें अेक भी बढ़िया चीज देखनेको न मिली। क्षीरसागरमें मछलियोंकी तरह हम तुंगनाथकी चढ़ाअी चढ़ रहे थे। बीच-बीचमें रुककर हम अपने चारो तरफ देखते कि कहींसे भाग्य खुलते है? ठेठ चोटी पर पहुंचनेके बाद बादल कुछ छितराये। अूपरका भाग स्पष्ट हुआ। परन्तु शिखरके आसपास, हमारे पैरोंके नीचे, अब भी दूर-दूर तक बादल घिरे हुअे थे। बादलोसे भी अूपर अुठकर नीचेके बादलों पर नजर डालनेमें जो आनन्द आता है, और जैसे गौरवका अनुभव होता है, कम-से-कम अुसीके लिअे हरअेकको यहां आना चाहिये। सिंहगढ़, दार्जिलिंग, आबू आदि स्थानों पर अिस तरहकी शोभा कअी लोगोने देखी होगी। अुस वक्त अैसा जान पड़ता है, मानो हम अिस पृथ्वीके नहीं, बल्कि बादलों पर विराजमान गंधर्व-नगरीके निवासी हैं, और हमेशा अिसी तरह अूपर ही रहेंगे। अेक बार अिसी तरहकी अेक दूसरी यात्रामें मै दोपहरको अेक पहाड़ लांघ रहा था। वहा कुहरेके कारण पैरोंके नीचे दूर तक अेक विशाल अिन्द्र-धनुष फैला हुआ दिखाअी दिया। अैसा लगा मानो अेक रंगीन किनारवाला भव्य आसन बिछा है और मैं अुस पर बैठा हूं। अैसे स्थान पर सेंतमेंतमें अितना वैभव अनुभव करके मनुष्यका दिमाग हमेशाके लिअे फिर जाय तो ताज्जुब नहीं। और यह भी नही कि अैसे अुदाहरण पाये न जाते हों। जिसका सिर थोड़ी देरके लिअे फिरता है, वह कवि कहलाता है। मगर जिसका सिर सदाके लिअे फिर जाता है, अुसे पागल या दीवाना कहते हैं। ज्यों ही हम तुंगनाथसे नीचे अुतरे, हमारा वैरी कुहरा भी अूपरसे तितर-बितर हो गया। हम जब अूपर थे

तभी वह तशरीफ ले जाता, तो क्या हम अुसे शाप दे देते? नीचेकी मंगलचट्टीसे तुंगनाथका शिखर बहुत भव्य दिखाअी दिया। हम कितनी भव्य, रमणीय अूंचाअी तक पहुंच गये थे, जिसकी वास्तविक कल्पना हमें नीचे अुतरने पर ही हो सकी। यहांसे हम आगे बढ़े। स्वामी हमारे आगे थे। बाबा और मैं बहुत पीछे रह गये। सांझ हो गयी, अंधेरा होने आया, और वर्षाने भी जी भरकर अपना प्रसाद चखाया। अिसीलिअे मैं रुक गया। स्वामीका पता लगाया। वे आगे चले गये थे। मैंने बाबाके आनेकी बाट देखी और हमने अेक आदमीके साथ ओढ़ने-बिछानेका और दूसरा कुछ सामान आगे गोपेश्वर भेज दिया। हम वहीं रह गये। हमारी सारी यात्रामें यही अेक रात अैसी थी, जब हम तीनोंका संग छूटा था।

जब दूसरे दिन सवेरे हम गोपेश्वर पहुंचे, तो देखा कि स्वामी वहांके वृद्ध महन्तसे बातें कर रहे थे। ये महन्त असलमें दक्षिणी थे, लेकिन यहां रहते-रहते पहाड़ी बन गये थे। टूटी-फूटी मराठी बोल लेते थे। 'रानांत'* की जगह 'राणांत' कहते थे। अुन्होंने हमारी आवभगत की। स्वामीने अुनके साथकी अपनी बातचीतका सार हमें कह सुनाया। मालूम हुआ कि भगिनी निवेदिता यहां आयी थीं। बादमें हम अुनसे विदा होकर लालसांगाकी तरफ गये। यहांसे आगे बदरीनारायणका रास्ता पड़ता है।

लालसांगा यानी लाल पुल। अिस गांवका असल नाम चमोली है। परन्तु यात्रियोंके लिअे यहां अलकनन्दा पर जो पुल बना है, अुसके रंग परसे अिस स्थानका नाम लालसांगा पड़ गया है। यहां बाजार, तारघर वगैरा सुविधाओंके सिवा अेक शफाखाना (अस्पताल) भी है। लालसांगासे आगेकी यात्रामें ज्यादा मजा नहीं आता। यात्रियोंका अैसा तांता देखनेको मिलता है, मानो चींटियोंकी कतार चली हो। रास्तेमें गरुड़चट्टी पड़ी। वहां दोपहरमें अच्छी गहरी नींद आयी। अिसीलिअे अुस चट्टीका नाम याद रह गया है। पिछली रातको हमें मुश्किलसे थोड़ी नींद मिली थी। यदि दोपहरमें अिस तरह सोने नहीं पाते, तो शायद

* रानांत = जंगलमें।

बीमार पड़ जाते। याद पड़ता है कि यहीं हमने बिच्छू नामका भयानक पौदा देखा था। पिछले दिनों हम अितने चल चुके थे कि अब थकावट मालूम होने लगी थी। शामको हम जोशीमठ पहुंचे। जिस प्रकार केदारप्रभुकी शीतकालीन राजधानी है अुखीमठ, अुसी प्रकार बदरी-नारायणकी है जोशीमठ।

४२
बदरीधाम

१

अपनी दिग्विजयके बाद श्री आदि-शंकराचार्यने हिन्दू धर्मके लिअे अेक सुन्दर व्यवस्था बना दी। जैसे अीसाअी धर्मके लिअे सन्त पॉल हैं, अुसी तरह बड़े पैमाने पर हिन्दू धर्मके लिअे श्री वेदव्यास और भगवान शंकर हैं। अिन विभूतियोंके हृदयमें बड़े-बड़े खंड (महाद्वीप) समा सकते हैं। और अिनकी दृष्टि तो सुदूर सदियों तक पहुंचती है। विश्वास, वाग्वैभव और व्यवस्था ही मानो अिनका शरीर है। शंकराचार्यने अपनी व्यवस्थाको कायम और सजीव बनाये रखनेके लिअे भारतवर्षके चार सिरों पर चार मठ कायम किये — द्वारिका, शृंगेरी, पुरी और ज्योतिर्मठ (जोशीमठ)। अिस धर्म-सम्राटने अिन चारों जगहोंमें अपने ब्रह्मचारी नियुक्त किये — मानो अशोकके राजुक (वाअिसराय) हों!

अुत्तरमें ज्योतिर्मठ स्थापित करके वहा दक्षिणकी तरफके कट्टर धर्मनिष्ठ ब्रह्मचारियोंको बुलाया और नियुक्त किया।

हिन्दुस्तानसे बौद्धधर्म अुत्तरकी ओर तिब्बत और चीनकी तरफ गया। अुसके मंगोलियन संस्कार फिर अिस देशमें न आने पावें, कहा जाता है कि अिसी अेक अुद्देश्यसे यह अेक नाका यहां कायम किया गया था। प्राचीन संस्कृतिमें व्यापारकी दृष्टि, सैनिक दृष्टि और धर्मकी दृष्टि तीनोंको अेकत्र करके थाने कायम किये जाते थे।

जाड़ोंमें प्रभु बदरीनारायण स्वयं जोशीमठ आकर रहते हैं। अिस-लिअे यहां भी पंडों और यात्रियोंकी खासी भीड़ रहती है। यहांके कारीगर

तांबे और चांदीकी चद्दरों पर बदरीनारायणका चित्र अुभारकर बेचते हैं; वे कागज पर छपी तसवीरें भी रखते हैं। यहांका बाजार अिस प्रदेशका अेक बड़ा बाजार कहा जा सकता है।

जोशीमठमें हमें अेक मद्रासी ब्रह्मचारी मिला। वह अंग्रेजीमें बोल सकता था। अुससे जोशीमठके ब्रह्मचारी, महन्त और अुनके वंश-विस्तारकी काफी जानकारी हमें मिली। यात्रियोंकी अन्धी दानवृत्तिमें से अिन महन्तोंको मुफ्तकी कितनी आमदनी होती है और अुसका किस तरह विनियोग होता है, अिसके विषयमें भी अुसने हमें बहुत-कुछ बतलाया। अुसकी बातोंसे हमें पता चला कि वह बहुत-सी अन्दरकी बातें भी जानता था। हिन्दू समाजको साधारण समझदारी सिखाने और कअी तरहकी गंदगी दूर करनेके लिअे अब किसी जबरदस्त शिक्षा-विशारद शंकराचार्यका अवतीर्ण होना जरूरी है। जोशीमठके मन्दिरके चारो कोनों पर चार छोटे-छोटे मन्दिर हैं। अिन मन्दिरोंकी मूर्तियां प्रमाणशुद्ध और रूपहली लगीं। जिनमें से अेक मन्दिरमें शंकर और पार्वती भीलके वेशमें खड़े हैं। यह मूर्ति देखकर मैं तो मुग्ध हो गया।

जोशीमठसे अुतरकर हम अलकनन्दा और धवलगंगाके संगम पर विष्णुप्रयाग पहुंचे। जब पहाड़ी नदियां परस्पर मिलती हैं, तो मतवाली हो अुठती हैं। वहां देर तक बैठे रहना भी खतरनाक होता है। आश्चर्य नहीं कि अुस मस्तीमें गोता लगाकर आदमी बह जाय। वहांसे आगेकी दो-तीन चट्टियां पार करके हम हनुमानचट्टी पहुंचे। वहां प्राचीन कालमें अेक बड़ा भारी याग (यज्ञ) हुआ था। परन्तु वहां बिना रुके हम आगे बदरीनारायणकी तरफ चले। रास्तेमें अेक नदी जमकर बरफ हो गयी थी। अुसे पार करना आसान न था। पैरों तलेकी बरफ ठोस है या तरल, सो जाननेके लिअे हम अपनी लकड़ीकी नोक बरफ पर बड़े जोरसे मारते। अक्सर नदीकी अूपरी सतह तो जम जाती है, पर भीतर ठंडा पानी बहता रहता है। अगर अूपरकी तह टूट जाय और आदमी भीतर गिर पड़े, तो वह ठंडे पानीके प्रवाहरूपी अुस तरुपरमें बहे बिना न रहे! फिर अुसके लिअे बचनेका कोअी अुपाय ही नहीं। अूपरकी पहाड़ी परसे लुढ़क-लुढ़क कर कअी पत्थर बरफके पट पर आ गिरे थे।

पत्थरोंके भारसे बरफ पिघलती तथा पतली होती है। फिर अेक अैसा क्षण आता है, जब बरफसे पत्थरका बोझ नहीं सहा जाता। डुब्ब! और बस, समझिये कि पत्थरने जल-समाधि ले ली। अिस तरहकी कुछ जल-समाधियां देखकर हम चेत गये थे। कहते हैं कि अेक बार कोअी धनवान मनुष्य चार कहारोंकी झंपानमें बैठकर जा रहा था। अितनेमें अेकाअेक नीचेकी बरफ पिघल गयी। बस, वह झंपान और वे पाचों प्राणी वहीं प्रवाहमें गिरकर ठंढे हो गये। अुनके लिअे ठंढी सफेद कब्र तो तैयार ही थी।

मुझे कुछ-कुछ याद पड़ता है कि या तो केदारके रास्ते या बदरीनारायणके रास्ते पर हमें नदीके किनारे चलते-चलते कहीं पर बरफका अेक बड़ा-सा प्राकृतिक रूपसे बना हुआ पुल मिला था। नीचेकी तरफ झूलते पुलकी तरह बरफकी अेक गोल कमान बन गअी थी।

* * *

दर्शन हुअे! आखिर बदरीनारायणके शिखरके दर्शन हुअे। आनन्द! आनन्द! 'अुरसा, शिरसा, दृष्ट्या, वचसा, मनसा तथा पद्भ्यां, कराभ्यां, जानुभ्यां' हमने साष्टांग प्रणिपात किया! मनुष्य कितना ही क्यों न थका हो, क्या वह अिस आखिरी फासलेको पार करनेमें देर लगा सकता है! हम तो हवाअी गेंदकी तरह हलके होकर दौड़ने लगे। भीगे कपड़ोंसे पुरीमें प्रवेश किया। अुतारे पर जाकर कपड़े सुखाये और सांझकी आरती तथा राजभोग देखने जा पहुंचे। बाबा लोगोंका घंटी बजानेका अपना अेक खास ढंग होता है। कमर कस-कस कर दो आदमी घंटी बजाते हैं, और असमान ताल बराबर साधते हैं। यह ताल अिन्हें कैसे सूझा, अिस पर आश्चर्य हुअे बिना नहीं रहता। घंटानादके आमन्त्रणके अुत्तरमें हम मन्दिरमें पहुंचे। लोगोंकी भीड़ अितनी थी, मानो छत्ते पर मधुमक्खियां हों! अुस वक्त मनमें क्या-क्या आया, कौन-कौनसे भाव अुमड़े, अपने शब्दोंमें अिसकी कल्पना देनेकी अपेक्षा अुसे स्वामी आनन्दकी भाषामें यहां टांक दूं, तो मनको कुछ सन्तोष होगा:

"हम अुठकर अुतावलीसे मन्दिरमें गये। साक्षात् नारायणके द्वार पर — भगवानके चरणोंमें — लोगोंकी भीड़का पूछना ही क्या था?

सारी वदरीपुरी वहीं अुमड़कर आ गअी थी। अैसा अभागा कौन हो सकता है, जो पुरीमें रहकर भी राजभोगके दर्शन न करे! हमने ज्यों त्यों करके दर्शन किये। मन्दिरके भीतर दूर पर मूर्तिके पास अनेक दीपोंकी दीपमाला जगमगा रही थी। दर्शन करके हम गद्‌गद हुअे। कृतकृत्य हुअे। सगे-सम्बन्धी, स्नेही, आत्मीय, सबका यहां स्मरण हुआ। कअी दिनोंसे जिसकी धुन लगी हुअी थी, जिसके लिअे महीनों जंगलों और पहाड़ोंमें मारे-मारे फिरना हमने खुशीसे कबूल किया था, अुसे अन्तमें प्राप्त हुआ देख आंखोंसे आनन्दाश्रु बहने लगे, जीवन सफल हुआ। अुस समय धन्यताका अनुभव करके, नारायणके द्वार पर कअी लोग कृतकृत्य और पावन होकर, 'तेरे चरणोंमें अेक बार सदाके लिअे स्थान दे दे, नारायण', 'अिसी क्षण तेरे दरवाजे पर आश्रय दे', 'अब तेरी शरणमें आनेके बाद फिर अुस असार जगतमें मत भेज, प्रभो', 'मुझे अुबार ले', 'अिस जगतमें से निकालकर अपने चरणोंके पास अक्षय्य शान्ति दे', 'धन्य हो गया हूं नारायण, अब मृत्यु दे', आदि अनेक प्रकारसे प्रार्थना करके भगवानको मना रहे थे! नारायणके द्वार पर, साक्षात् नारायणके सम्मुख अुपस्थित होने पर भी किस अभागे प्राणीके मनमें अिस असार संसारकी भ्रान्ति रह सकती है, या अुसके लिअे यत्किंचित् भी मोह रह सकता है?

"मन्दिरके बाहर नारायणका प्रसाद (भात) बंट रहा था। मगर वहां अितनी करारी भीड़ थी कि लाख कोशिश करने पर भी हम भीतर नहीं घुस पाये। आखिर अेक यात्रीसे थोड़ासा प्रसाद मांगकर, बड़े प्रेमसे कृतकृत्य होकर खाया। यहां नारायणके द्वार पर राजा-रंक अेक हैं, गरीब-अमीर अेक हैं, ब्राह्मण-शूद्र अेक हैं, पापी-पुण्यवान अेक हैं, सुखी-दुःखी अेक हैं, रोगी-कोढ़ी, ढेढ़-चमार, शूद्र-अतिशूद्र, चांडाल-पतित, अूंच-नीच, काले-गोरे, वैष्णव-शैव, संन्यासी-त्यागी, शाक्त-बैरागी, छोटे-बड़े, बालक-स्त्री, सभी अेक हैं। यहां न भेद है, न जाति है, न संप्रदाय या पंथ है, न तेरा-मेरा है; यहां न द्वैत है, न द्वेष है, न वाद है, न टंटा है; यहां न सनातनी है, न समाजी है; यहां न सुधारक है, न अुद्धारक है; न पूर्व है, न पश्चिम है; यहां सभी अेक हैं, क्योंकि आज सारे भाअीबन्द फिर अेक ही पितासे मिलनेके लिअे विदेशसे लौटे हैं।

यहां किसीका दरजा बड़ा नहीं। कोअी भी तिनकेके समान नही, कोअी तुच्छ नही। अहंकारसे नाहक फूले हुअे लोगोंका मद यहां नारायणके दरवाजे पर अुतर जाता है। जो छोटे हैं, अुन्हे नारायण अपने हाथसे अूपर अुठाकर, पावन करके, सबकी पंगतमें बैठा देंगे। यहां अितना छोटा या अितना पापी भी कोअी नहीं, जिस पर नारायणकी दृष्टि न पड़े ।

अिक नदिया अिक नार कहावै मैलो नीर भर्यो।
जब मिल गये तब अेक बरन भये गंगा नाम पर्यो।।

"अिस पतित-पावनके द्वार पर कौन पावन न होगा? साक्षात् नारायणकी पावन दृष्टि पड़नेके बाद भी नीच-अूंच, अच्छा-बुरा, पापी-पुण्यवानके क्षुद्र भेदभावका मैल किस तरह रहेगा? और यह अभेद, यह अद्वैत, यह प्रेम, यह अेकात्मभाव, यह बंधुभाव अिस समय यहां बड़े-बड़े ज्ञानियोसे लेकर ठेठ गंवार तक सबकी समझमें आता है। अमीरसे लेकर निपट गरीब, अपढ़, अनाड़ी यात्री तक, सब बिना किसी संकोचके, बड़े प्रेमसे, अेक-दूसरेसे नारायणका प्रसाद मांगकर और आपसमें बांट कर खाते हैं, सो यों ही नही। अिसलिअे अेक बार बोलो "जय श्री बदरी विशालकी जय!", "जय श्री बदरी विशालकी जय!"

२

आज मुझे अन्तिम श्राद्ध करना था। यदि सिद्धपुर और गयामें माता-पिताका श्राद्ध किया जाय, तो माता-पिता तृप्त हो जाते हैं। लेकिन अगर मनुष्य बदरीनारायणमें ब्रह्मकपालकी शिला पर बैठकर श्राद्ध करे, तो अुसके सभी पूर्वज अेक साथ मोक्ष पाते हैं। शास्त्रोंमें यह स्पष्ट लिखा है कि यहां श्राद्ध करनेके अुपरात यदि मनुष्य फिर श्राद्ध करे, तो मोक्षको गये हुअे पूर्वज नरकमें पड़ते हैं! यहां श्राद्ध करनेसे मनुष्य पितरोंके ऋणसे सदाके लिअे मुक्त होता है। अनेक यात्रायें करता-करता मनुष्य हिमालयकी यह आखिरी यात्रा करता है, अिसलिअे अुसके सारे अैहिक बन्धन छूट जाने चाहिये। फिर अपने ही कुटुंबसे चिपटे रहनेकी संकीर्णता अुसमें रहनी ही न चाहिये। जहां मानसिक आसक्ति छूटी कि धार्मिक ऋण भी चुक ही गया। श्राद्ध करना होता है अपनी कोमल और

प्रेमल स्मृतिमें रहनेवाले पूर्वजोंका। हृदयकी ग्रंथि खुलते ही अपने माने हुओ सगे-सम्बन्धियोंका भी बन्धन टूट जाता है। फिर यह लगावट दुवारा नहीं लगायी जाती। जो सबका हो गया, अुसके लिओ अपने और परायेका भेद क्यों रहे? भगवानके चरणोंमें आकर भी यदि मनुष्य अैसी संकीर्णता रखे, तो समझिये कि यह वैसा ही बना है। वह और अुसकी स्मृति दोनों नरकको न जावें तो और क्या हो? नरक यानी संकीर्णता। तुकारामने कहा है:

आधीं होता मुक्त। स्वयें झाला बद्ध।
घेअुनीयां छंद। माझें माझें। *

सवेरे अुठकर, नहा-धोकर, लोटेमें चावल लेकर मैं मन्दिर पहुंचा। बदरीनारायणमें नहानेका कष्ट नहीं है। गरम पानीके बड़े-बड़े कुण्ड है। लोग जितने चाहें, नहायें, और जितना नहाना हो, नहायें। लोटा और चावल पुजारीके हवाले कर दिये। अुसने कुण्डके चूल्हे पर दूसरे असंख्य लोटोंके साथ मेरा लोटा भी चढ़ा दिया। दर्शन करके लौटा, तब तक लोटेमें चावल चुड़कर भात तैयार हो गया था। बदरीनारायणको अुसका भोग लगानेके बाद लोटा मुझे वापस मिला। अुसे लेकर मैं अपने पुरोहितके साथ ब्रह्मकपालकी विशाल शिला पर पहुंचा और मैंने श्राद्ध किया। यहांके पण्डोंकी परेशानीको मैं खूब जानता था। अेक संस्कृतको छोड़कर और किसीसे अुनका वैर न था। अिसलिओ मैंने खुद ही श्राद्धके मंत्र याद कर लिये थे। मृत पूर्वजोंके नाम भी अुनके सगे-सम्बन्धियों सहित कण्ठ कर लिये थे। मैंने सबके नामसे यहां श्राद्ध किया, और अेक कुल-धर्मकी सांगता सिद्ध कर चुकनेका सन्तोष लेकर लौटा। कितनी कृतार्थता थी! जैसे मैं अिस दुनियामें था ही नहीं! वहांसे सीधा वापस मन्दिरमें आया। घर जाकर भोजन करनेसे पहले मुझे फिर अेक बार नारायणके दर्शन करने थे। दरवाजे पर भीड़ बढ़ती जाती थी। अितने लोग अितनी भीड़ लगाकर खड़े हों, अेक-दूसरेका धक्का अेक-दूसरेको लगता हो, और फिर भी किसीका मिजाज बिगड़ता हो, सो बात न थी। सभी

* अर्थ — पहले मुक्त था। फिर 'मेरे, मेरे' की धुनमें पड़कर स्वतः बद्ध हुआ।

भक्तिके अुन्मादमें चूर थे। हरअेक आंखसे अेक-दूसरेके प्रति सद्‌भाव टपकता था।

अुस भीड़में अेक मारवाड़ी युवती अेक छोटी-सी थालीमें बादाम, शकर, किसमिस, चन्दन, कपूर आदि अनेक पूजाद्रव्य लिये प्रवेश खोजती थी। अितनेमें किसीका धक्का लगा। हाथमें से थाली गिर पड़ी। थालीके गिरते ही अेक क्षणके लिअे वह सन्न हो गयी, मानो छातीमें तीर भोंक दिया हो! दूसरे ही क्षण वह रो पड़ी। और क्यों न रोती? क्या अुसने शकरका अेक दाना बीन-बीन कर पसंद नहीं किया था? अेक अेक बादाम अच्छा पुष्ट देखकर नहीं लिया था? अपने हाथों चन्दन घिस-घिस कर अुसका लेप नहीं बनाया था? "यह सब बदरीनारायणको चढ़ाअूंगी," अिस संकल्पके साथ सारी सामग्री अेकत्र करके और अुसे अपने प्राणोंकी तरह सहेजकर वह यहां तक लायी थी। अुस पूजा-द्रव्यके पीछे कितना ध्यान, कितनी भक्ति, कितना आनन्द सन्निहित था! धन्यताके क्षणमें ही वह हाथसे गिरकर भगवानके द्वार पर बिखर जाय, अिससे बड़ी विपत्ति और क्या हो सकती है? कैसा अुसका दुःख था! कैसा विलाप! मेरा हृदय रो पड़ा। मैं पास गया। अुस बालिकाकी भक्तिके आगे मेरा माथा झुका। मैंने कहा:

"बहन, यह वृथा शोक क्यों करती हो? क्या अिसलिअे कि पुजारीके हाथों यह भोग भीतर नहीं पहुंच पाया? तुम भूल करती हो। यहांका अेक अेक पत्थर पवित्र है, पावन है। और भगवानके द्वार पर जड़े ये फर्शके पत्थर! कौन जानता है कितने सत-महंत, साधु-सत्पुरुषोंके चरण-स्पर्शसे ये सब पुनीत हुअे होंगे! भगवान तुम्हारे भोगको पुजारीके हाथों स्वीकारना नहीं चाहते थे। अुन्हे वह तुम्हारे हाथों ही लेना था। अिसलिअे अैसा हुआ। तुम्हें अपनी भक्ति पर विश्वास होना चाहिये।" अैसी कअी बातें मैंने अुससे कहीं। बाला श्रद्धाकी दृष्टिसे मेरी तरफ देखती ही रही।

बिखरे हुअे बादामों और शकरके दानोंको बटोरकर अुन्हें भगवानके प्रसादकी तरह अुसे देते हुअे मैंने कहा—"जाओ बहन, अब सुखसे घर जाओ। भगवानकी कृपाके विषयमें मनमें शंका न रखना।" भोली

वाला ! मैंने जो कुछ कहा, सो सब अुसने सुना, श्रद्धापूर्वक माना। आंसू पोंछ लिये और 'जय बदरी विशालकी जय' कहकर वहांसे चली गअी। वह गअी, लेकिन मुझे भक्तिकी दीक्षा देती गअी। नारी-हृदयमें कितनी श्रद्धा होती है, कितनी भक्ति होती है, कितनी अुत्कटता होती है, अिसका मुझे दर्शन कराती गअी। मुझे बदरीनारायणके दर्शन मूर्तिकी अपेक्षा अिस भोली मारवाड़ी बालामें विशेष हुअे।

४३

वापसीमें

बदरीनारायणसे कुछ यात्री वसुधारा जाते हैं। यहां अूपरसे अेक झरना गिरता है। कहा जाता है कि जो पुण्यवान होते हैं, अुन्हींके माथे पर अुसकी धारा गिरती है। यदि कोअी पापी हो, तो धारा अेक तरफ गिरेगी, अुसके माथे पर नहीं। वसुधारा जानेका विचार हमने छोड़ दिया, क्योंकि हमारे कुलियोंकी नीयत आगे जानेकी न थी। वे अब जल्दी घर जानेके लिअे अुत्सुक थे। हम लौट पड़े। रास्तेमें देखा कअी लोग बदरीनारायणका भात धूपमें सुखा रहे थे। यह सुखाया हुआ भात वे लोग यहांसे घर ले जायेंगे। बंगाली बंगाल ले जायेंगे, पंजाबी पंजाब, मारवाड़ी अपनी मरुभूमिमें ले जाकर खायेंगे और कट्टर व कर्मठ महाराष्ट्रीय भी अपने घर ले जाकर और सारे सगे-सम्बन्धियोंको बांटकर खायेंगे। मद्रासियोंके — ठेठ रामेश्वर तकके मद्रासियोंके — घर भी यह भात पहुंचेगा। जैसे शालिग्राम पत्थर नहीं समझा जाता, जनेअू सूत नहीं समझा जाता, अुसी प्रकार यह भात अन्न नहीं समझा जाता। यह तो प्रत्यक्ष प्रभुका प्रसाद है। यह हमारी काया पवित्र करता है। किसी भी कारणसे यह प्रसाद अपवित्र नहीं होता। यह अग्निकी तरह पवित्र है। हम यह प्रसाद लेकर लौटे।

रास्तेमें जहां तहां बिच्छूके झुरमुट दिखाअी देते थे। मराठीमें अिस पौधेको 'खाजकुअी' कहते हैं। कोअी 'खाजकोली' भी कहते हैं। अिसके पत्ते शरीरसे रगड़ खाते ही बड़ी खुजली और जलन पैदा करते हैं।

अेक वैष्णव भक्त तुलसीके पौधेको प्रणाम कर रहा था। अेक पादरीने यह देखा। अुसने तुलसीके पत्ते हाथमें लिये और मसल डाले। भक्त भी पहुंचा हुआ था। वह सहज भावसे कुछ आगे गया और बिच्छूके पौधेको साष्टांग प्रणाम करके बोला — "हमारा यह देव तुलसीसे भी बड़ा है।" दुबारा प्रयोग करके देखने पर पादरी साहबको भी अिस बातकी प्रतीति हुअी। अुधरके अेक पहाड़ीने हमें यह किस्सा हंस-हंसकर सुनाया। अिस तरहके चुटकुले सभी प्रान्तोंमें सुने जाते हैं। अगर पादरी न हो, तो दूसरा कोअी विधर्मी या नास्तिक हो सकता है। किस्सेका काम तो किसी भी आदमीसे चल जाता है।

हम लालसांगा पार करके मिलचौड़ी आये। यहां टेहरी राज्यकी सीमा खतम होती है। कुलियोंके अिकरार यहीं तकके होते हैं। कैरासिह और बादरू दोनों अपना पूरा वेतन पाकर गद्‌गद हो गये और हमें छोड़कर लौटे। बिदा होते समय वे हमसे कहने लगे — "आप लोग अितनी तेजीसे चले कि हमारे दिन बचे, आधा खर्च भी बचा। लेकिन चलते-चलते दम निकल गया। अब घर जाकर खूब दूध-घी खायेंगे और अगले साल बोझ ढोनेके कामसे छुट्टी लेंगे।" जिस दिन हम मुकाम करते, अुस दिन अुनका आधा खर्च हम पर पड़ता था। गेहूंके आटेके बदले यदि हम अुन्हें दाल-चावलकी खिचड़ी दे देते, तो वह अुनके लिअे बड़ी नियामत हो जाती थी। खिचड़ी देकर दस मील ज्यादा चला लेने पर भी वे अुज्र नहीं करते थे। हमने अेक नया कुली किया। वह था तो सीधा, लेकिन भोलेपनमें बातें बहुत करता था। जिस तरह साधु लोग अपने विषयमें बात करते वक्त 'मैं' कहनेके बदले 'यह शरीर' कहा करते हैं, अुसी तरह हमारा कुली भी, जब अुसे अपने बारेमें कुछ कहना होता, तो 'मेरे प्राण'से ही बात शुरू करता था : 'मेरे प्राण थक गये हैं', 'मेरे प्राणोंको नींद चाहिये', 'मेरे प्राण अंधेरेमें जानेकी हिम्मत नहीं करते' वगैरा! वगैरा!

मिलचौड़ीसे आगे चलते ही गणअी आया। वहां अेक दुकानके पिछवाड़ेवाले लम्बे और संकरे दालानमें हम सो रहे थे। थके हुअे शरीरको नींदकी अेक झपकी मुश्किलसे मिल पायी थी कि अितनेमें

पड़ोसमें गाना शुरू हो गया। बहुतसे पहाड़ी जमा हुअे थे। आवाज परसे हमने अन्दाज किया कि कोअी लड़का गा रहा है। अुसका गला अच्छा था। तान भी मधुर थी। थोड़ी देर तक नींदमें गानेकी मिठास मिल गयी और मैं प्रसन्न हुआ। लेकिन गाना अेक कड़ीसे आगे बढ़ता ही न था। आध घंटा हुआ, पौन घंटा हुआ, अेक घंटा हुआ, दो घंटे हो गये! मगर बस वहींकी वही कड़ी चल रही थी। मैं अुकता गया, तंग आ गया, बेचैन हो गया। वह कड़ी मगजमें घुसी, माथा घूमने लगा। परन्तु गाना कुछ भी किये रुकता ही न था। वहां फरियाद भी किससे करता? आखिर थककर कब सो गया, भगवान ही जानें। जो संगीत शुरूमें मधुर लगा, वही बादमें अितना अरुचिकर हो गया, यह देखकर मनमें विचार आया कि स्वर्गके देव भी अेक ही से भोग पुनः पुनः भोगकर मेरी तरह ही अुकता अुठते होंगे और मृत्युके लिअे तरसते होंगे। मुझे तुकारामका अेक अभंग याद आया :

स्वर्गींचे अमर अिच्छिताती देवा।
मृत्युलोकीं व्हावा जन्म आम्हां॥*

अमरत्व यानी, जैसा कि स्वामी दयानन्दने कहा है, कभी समाप्त न होनेवाली आजन्म सजा। मैं कोअी स्वर्गका देव न था, जो मृत्युके लिअे तरसता। मेरे लिअे तो बस, यही जरूरी था कि सवेरा हो और मैं गणअीसे आगे रवाना होअूं।

यहां रास्तेमें अच्छा आटा नहीं मिलता। अुसमें चक्कीकी, बालू अवश्य मिली होती है। नतीजा यह हुआ कि मेरा पेट बिगड़ गया। मुझे बुखार आने लगा। लेकिन यहां रुकनेसे काम थोड़े ही बननेवाला था। चाहे बुखार हो, चाहे न हो, चलना तो पड़ेगा ही। रास्तेमें काठके बरतनमें जमाया हुआ कच्चे दूधका दही मिलता था। वह दही मैं दिल खोलकर खाता था। दहीसे मुझे नुकसान नहीं हुआ। अुलटे, पेटके मरोडोंके लिअे वह अकसीर दवाके समान सिद्ध हुआ।

---

* अर्थ — स्वर्गके देव अिच्छा करते हैं कि हे अीश्वर, हमें मृत्युलोकमें जन्म चाहिये।

'द्वाराहाट'

अेक दिन बिलकुल शाम हो जाने पर हम अेक पहाड़की तलहटीमें जा पहुंचे। रास्तेमें पानी बहुत बरसा। मैं भीग गया था। अेक आदमीके यहा कपड़े सुखाने ठहर गया, अत पिछड़ गया। दुकानदारने कहा — "तुम्हारे दो साथी आगे द्वाराहाट गये है और तुम्हें वहा पहुंचनेको कह गये हैं।" दुकानदारसे सन्देशा सुना और मैंने आकाशकी तरफ देखा। अैसा सुन्दर आकाश क्वचित् ही देखनेको मिलता है। अंधेरा बढ़ता चला। मैं सोचने लगा कि आगे जाअू या न जाअू? मनने तय किया कि अंधेरेमें जानेसे अेक रात यहा रह जाना ही अच्छा है। लेकिन दूसरे ही क्षण धुन सवार हुअी कि चला चलू। अेक रातका अनुभव मिलेगा। दुकानदारको अचम्भेमें डालकर मैं अुस रातमें आगे बढ़ चला।

पूनोकी रात थी। लेकिन अंधेरा अितना था कि अमावसकी रातमें भी क्या होता? आकाश काले सियाह मेघोंसे घिरा हुआ था। रास्ता बराबर सूझता न था। दोपहरकी बारिशके कारण रास्ता बीच-बीचमें घुल भी गया था, और छोटे-बड़े गड्ढे बन गये थे। रास्तेमें कअी बार गिरा, लड़खड़ाया, घुटना मोच खा गया। ओढ़ी हुअी शालको मेरी अपेक्षा कटीले झाड़ों पर ही दया आने लगी, और वह वहीं रह जानेकी बात करने लगी। अुसे मनाकर साथ लिया और आगे चला। ज्यों-ज्यों वक्त जाता था त्यों-त्यों पछतावा होता था कि पीछे रह जाता तो कितना अच्छा होता! बहुत चलनेके बाद दिलमें विचार आया कि जितना चलकर आया हूं, वह अन्तर अधिक है या आगे बचा हुआ अन्तर अधिक है? लौटनेकी सोचू और आगेका रहा हुआ अन्तर दो फर्लांगका ही हो, तो बेवकूफ ही न बनू! आगे चलता जाता था, और फिर हिसाब लगाता जाता था। मेरी घड़ी अंटीमें बंधी थी, लेकिन रातके वक्त अुसमें क्या दिखाअी देता? अन्तमें बुद्धिमानी सूझी कि

विचारकी घड़ी बंद कर दूं, और चुपचाप चलता चलूं। धीरज छूटनेसे पहले जंगल ही छूट गया, और मैं द्वाराहाट पहुंचा।

द्वाराहाटमें बाजार लगता है। लेकिन रातके नौ-साढ़े नौ बज गये थे। सारा गांव सो रहा था। अब बाबा और स्वामीकी कहां तलाश की जाय? किसीका दरवाजा खटखटाअू और वह मुझे दुतकार दे तो? और मान लो कि न भी दुतकारे, तो अुससे क्या पूछूं? हमारे बाबा कहां हैं? स्वामी कहां हैं? वर्ड्सवर्थकी 'ओडियट बॉय' नामक कविता याद आयी। मूर्ख मांने लड़केको गधे पर बैठाकर आधी रातको डॉक्टरके पास भेजा। गधा और बेवकूफ लड़का दोनों जंगलमें 'ठण्डी धूप' की सैर करने गये। आखिर मूर्ख माता अुन्हें खोजने निकली। शहरमें जाकर डॉक्टरसे पूछा — "डॉक्टर, डॉक्टर, व्हेर अिज़ माअी जॉनी?" (डॉक्टर, डॉक्टर, मेरा जॉनी कहां है?) बेचारा डॉक्टर अुस पागल मांके दुलारे जॉनीको कहांसे जाने? नींद खराब होनेके कारण वह चिढ़ गया, और बड़बड़ाता हुआ सो गया। यदि मैं घर घर बाबा और स्वामीकी तलाश करता, तो मेरी भी यही दशा होती। अन्तमें अेक अुपाय सूझा। मैं बड़ी गम्भीर और अूंची आवाजमें अुपनिषदोंके अुन मन्त्रोंको जो मुखाग्र थे, गाता हुआ घूमने लगा।

जब बिजली चमकती थी तो कुछ दिखाअी पड़ जाता था, लेकिन बादमें अंधेरा दुगना हो जाता था। अेक रास्तेके छोर पर पहुंचा तो वहां समतल और चिकनी जमीन दिखाअी दी, मानो रेत ही बिछी हो। सोचा, टेनिस कोर्ट यहां कैसा? शायद अुधरसे होकर मेरा रास्ता आगे जाता होगा। लेकिन मुझे शक हुआ। अेक पत्थर अुठाकर टेनिस कोर्ट पर फेंका। पत्थरने रिपोर्ट दी कि यहां पानी है, और तुरन्त जलसमाधि ले ली। अुस परोपकारी पत्थरको धन्यवाद। मैंने दाहिनी तरफका रास्ता लिया और फिर गश्त लगाना शुरू कर दिया। थोड़ा आगे जाते ही अेक दुकानकी अटारीकी छोटी-सी खिड़की खुली। स्वामीने पुकारा — "काका?" मैंने पूछा — "आनंद?" और लालटेन लेकर स्वामी तुरन्त नीचे आये। बाबाने रसोअी बनाकर रखी थी। अुन्होंने बड़े प्रेमसे, छलछलाती आंखोंसे मुझे भोजन कराया। अितने अंधेरेमें मैं कैसे

आ सका, यही सबकी चर्चाका अेक बड़ा भारी विषय बन गया। प्रेमकी बातोंका कभी अन्त आता है? थके हुअे शरीरने तकाजा न किया होता, तो हमारी बातें खतम होनेसे पहले रात ही खतम हुअी होती। सवेरे 'टेनिस कोर्ट' जैसे अुस तालाबके दर्शन किये। तालाब पर लाल-हरी अंजीरी काअी जमी हुअी थी।

हम आगे चले। अब रास्ता थोड़ा रह गया था। नीचे घाटीकी राह चलते, तो असह्य बफारेसे भुन जाते। अिसलिअे हमने भी पहाड़ी लोगोंकी तरह पहाड़ियों पर जैसा भी कुछ रास्ता मिला, अुसीसे जाना पसन्द किया। बार बार चढ़ना-अुतरना पड़े तो परवाह नहीं, लेकिन घाटीकी भट्टीसे तो बचना ही चाहिये। आखिर अल्मोड़ा आया। वहांके परिचित स्थान भी नये-नयेसे मालूम होने लगे। हमने डेढ़-दो महीनेमें कितना कीमती अनुभव प्राप्त किया था, कितने विचार विकसित किये थे, कितनी भव्यताका आकण्ठ पान किया था! दृष्टि बिलकुल नयी हो गअी थी। अब अुसे पुराने दृश्य भी नये लगने लगे तो अिसमें आश्चर्य ही क्या?

अेक यात्रा पूरी हुअी; अेक संकल्प सफल हुआ। लेकिन अिसीमें से अमरनाथकी यात्राकी अेक फुनगी निकली, जो हमें चैनसे बैठने नहीं देती थी। बाबा और मैं स्वामीसे विदा लेकर फिर हरिद्वारकी ओर चले। हमें स्वयंभू महादेव अमरनाथके दर्शन करने थे। काश्मीरका भूस्वर्ग देखना था। सृष्टि अनन्त है, दिशा और काल अनन्त हैं, कार्य-कारण-भाव अनन्त है, मूल परब्रह्म अनन्त है, तो मनुष्यकी वासना, अुसके संकल्प और अुसकी योजनाओंका भी अन्त कैसे हो?

४५

फलश्रुति

'रोचनार्था फलश्रुतिः'। किसी भी वस्तुकी तरफ मनुष्यके चित्तको ललचानेके लिअे जो सच्चे-झूठे लाभ बतलाये जाते हैं, वे फलश्रुति हैं। बच्चोंको सच्चे लाभ बतलाये जायं, तो वे अुनकी निगाहमें नहीं जंचते। अिसलिअे अुन्हें रुचिकर लगनेवाले सच्चे या झूठे लाभ बतलानेका हमारे यहां, अथवा यों कह लीजिये कि दुनियाके सभी देशोंमें, बहुत पुराना रिवाज है। अिससे सत्यका कितना अपमान होता है, अिसका विचार कोअी करता ही नहीं। और अेक बार असत्य बोलनेका निश्चय करने पर फिर अुसमें मर्यादा क्यों रखी जाय? असत्यकी मात्रा नशीली चीजकी तरह बढ़ती ही जाती है। परन्तु अिसीमें असत्यकी दवा भी है। हमारी धार्मिक विधियों और व्रतोंमें फलश्रुतिकी मानो होड़-सी चल रही है। आजके अिश्तिहारबाज जैसी निर्लज्जतासे झूठका बाजार गरम करते हैं, अुतनी ही निर्लज्जता हम पुरानी फलश्रुतियोंमें देख सकते हैं। 'पुत्रार्थी लभते पुत्रम्। धनार्थी लभते धनम्।' आदिकी मालिका जहां आरंभ हुअी कि फिर अुसका अन्त आता ही नहीं। 'भुक्ति मुक्ति च विन्दति' तक पहुंचे बिना कैसे रहा जाय?

अिस ढंगसे यदि हिमालय-यात्राकी अेक फलश्रुति लिखनी हो, तो मुझे कहना चाहिये कि जो कोअी यह यात्रा करेगा, अुसे कम-से-कम सौ शतायुषी पुत्र होंगे, अुसका घर सुवर्णका होगा, मनचाही शादियां करने पर भी वह जवानका जवान ही रहेगा, स्वर्गकी अप्सराअें, हिमालयके सिद्ध, गन्धर्व और सनत्कुमारादि निवृत्तिशाली ब्रह्मचारी अेक ही समय सम्मिलित रूपसे अुस पर प्रसन्न होंगे। अैसी फलश्रुतिसे मनुष्यकी कैसी दुर्दशा होगी, अिसका विचार करना हमारा काम नहीं।

यदि यात्राकी अितनी फलश्रुति है, तो यात्रा-वर्णनकी फलश्रुति अिससे भी बढ़कर होनी चाहिये। जो कोअी यह यात्रा-वर्णन पढ़ेगा, अुसे

अर्थलाभ होगा। जो अिस वर्णन-ग्रंथको अपने संग्रहमें रखेगा, अुसके घर चोर नहीं आयेंगे। जो कोअी यह पुस्तक मोल लेकर ब्राह्मणों और विद्यार्थियोंको — और आजके जमानेमें हरिजनोंको — मुफ्त देगा, अुस पर ग्रंथकार आचार्य और अुसके प्रकाशक सदा सन्तुष्ट रहेंगे। प्रवास किये बिना ही अुसे यात्राका फल मिलेगा, अित्यादि, अित्यादि।

अगर लालचके साथ भय न जोड़ा जाय, तो काम अधूरा माना जायगा। अिसलिअे, जो कोअी अिस पुस्तककी बुराअी करेगा, अिसके वचनों पर मनमें सन्देह करेगा, अुसे यह होगा, वह होगा। और अूपरकी फलश्रुतिके विषयमें जो शंका करेगा, वह तो कम-से-कम चार कल्प तक रौरव नरकमें सड़ता रहेगा। और जो कोअी अिस यात्रा-वर्णनको पढ़कर फलश्रुतिके अध्यायको छोड़ देगा, 'वृथा पाठो भवेत् तस्य श्रम अेव हयुदाहृतः'।

हिन्दू धर्म पर फलश्रुतिने जितना अत्याचार किया है, अुतना शायद नास्तिकताने भी न किया होगा।

परन्तु मुझे अपनी यात्राकी फलश्रुति अिससे बिलकुल भिन्न रीतिसे देनी है। मुझे यह बतलाना है कि अिस यात्रासे मुझे कौनसा लाभ हुआ, और जो कोअी अिस प्रकारकी यात्रा करेगा, अुसे प्रत्यक्ष क्या-क्या लाभ हो सकते हैं। अितना कहा कि मेरा काम पूरा हो गया।

शुरूमें ही मुझे यह स्वीकार कर लेना चाहिये कि अिस तरहकी यात्राके लिअे जो तैयारी पहलेसे करनी चाहिये, वह मैंने नहीं की थी। पूर्व तैयारीके बिना किये गये काम कम-से-कम फल देते हैं। शिक्षा जीवनकी पूर्व तैयारी ही है। अिसलिअे शिक्षाशास्त्रीको तो हर बातमें पूरी-पूरी पूर्व तैयारी करनेका खयाल रहना ही चाहिये। लेकिन आज-कलके शिक्षाशास्त्री दूसरोंको जो शिक्षा देते हैं, अुसे अपने जीवनमें लानेकी परवाह नहीं करते। मुझे तो याद नहीं आता कि मैंने अपने जीवनमें किसी भी अवसर पर ठीक ठीक पूर्व तैयारी की हो। अिसलिअे मैं अिस यात्राकी फलश्रुतिमें क्या कहूं?

हिमालयकी यात्रा अथवा अुत्तरकी किसी भी यात्रा पर जानेवालेको हिन्दी भाषाका कामचलाअू ज्ञान तो होना ही चाहिये। मेरे पास यह

ज्ञान नहीं था। जिस प्रदेशकी यात्रा कर रहे हों, अुसके स्थानिक अितिहास और स्थानिक भूगोलकी साधारण जानकारी तो यात्रीको होनी ही चाहिये। मुझे वह भी नहीं थी। यात्राके लिअे रवाना होते समय तीर्थक्षेत्रका माहात्म्य, जैसा भी मिले, पढ़ जाना चाहिये। अन्यथा मनुष्य यात्राके आधे काव्यको खो बैठेगा। पूर्व तैयारीके नाते मेरे पास अुत्साहकी पूंजी पर्याप्त थी। शरीर दुबला-पतला लेकिन कष्ट-सहिष्णु था। बरबाद करनेके लिअे समयकी कमी न थी। बिना किसी अुद्देश्यके जीवन बितानेकी मानसिक तैयारी भी थी। मुझे रसोअी बनाना आता था। पानीमें तैरना आता था, और अकेले-अकेले मनोराज्यमें मग्न होना भी आता था। प्रकृतिके साथ अेकरूप होने जितनी मनोवृत्ति बन चुकी थी, और यह श्रद्धा थी कि निष्पाप प्रवृत्तिका कोअी सात्त्विक फल ही मिलेगा। और, दूसरी बड़ी-से-बड़ी तैयारी थी प्रेमी मित्रोंका साथ।

वेदान्तके ग्रन्थोंमें कहा है कि भक्तोंमें दो प्रकारकी वृत्तियां होती हैं, बिल्लीके बच्चोंकी और बन्दरके बच्चोंकी। बिल्लीका बच्चा सभी तरह निराधार होता है: आंखें मींचकर पड़ा रहता है और मनमें कहता है कि मेरी मा आयगी और मुझे अुठाकर ले जायगी। लेकिन बंदरीका बच्चा भरसक स्वावलंबी होता है। मेरी मां कहां है, संकट किस तरफसे आ सकता है, आदि बातोंका वह खुद ही ध्यान रखता है, और संकटके समय झट जाकर मासे चिपट जाता है। मनुष्यमें भी ये दोनों तरहकी वृत्तियां होती हैं। मुझमें भी ये दोनों वृत्तियां अुचित मात्रामें थीं, अिसलिअे अिसे भी पूर्व तैयारीका अेक अंग माननेमें हर्ज नहीं।

जब कोअी हिन्दू हिमालयकी यात्रा करने निकलता है, तो अुसमें अुसका मुख्य अुद्देश्य धार्मिक ही हो सकता है। हम हिमालयका दूसरी दृष्टिसे विचार ही नहीं कर सकते। परन्तु धार्मिक हेतुके मानी क्या हैं? हिन्दू समाजमें यह धारणा तो होती है कि हम पैदल चलें। पवित्र मानी जानेवाली भूमि पर हमारे शरीरका भार पड़ा, अिसलिअे हम पावन तो हो ही गये! यदि अैसा न होता, तो अन्धे और बहरे यात्रा करने न जाते। जब कोअी यूरोपनिवासी यात्रा करता है, तो वह अपने साथ सुख-सुविधाके जितने साधन ले सकता है, ले लेता है। वह शरीरका वजन,

शरीरकी शक्ति और शरीरका आनन्द बढ़ानेका प्रयत्न सर्व प्रथम करता है। फोटो खीचने और चित्र बनानेकी सामग्री साथ रखकर वह अपने संस्कारोंको स्थायी रूप देनेकी कोशिश करता है। आड़ा-टेढ़ा जितना घूमा जा सके, घूमकर जो दूसरोंने न देखा या जाना हो, अुसीको प्राप्त करके किसी-न किसी बातकी सर्वप्रथम गवेषणा करनेका वह प्रयत्न करता है। धार्मिक यात्रामें हम जितने कष्ट अुठाते हैं, अुतना ही यात्राका पुण्य बढ़ता है। भोग-विलासकी बदौलत या आलस्यकी बदौलत शरीर पर जो जड़ता चढ़ जाती है, अुसे निकाल फेंकना भी अेक धार्मिक साधना मानी गयी है। मेरी समझमें हमारे लोगोंने यात्राओंमें तितिक्षाका तत्त्व दाखिल करके अुन्हें बहुत अूंचा अुठा दिया है। यदि यात्रियोंमें तितिक्षा-वृत्ति न हो, तपोलालसा न हो, तो यात्राके धाम पवित्र नहीं रह सकते। और अुस दशामें अुन-अुन तीर्थस्थानोंका प्राकृतिक सौंदर्य भी फीका पड़े विना नहीं रह सकता। कष्ट झेलनेसे, स्वेच्छापूर्वक तरह तरहकी अ-सुविधायें सहनेसे, मनुष्यकी शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक भूख खिलती है, और जीवनका आनन्द सात्त्विक अेवं विशुद्ध बनता है। विलासिता और कलामें बैर होनेसे तितिक्षाके द्वारा ही मनुष्य रसास्वादकी शक्तिका विकास और संवर्धन कर सकता है। जो अमुक प्रकारसे तपस्वी होता है, वही कला-रसिक हो सकता है।

धार्मिक लाभोंमें दूसरा बड़ा लाभ है सत्पुरुषोंके दर्शन। अैसे अुदाहरण विरले हैं कि किसी तीर्थका माहात्म्य देखकर सत्पुरुष वहां जा बसे हों। प्रकृतिकी भव्यता देखकर या किसी प्रसंग विशेषकी पवित्रतासे प्रभावित होकर कोअी सत्पुरुष वहा बस जाता है, और बादमें वह स्थान तीर्थकी पदवी प्राप्त करता है। यदि अनेक सत्पुरुष अेक ही स्थानको दीर्घकालके लिअे पसन्द करें, अथवा कोअी प्रभावशाली व्यक्ति किसी स्थानके माहात्म्यको बढ़ावा दे दे, तो तुरन्त ही वह अेक बड़ा तीर्थस्थान माना जाने लगता है। फिर वहां साधु-सन्त, तपस्वी और मुनियोंका आना-जाना जारी रहता है। हरअेक तीर्थके साथ जो-जो घटनायें जुड़ जाती हैं, वे सब यात्रियोंके मुंहमें जीवित रहती हैं। अिसलिअे अैसे स्थानोंमें धर्म-जीवन और धर्म-रहस्य अनायास ही जाग्रत रहता है।

बादमें ये स्थान सहज ही धार्मिक विचारका विनिमय करनेवाले सम्मेलन स्थान-जैसे बन जाते है।

लोगोंकी धार्मिक वृत्तिके कारण यहा अखण्ड रूपसे ज्ञानके सत्र चलते रहनेकी सुविधायें अुपस्थित हो जाती हैं। और फिर यहां धर्म-विचारोंकी परख भी भलीभांति होने लगती है। अनेक लोगोंके विचार आमने-सामने अेक-दूसरेसे टकराते हैं और अुसमें से अत्युच्च समन्वयकी दृष्टि भी विकसित होती है।

बड़े बड़े तीर्थस्थानोंमें मैंने ये चारों लाभ देखे हैं।

सच्चे यात्री अक्सर यात्रामें ब्रह्मचर्यका पालन करते ही हैं; वे यथासम्भव झूठ नही बोलते, न किसीको धोखा देते हैं। यह भी अेक बड़ा भारी धार्मिक लाभ ही समझा जाना चाहिये। यदि मनुष्यने अेक बार शुद्ध जीवनका आनन्द चख लिया, तो अुसे अैसा लगने लगता है कि आगे भी अैसा ही जीवन बिताना पड़े तो अच्छा हो। और कभी-कभी मनुष्य अुस संकल्पको दृढ़ भी कर लेता है। यात्राके कारण धार्मिक धारणाओं, भावनाओं, रीत-रिवाजों और अुनके काव्यका भंडार तो मनुष्यके हृदयमें बढ़ता ही है। यही नहीं, बल्कि अिस सबके मूलस्वरूप अुसके विचार भी अधिकाधिक अुदार होते जाते हैं। जब मद्रासी ब्राह्मण काश्मीर जाता है, और काश्मीरका पंडित महाराष्ट्रमें पहुंचता है, तो यह देखकर कि कट्टर धार्मिक माने जानेवाले लोगोंमें भी कितना फरक होता है, मनुष्यका मन चाहे जैसे हेरफेरके लिये तैयार हो जाता है। और यह अुदारता ही शिक्षाका बड़े-से-बड़ा फल है।

शिक्षाके मुख्य क्षेत्र दो है: अेक मानसशास्त्र और दूसरा समाजशास्त्र। यदि मनुष्य दोनों दिशाओंमें दूर तक जा सका, तो वह शिक्षित है हो। मनुष्य अपने भीतर पैठकर, अन्तर्मुख होकर, अपने आपकी जांच-परख कर मानसशास्त्रमें डुबकी लगाता है; जब कि अपने आसपासका निरीक्षण करके, दूर तकके कार्य-कारणभावकी जांच करके और साधारण मनुष्य किस किस तरह बरताव करते हैं, अिसका लेखा लगाकर वह समाजशास्त्रकी रचना करता है। भीतर पैठकर वह अन्तर्यामीको पहचान सकता है और बाहर सब तरफ घूमकर वह विराट पुरुषका आकलन कर सकता है।

अन्तर्यामीकी पहचान अध्यात्मशास्त्र है, और विराट पुरुषका परिचय सृष्टि-शास्त्र। दोनोंके मेलसे धर्मशास्त्र बनता है। अिस धर्मशास्त्रका परिशीलन ही यथार्थ शिक्षा है।

यात्राका सद्य.फलदायी लाभ तो प्रकृतिकी लीलाके दर्शन हैं। अूंचे-अूंचे पर्वत और नीची घाटिया, चौड़ी नदिया और अुनसे भी चौड़े पुलिन, सब तरफ अुगे हुअे पेड़ और अुनके अूपर-नीचे आश्रय लेनेवाले पशु-पक्षी — यह सब अेक महान काव्य है। जहां पहाड़-पर्वत न हों, और जमीन सब तरफ बिलकुल सीधी-समतल हो, वहा भी ॠतुके अनुरूप सौन्दर्य देखनेको मिलता है। कभी-कभी जहां पानीकी अेक बूंद नही होती, वहा भी कोरे जल-प्रवाह धूपमें दौड़ते हुअे हरिणोंको धोखा देकर मार डालते है। लेकिन अिसके कारण मृगजलकी शोभा कम नही होती। और अगर हवामें सचमुच नमी हो, तो अेकाध अिन्द्र-धनुप अचूक रूपसे अपना प्रभाव दिखाता ही है।

और यदि समुद्रने दर्शन दिये, तो ज्वार-भाटारूपी अुसका श्वासो-च्छ्वास हमारा ध्यान आकर्पित किये बिना नही रहता। यदि हमारी सांससे हमारा रक्त शुद्ध होता है, तो समुद्रके अिस ज्वार-भाटेसे क्या शुद्ध होता होगा, अिस आशयकी कल्पनायें अुठे बिना कैसे रहेंगी? और जब समुद्रकी तितलियां (पतवारवाले जहाज) लहरों पर डोलती है, तो अेक अैसी अुत्कण्ठा जाग्रत होती है कि बस अब लहरोंमें से फूल खिल अुठेंगे। और जिस प्रकार लहरोंके कारण समुद्रमें पानीका हृदय अूंचा-नीचा होता है, अुसी प्रकार कभी-कभी जमीन पर भी वैसे ही दृश्य स्थिर रूपमें दीख पड़ते हैं।

सूर्योदय और सूर्यास्त नित्य-नूतन कवित्वकी अनन्तता है। अिन अुभय संध्याओंकी शोभा देशानुरूप बदलती है, ॠतु-अनुरूप बदलती है, क्षण-क्षणमें बदलती है, और बादलोंकी मनकके अनुसार भी बदलती है।

और बादल? बादल तो अनन्त आकाशके चिर-प्रवासी यात्री हैं। आकाश कभी बदलता नही, और बादल अेक क्षणको भी स्थिर रहते नही। अिन दो जनोंकी जोड़ीके चंगुलमें फसे हुअे बेचारे सूर्यको नित्य नयी भूमिकाका अभिनय करना पड़ता है। पृथ्वी — बहुरत्ना वसुन्धरा

—अपना कितना ही वैभव क्यों न दिखाये वह थोड़ा ही है, ये बादल हमेशा यही सिद्ध करनेकी फिकरमें रहते हैं। यदि कोअी अिन बादलोंसे स्पर्धा करना चाहता होगा, तो वे होंगे हिमालयकी बरफके ढेर। परन्तु हिमालय पर्वतसे भी बड़े बड़े पर्वत चाहे जहां खड़े करके ये बादल हिमालयके, बल्कि पृथ्वीके गर्वका हरण करते हैं। अन्तर अितना ही है कि पहाड़ों पर छोटे-बड़े असंख्य वृक्ष अुगते है, जब कि बादलों पर तो दूसरे बादल ही अुगते हैं।

यात्री कितना ही घुमक्कड़ और विरक्त क्यो न हो, फिर भी अुसे अपने पेटको तो साथ ही लिये-लिये घूमना पड़ता है। अिसलिअे जब दो-पहरकी भूखका समय होता है, तो अुसे अतिथिशील झोंपड़ीका काव्य सबसे अधिक आकर्षक लगता है। यों भी गांवोंकी झोंपड़ियां आकर्षक तो होती ही हैं। झोंपड़े, मवेशियोंके कोठे, खेती और भांति-भांतिकी क्रियायें, जुलाहा, कुम्हार, सुनार, बढ़अी, लुहार आदि कारीगरोंके फैले हुअे धंधे—सभी अलग-अलग और मिलकर अेक बड़ा काव्य बनता है। नदीका काव्य अेक प्रकारका और अुस पर बने पुलका काव्य दूसरे ही प्रकारका होता है।

यो यात्रामें निकलनेवाला मनुष्य जिस प्रकार प्रकृतिकी विविध रंगोंवाली लीला देख सकता है, अुसी प्रकार अुसे विविध भांतिके लोगोंके दर्शन भी होते है। हर जगहकी भाषा अलग, रिवाज अलग, मकानोंकी बनावट अलग, पोशाक अलग। अिस भेदके मूलमें क्या-क्या सहूलियतें हैं, किन आदर्शोंका परिपोष हुआ है, यदि मनुष्य अिसकी खोज करे तो अुसे कीमती शिक्षण मिले बिना न रहे। और ज्यों-ज्यों वह गहराअीमें जाता है, त्यों-त्यों अुस विविधताकी जड़में अुसे अेक सार्वभौम अेकताकी प्रतीति होती है, और यह देखकर अेक विशेष आनन्द प्राप्त होता है कि अेक ही मनुष्य-हृदय कितने प्रकारसे विकसित होता है। लोक-जीवन यानी मनुष्य-जातिकी मोटी बुद्धिकी सूक्ष्मता। प्रकृतिके बदलते ही मनुष्यको बरबस अपनी आदतें बदलनी होती हैं। मनुष्यके विचार करनेसे अिनकार कर देने पर भी रोज-रोजकी टक्करें अुसे किसी-न-किसी दिन तनिक विचार करनेको बाध्य करती हैं, और जो काम बुद्धि नही करती वह

काल कर डालता है। अिस तरह दीर्घकालकी मफाअीके कारण जो मनुष्य-जीवन बना है, असकी स्वाभाविक मोहकता आंखोंमें समाये बिना नहीं रहती।

और चूंकि यह मव लोक-स्वभावमें यथार्थरूपसे आ चुका है, अिसलिअे लोग अिसमें अेक तरहका स्वास्थ्य भी अनुभव करते हैं। जिस तरह अचानक आअी हुअी अमीरी मनुष्यको अटपटी लगती है, वैसा अिस संस्कृतिमें नहीं होता। अिसलिअे अिस सादगीमें असाधारण गौरव रहता है। और अिस सारी लोक-संस्कृतिके नये नये प्रकारोंको अनके स्वाभाविक वातावरणमें जाकर जाचने-पड़तालनेसे जो शिक्षा मिलती है, असका मूल्य कौन आक सकता है?

हमारे देशमें लिखित रूपमे जितना अितिहास संकलित नहीं है, अुतना हमारे जीवनमें है। अिसलिअे यात्रा-पर्यटनमें अितिहास-दर्शन भी होता ही है। और फिर हिमालयका प्रदेश तो भारतवर्षका प्रातदेश ठहरा। यहां संस्कृति और क्रान्तिकी न जाने कितनी लहरे आकर शान्त हुअी होंगी। कुरु-पाचालोंकी सस्कृतिसे लेकर कर्नल यंग हस्बैंडके आक्रमणसे यद्ध हुअी तिब्बतियोंकी आजकी संस्कृति तक सारी चीजोंकी भनक यहां अेक साथ सुननेको मिलती है। अिस तरफ हमारा ध्यान दिलाकर भगिनी निवेदिताने हिन्दू समाजका बड़ा अुपकार किया है।

भू-रचनाकी दृष्टिसे और भूस्तर-शास्त्रकी दृष्टिसे भी हिमालयकी यात्रामें बहुत-सी जानकारी मिलती है। यदि हिमालय रास्तेमें आड़ा न पड़ा होता, तो रूस और चीनकी ठडी हवाअें और वहाकी कठोर संस्कृति, दोनोके हमले हम पर हुअे होते। यदि गंगा नदी न होती तो जैसे हमारी आजकी सारी शान-शौकत न होती, वैसे ही यदि हिमालय न होता तो हिमालय जैसी अुत्तुग आर्य-संस्कृति भी यहा कभी पनप न पाती।

देशकी आत्मा और देशका विराट् स्वरूप, दोनोंका, अेक ही साथ दर्शन करनेके लिअे यात्रा ही अेकमात्र अमोघ साधन है।